मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

ISSN 0974-0066
(अंक-74, जनवरी-जून, 2018)

संरक्षक
प्रो. राघवेन्द्र पी. तिवारी
कुलपति

प्रधान सम्पादक
प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

सम्पादक
प्रो. निवेदिता मैत्रा
डॉ. पंकज चतुर्वेदी
डॉ. आशुतोष कुमार मिश्र

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. छबिल कुमार मेहेर

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (मध्यप्रदेश) - 470003
दूरभाष : (07582) 264455
ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com

सम्पादकीय परामर्श मण्डल

- प्रो. वीरेन्द्र मोहन, हिन्दी विभाग
- प्रो. ए.एन. शर्मा, मानवशास्त्र विभाग
- प्रो. पी.पी. सिंह, विधि विभाग
- प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव, इतिहास विभाग
- डॉ. अनुपमा कौशिक, राजनीतिशास्त्र विभाग

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

अंक-74, जनवरी-जून 2018

ISSN 0974-0066 (पूर्व-समीक्षित अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका)

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

यू.जी.सी. द्वारा मान्य पत्रिकाओं की सूची (प.सं.-48918) में सम्मिलित।

प्रकाशित रचनाओं के अभिमत से डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर या सम्पादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार :

मध्य भारती

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर - 470003 (म.प्र.)

दूरभाष : (07582) 264455

ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com

आवरण : डॉ. छबिल कुमार मेहेर

मुद्रण :

अमन प्रकाशन

कटरा नमक मंडी, सागर (म.प्र.)

सदस्यता शुल्क

	प्रति अंक	आजीवन
व्यक्तिगत	रु. 150/-	रु. 2000/-
संस्थागत	रु. 200/-	रु. 4000/-

अनुक्रमणिका

भास्कराचार्य रचित गणितीय कृति लीलावती : एक अवलोकन 5
रामप्रसाद

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में छायावाद 23
कामिनी

बौद्ध धर्म दर्शन और मार्क्सवाद के साथ दलित साहित्य का अंतर्सम्बन्ध 32
दीपक सिंह

भारतीय ज्ञाान परम्परा में कामशास्त्र का इतिहास 38
राघवेन्द्र मिश्र

धर्म और विज्ञान का अंतर्विरोध 59
अनिल कुमार तिवारी

कमलेश्वर के 'काली आंधी' उपन्यास में स्त्री-विमर्श 68
संजीव कुमार विश्वकर्मा

शास्त्रीय संगीत में लोक संगीत के तत्व 73
बृजेश मिश्रा

गाँधी के राष्ट्रवाद की अवधारणा 83
पंकज सिंह

भरहुत की कला में प्रतिबिम्बित लोक जीवन 94
कृष्ण देव पाण्डेय

समकालीन समाज-दर्शन और स्वामी विवेकानन्द 103
शैल कुमारी

मध्यप्रदेश की संस्कृति में छतरपुर अंचल की भूमिका 118
विशाल विक्रम सिंह

एशियाई परिदृश्य और भारत-चीन संबंध 128
नेहा निरंजन

'उस जनपद का कवि हूँ' : कविता के सरोकार 135
दुर्गेश वाजपेयी

महिला सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका के प्रति महिलाओं का दृष्टिकोण (सागर नगर के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन) 146
विवेक मेहता

Kant's Political Philosophy 156
Sabhajeet Mishra

Brahman According to Rāmakṛṛna Paramhamsa 170
Bhavatosh Indra Guru

Problem of Mechanism and Teleology in Kantian Philosophy 178
Sanjay Kumar Shukla

Diabolical Phase of Androcentrism : A Feminist Critique of Shashi Deshpande's That Long Silence 186
Poonam Pahuja

Changing Dimensions of Child Psychology in Indian Writings 195
Devendra Kumar Prajapati

Is Dreaming Phenomenon Real : A Philosophical Analysis 201
Niladri Das

Average Level of Socioeconomic Status is Conducive for Metacognitive Awareness and Academic Success 207
Deepika Jain, Gyanesh Kumar Tiwari and Ishutta Awasthi

Menstrual Distress and Attitude towards Femininity of Rural and Urban Adolescent Girls 222
Priya Jain, Gyanesh Kumar Tiwari and Ishdutta Awasthi

The Spiritual Beliefs and Quality of Life of Cancer Patients : A Correlational Inquiry 234
Devaki Nandan Sharma, Gyanesh Kumar Tiwari, Pramod Kumar Rai and Sushil Gour

Situating the Idea of Truth : Construting the Past in News Narratives 245
Shuchi Yadav

Style is the Man : Homage to Prof. Samarendra Saraf (1931-2017) 257
Jawahar Lal Jain

भास्कराचार्य रचित गणितीय कृति लीलावती : एक अवलोकन

रामप्रसाद

प्रस्तुत लेख में भास्कराचार्य रचित गणितीय कृति लीलावती का एक अवलोकन अध्येताओं के लिए प्रस्तुत किया गया है। इस लेख का मूल उद्‌देश्य यही है कि जिन पाठकों को यह पुस्तक किसी कारण से उपलब्ध नहीं हो पायी है उन्हें इस पुस्तक की एक झलक मिल सके। पुस्तक का मूल स्वरूप संस्कृत भाषा के मध्यकालीन रूप में है जिस पर समय के बहाव के साथ अनेकों टीकाएँ लिखी गयीं। प्रस्तुत अवलोकन रामस्वरूप शास्त्री की टीका, जो कि सम्बत् 1954 में छपी, के आधार पर है। वर्तमान काल में प्रचलित भाषा की दृष्टि से लीलावती पुस्तक पर इस टीका की माधूर्यता कुछ क्लिष्ट है। इस लेख के लेखक ने यही प्रयत्न किया है कि न तो श्लोक का मूल रूप बदले और न ही टीकाकार की भाषा का रूप अधिक बदले।

भास्कराचार्य, जिन्हें भास्कर द्वितीय के नाम से भी प्रसिद्धि मिली है, सह्यकुल पर्वत के समीप बिज्जड बीड़ (सम्भवतः वर्तमान बीजापूर) नामक स्थान पर शाके 1036 (सन् 1115) में जन्में थे। यह विवरण स्वयं भास्कराचार्य ने गोलाध्याय नामक कृति में लिखा है। लीलावती, मूल में भास्काराचार्य द्वारा रचित सिद्धान्त शिरोमणी, का व्यक्त गणित संबंधी अध्याय है। इन तीन कृतियों के अतिरिक्त गणिताध्याय, करणकुतूहल व बीजगणित नामक ग्रन्थ भी इनकी कृतियों में हैं। उपलब्ध विवरण के अनुसार तत्कालीन गणितीय कृतियों में सिद्धांत शिरोमणी का अधिक प्रचार व प्रसार था। भास्कराचार्य के प्रारंभिक जीवनकाल में लल्ला सिद्धांत प्रचलित था। भास्कराचार्य ने भी लल्ला सिद्धान्त पढ़ा व समझा व तब अनेकों स्थानों पर लल्ल-मत का खण्डन किया। उन्होंने ब्रह्मगुप्त कृत ब्रह्म सिद्धांत में प्रतिपादित मतों को स्वीकारा।

लीलावती कृति पर रामस्वरूप शास्त्री[3] से पूर्व गंगाधर, सूर्यदास, लक्ष्मीदास, मुनीश्वर, रामकृष्ण व कृपानाथ आदि विद्वत्‌जनों की टीकाएं हैं। सन् 1587 में अकबर बादशाह की आज्ञा से फैज़ी (अकबर के नौ रत्नों में से एक) ने लीलावती का अनुवाद फारसी में किया तथा सन् 1816 में हेनरी टामस कोलब्रूक और जे. टेलर ने अंग्रेजी में।

भास्काराचार्य अपनी ग्रन्थावली में यही चित्रित करते हैं कि गणित विषय का पढ़ना, समझना व उसे पढ़ाकर जनसामान्य को व्यवहार सिखाना परम प्रतिष्ठित है। इस विषय को पढ़ने से स्वान्तः सुख तो होता ही है और साथ ही साथ दैनिक जीवन संबंधी कठिन व्यवहारों को भी सुगम्य किया जा सकता है। वे मन ही मन अत्यन्त दुःखी होते हैं कि उनकी दृष्टि में सनातन गणित को पूर्ण रीति से जानने वाले विद्वत्‌जन दूर-दूर तक अति दुर्लभ हैं। इतना जीवनोपयोगी शास्त्र चिन्तकों की समझ से बाहर है।

सिद्धांत शिरोमणि के व्यक्त गणित संबंधी अध्याय को एक अलग कृति के रूप में रखना व उसका

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

नाम लीलावती रखना चिंतक की दृष्टि में विषय को महत्त्व देना था। पर समय-समय पर कुछ लोगों ने इस संबंध में भ्रमित विचार भी प्रचारित किये। इनमें से कुछ का विचार था कि भास्कराचार्य ने अपनी पुत्री लीलावती की जन्मकुण्डली में विधवा का योग देखकर उसका विवाह नहीं किया व संसार में उसके नाम की प्रसिद्धि के लिए उसी के नाम से, दुःखित होकर, पाटिगणित की स्थापना की। कुछ अन्य लोग जिन्होंने भास्कराचार्य की इस कृति को पढ़ा व समझा ही नहीं, उनका यह अनुमान था कि भास्कराचार्य सन्तानहीन थे। अतः उन्होंने अपनी पत्नी लीलावती का नाम इस संसार में स्थापित रहने के लिए पत्नी के नाम से ही इस पाटिगणित का शीर्षक लीलावती रखा। परन्तु नासिक के समीप मिले एक ताम्रपत्र के अनुसार यह प्रतीत होता है कि भास्कराचार्य के पुत्र-पौत्र थे। इस ताम्रपत्र में 16 श्लोक हैं व इसकी स्थपना श्री शके 1128 (सन् 1207) में प्रभव नामक सम्वत्सर के श्रावण मास में पौर्णमास्य चंद्रग्रहण के दिन उपस्थित समुदाय की जानकारी में हुयी। इस ताम्रपत्र में कुछ श्लोक भास्कराचार्य की बुद्धि, विवेक, विद्वता, चिंतन व उनके अंकगणित संबंधी ज्ञान-भण्डार की प्रशंसा करते हैं। एक इससे भी अन्य विचार यह भी था कि भास्कराचार्य गुरूकुल में पढ़ते थे और इनके गुरू ने इन्हें सुसंस्कृत समझकर सर्वविद्यायुक्त जानकर अपनी पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार इनके साथ करना चाहा, पर भास्कराचार्य ने गुरू-पुत्री-बहिन मान कर गुरू के प्रस्ताव को शिरोधार्य नहीं किया। इस उहापोह को शान्त करने के निमित्त भास्कराचार्य ने पाटिगणित की रचना का शीर्षक गुरू-पुत्री 'लीलावती' के नाम रखा।

विचार करने पर समझ में आता है कि भास्कराचार्य स्वयं स्वीकराते हैं कि यह विषय बहुत गूढ़ है। इस गूढ़ उक्ति को चरितार्थ करने के लिए वे कुछ श्लोकों में लीलावती को षोढ़सी से संबोधित करते हैं। उनकी सोच है कि गणित रूपी लीलावती अभी तारूण्य को प्राप्त नहीं हुयी। यह विषय चंचला के समान चपल है। अध्येता विषय की गहराई को नहीं छू पाता है, क्योंकि विषय की चमक-चंचलता उसे भ्रमित कर देती है। वे पाटिगणित का संबोधन लीलावती से करते हैं क्योंकि वृत के क्षेत्रफल संबंधी श्लोक से वे पाठकों को उलाहना देते हैं कि यदि लीलावती को जानते हो तो वृत्त के क्षेत्रफल बतलाओ। इसी तरह अन्तिम विषय के अन्तिम श्लोक में वे कहते हैं कि लीलावती ग्रन्थ जो रीतियों से शोभायमान है व रीतियाँ रसयुक्त हैं, जिसे कंठस्थ होती हैं वह सुखी होता है व उसके घर में समृद्धि होती है। इन कथनों, उक्तियों व श्लोकों से स्पष्ट झलकता है कि लीलावती कोई दुहिता नहीं है अपितु यह मात्र गणितीय रचना है। विषय का आकर्षण सामान्य बुद्धि के लोगों तक पहुँचाने के लिए उन्होंने पटिगणित का नाम लीलावती रखा। वे गणित का प्रचार व प्रसार चाहते थे। पुस्तक की अनुक्रमणिका में कुल एक सौ छब्बीस विषय व उनके विस्तार हैं। मंगलाचरण के पश्चात् परिभाषा प्रकरण, तौल, मार्ग धान्यादिकों व काल का परिमाण, संज्ञा प्रकरण, संख्या-स्थान व संज्ञा-कोष्टक, परिमाष्टक, संकलित व व्यवकलित, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन व घनमूल करण सूत्र, भिन्न परिमाष्टक व परिकर्माष्टक, तहाँ जाति चतुष्टक, भाग जाति व प्रभाग जाति करण सूत्र, भागानुबंध व भागापवाह करण सूत्र, भिन्न संकलित व व्यवकलित सूत्र, भिन्न गुणाकार व भागकार करण, भिन्न वर्ग, घन, मूल व घनमूल करण सूत्र; शून्यपरिकर्माष्टक, व्यस्त विधि प्रकार, इष्टकर्म, विषमकर्म, वर्गकर्म व गुणकर्मप्रकार, त्रैराशिक विधि, व्यस्त त्रैराशिक प्रकार, पंचराशिक, सप्तराशिक व नवराशिकादिक सूत्र, भाण्ड प्रतिभाण्डक विधि, मिश्र प्रकरण, मिश्रान्तर प्रकार वर्णन, वाणी पूरण प्रकार, क्रय विक्रय विधि, रत्न मिश्र करण प्रकार, सुवर्ण गणित, सुवर्ण वर्ण ज्ञान व सुवर्ण ज्ञान प्रकार, अन्य प्रकार से सुवर्ग ज्ञान विधि, कूदाश्चित्यादिकों का प्रकरण, श्रेढ़ी व्यवहार व कृत्यादि योग विधि, उत्तमचय ज्ञान प्रकार, मुख ज्ञान, चयफल ज्ञान प्रकार, समवृत्त ज्ञान विधि, क्षेत्र व्यवहार, भुजकोटि-कर्ण ज्ञान, अन्य प्रकार वर्णन, आसन्न मूल जानने के उपाय, त्रयस्रजाति वर्णन, इष्टकर्ण से कोटि लाने का प्रकरण,

प्रकारान्तर वर्णन, इष्ट से भुजकोटि कर्णानयन विधि, कर्ण कोटि में भुज ज्ञान, भुज कर्ण योग और कोटि ज्ञान, भुज से कोटि कर्ण को पृथक करने का प्रकार, कोटि के एक देश युत कर्ण भुज से कोटि कर्ण को जानना, भुज कोटि योग और कर्ण को पृथक् करने का प्रकार, लम्बाव बाधा ज्ञान, अथक्षेत्र का लक्षण, अबाधा ज्ञान वर्णन, चतुर्भुज व त्रिभुज क्षेत्र में असष्ट तथा सष्ट फल का लाना, स्थूलपना निरूपण, विशेष विधि का वर्णन, समान चतुर्भुज क्षेत्र और आयात क्षेत्र में फल का लाना, फल लम्ब और कर्णज्ञान, कर्णज्ञान के प्रकार, कर्ण में इष्ट कल्पना का कथन, विषम चतुर्भुज फलानयन, समान लम्ब क्षेत्र की अबाधा का ज्ञान, समान लम्ब क्षेत्र में लघु प्रक्रिया सूची क्षेत्र वर्णन, संधि आदि का लाना, कर्णों के योग में अधोलम्ब का ज्ञान, सूची के अबाधा लम्ब का ज्ञान, भुज का ज्ञान, वृत्त क्षेत्र, वृत्त दो गोलों (Spheres) के फल का ज्ञान, अन्य प्रकार, शर व जीवा का लाना, वृत्त के भीतर समन्निकोणादि नव कोण पर्यन्त क्षेत्रों के भुजाओं को लाने का प्रकार, स्थूल जीवा में लघु प्रक्रिया, धनुष का आनयन विधि, खात व्यवहार, खात में लम्बाई व चौड़ाई का ज्ञान वर्णन, अन्य प्रकार से खात वर्णन, चिति व्यवहार वर्णन, चिकनाई का क्षेत्रफल, क्रकच व्यवहार, लकड़ी चीरने का प्रकार, प्रकारान्तर, राशि व्यवहार वर्णन, धान्य राशियों के व्यवहार का प्रकार, भीत के अन्दर-बाहर लगे धान्य राशि के लाने का प्रकार, छाया व्यवहार कथन, दो छायायों का अन्तर लाने का प्रकार, छायान्तर लाने का दूसरा प्रकार, दीपक की ऊँचाई, शंकु व भूमि के अन्दर की भूमि का ज्ञान, छाया व दीपक की ऊँचाई का ज्ञान, त्रैरासिक भेद वर्णन, कुट्टक व्यवहार, कुट्टक में प्रकार, तृतीय कुट्टक विधि, अन्य कुट्टक प्रकार, अन्य प्रकार, स्थिर कुट्टक कथन, कुट्टक का उपयोग वर्णन, संश्लिष्ट कुट्टक, अंकपाश प्रकार वर्णन, अंकपाश में विशेष विधि, अंकों से संस्था भेद का लाना, अनियत व अतुल्य अंकों में भेद का लाना, अंकपाश विधि प्रकार, अंकपाश में स्वानुभव, ग्रन्थ प्रशंसा।

उक्त वर्णित समस्त विषयों को मात्र बयालीस निम्न शीर्षकों में, प्रतिस्थापित किया गया है। इन शीर्षकों को 'प्रकार' व 'व्यवहार' की श्रेणी में रखा गया है। 'प्रकार' व्यंजकों की श्रेणी इस भाँति है -- परि कर्माष्टक, गुणन, भाग, वर्ग एवं वर्गमूल करण, घन एवं घनमूल करण, प्रभाग जाति, भागानुबन्ध भाग प्रवाह, भिन्न संकलित एवं व्यवकलित, भिन्न गुणन, भिन्न वर्ग, शून्य परिक्रम, व्यस्त विधि, इष्टकर्म, दृष्ट जाति, शेष जाति, विश्लेष जाति, वर्ग कर्म, गुण कर्म, त्रैराशिक, व्यस्त त्रैराशिक, पंचराशिकादि, सप्त, नव, एकादश राशिक प्रकार। 'व्यवहार' व्यंजकों की श्रेणी इस भाँति है - मिश्रक, मिश्रकरण, क्रय-विक्रय, रत्नमिश्रक, सुवर्ण गणित मिश्रक, छन्दश्चिति गणित, श्रेढ़ी, क्षेत्र, खात, चिति, क्रकच, राशि, छाया, कुट्टक व अंकपाश व्यवहार।
परिभाषा प्रकरण में छोटे- बड़े भारों का नाप व लम्बाइयों की माप के लिए निम्न व्यवस्थाएं दी गयी हैं -

भार के नाप :-

(अ) 20 वराटक (कौड़ी) = 1 काकिणी, 4 काकिणी = 1 पण 16 पण = 1 द्रम, 16 द्रम = 1 निष्क

(ब) 2 यव (भार में) = 1 गुंजा (रत्ती), 3 रत्ती = 1 बल्ल, 1बल्ल = 1 धरण 2 धरण = 1 गद्याणक

(स) 5 रत्ती = 1 माशा, 16 माशा = 1 कर्ष, 4 कर्ष = 1 पल

(द) 16 रत्ती = टंक, 72 टंक = 1 सेर, 40 सेर = 1 मन
(यवनो की संज्ञा)

(य) धान्यादि तौल- 4 प्रस्त = 1 आढ़क, 4 आढ़क = 1 द्रौण, 16 द्रौण = 1 खारी, 1 खारी = एक हाथ लम्बा, चौड़ा व गहरा गढ़ा भरकर धान्यादि का माप।

लम्बाई (दूरी) का नाप :-

(क) आठ जौ के दानों की मोटाई को मिलाकर = 1 अंगुल,
24 अंगुल = 1 हाथ (हाथ का अर्थ : कुहनी की नोक से माध्यमा अंगुली के अन्त तक का नाप),

4 हाथ = 1 दण्ड, 2000 दण्ड = 1 क्रोश, 4 क्रोश = 1 योजन, 10 हाथ = 1 बंस

क्षेत्रफल :-

20 वंस लम्बा व 20 बंस चौड़ा क्षेत्र = 1 निवर्तन (भार व लम्बाई आदि के विभिन्न नाप-वर्णन अल्-बरूनी कृत इंडिका) (सचाऊ द्वारा अंग्रजी अनुवाद) में अधिक विस्तार से हैं)[1]

इसी क्रम में दस आधारी संख्याओं के नाम निम्न श्लोकों में स्थापित किय गये हैं -

एक दश शत सहस्त्रायुत लक्ष प्रयुत कोटयः क्रमात्।
अर्बुदमब्जंखर्व निरवर्व महापद्म शंखवस्त स्मात्।।
जलधि श्चांत्यं मध्यं परार्द्ध मिति दश गुणोत्तराः संज्ञाः।
संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थ कृताः पूर्वेः।।

उक्त शब्द संख्याओं को अंकों में इस प्रकार लिखेंगे -

एक = 1, दश = 10, सहस्र = 100, अयुत = 1000, लक्ष = 1000,0
प्रयुत = 1000,00; कोटि = 1000,000; अर्वुद = 1000,000,0,
अब्ज = 1000,000,00; खर्व 1000,000,000, निखर्व = 1000,000,000,0;
महापद्म = 1000,000,000,00
संख = 1000,000,000,000;
जलधि = 1000,000,000,000,0
अन्त्य = 1000,000,000,000,00;
मध्य = 1000,000,000,000,000;
परार्द्ध = 1000,000,000,000,000,0;

इस प्रकार पूर्व आचार्यों ने संख्या को व्यवहार के लिए पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर दस गुना संज्ञा कहा है।

लीलावती का यह अवलोकन कर्त्ता ऊपर लिखित सबसे बड़ी संख्या से भी कल्पनातीत बड़ी संख्याओं, जिनकी महत्ता वर्तमान में हो चुकी है, का अति संक्षेप में उल्लेख करने का नम्र साहस करता है -

वैज्ञानिक शोधों से ज्ञात हुआ हैं कि प्रोटोन (proton : an elemenlary particle with a positive electric chanrge equal to that of an electron) का जीवन काल लगभग इक्कतीस अंकों वाली संख्या - वर्ष से अधिक का है[4]। सूर्य के सौरमण्डल में चलित पिण्डों की पृथ्वी की सतह से दूरी प्रकाश-सेकिण्ड (186000/-) मील प्रति सेकिण्ड, प्रकाश मिनट, प्रकाश वर्ष ..... आदि से अनुमान रूप में नापी जाती हैं सौर मण्डल व उस आकाश गंगाओं के विभिन्न तारा-प्रकाश पुंजों की दूरी भी अत्यन्त बड़ी संख्या वाले प्रकाश-वर्षो में आंकी जाती है। ये अनुमान संख्याएँ इतनी बड़ी हैं कि इन्हें अंको में लिखना असम्भव है, ब्रह्माण्ड के अध्ययन कर रहे प्रचुक्षुओं ने हबल दूरबीन (Hubble Telescope) की सहायता से यह आकलन किया कि मनुष्य को अभी तक समस्त ब्रह्माण्ड का मात्र लगभग दशमलव एक प्रतिशत क्षेत्र का ही आभास हो पाया। यदि (समस्त!) ब्रह्माण्ड को आभासी गोले (the inaginalive sphere whose center car not be located and the radius is neither measurable nor infinite) के रूप में सोचें तो उसके अर्द्धव्यास की लम्बाई की कल्पना कितने अंकों की संख्या प्रकाश वर्ष की होगी! यह तथ्य तार्किक रूप से फ्रीएडमान अभिसंकल्पना (Friedman model hypothesis) के माध्यम से स्थापित हो चुकी है कि उक्त-संभव-अर्द्धव्यास अनन्त भी नहीं है[4]। अतः ऐसा लगता है कि कल्पनातीत संख्याओं को शब्दों में ही लिखकर उनका आभास किया जा सकता है।

भास्कराचार्य ने लीलावती में दस आधारी संख्याओं की स्थापना के बाद उनके जोड़ व अन्तर करने की विधियों को समझाया है। उदाहरणों से भी इन क्रियाओं को स्पष्ट किया है। संख्याओं को गुणा करने की चार रीतियों को सउदाहारण समझाया गया है। इन्हें रूप रीति, स्थान रीति, खण्ड रीति व विभाग रीति के नाम से व्यक्त किया है। संख्याओं में भाग देने की दो रीतियाँ हैं। ये रीतियाँ भागहार एवं प्रकरान्तर नाम से व्यक्त की गयी हैं। एक श्लोक के माध्यम से यह समझाया गया है कि किसी संख्या को यदि उसी संख्या से गुणा करें तो प्राप्त फल वर्ग कहलाता है। संख्याओं को वर्ग करने की चार रीतियाँ बतलायी गयी हैं। यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि किसी संख्या को उसी से दो बार और गुणा करें तो फल घनफल कहलाता है। घनफल निकालने की चार विधियाँ बतलायी गयी हैं; साथ ही वर्गमूल व घनमूल निकालने की रीतियाँ भी समझायी गयी हैं। इसी क्रम मे भिन्न संख्याओं का अर्थ, उन्हें जोडने व घटाने का विधान भी वर्णित किया हैं निम्न श्लोक में भिन्न संख्याओं को जोड़ने के लिए प्रश्न पूछा है व प्राप्त जोड़ में तीन को घटाने के लिए कहा है।

पञ्चाश पाद त्रिलवार्द्ध षष्टाने की न्ब्रुहि सरनेममैतान।
एमिश्च भागैरथ वर्जितानां किंस्या त्रयाणां कथयाशु शेषम्।।

सारांश : हे मित्र 1/5, 1/4, 1/3, 1/2, व 1/6 को योग कहो एवं इस योग को 3 में से घटाओ ?

शून्य परिकम्र प्रकार के अन्तर्गत प्रारंभ में दो श्लोक हैं। इन श्लोकों में शून्य का अशून्य राशियों के साथ समागम समझाया है, विस्तार से समझाने के लिए उदाहरण श्लोकों का चयन भी है। इन परिकर्मों की झलक देखने से पहले वैदिक परम्पराओं में शून्य की अवधारणा एवं इसके प्रतिस्थापन पर दृष्टि डालें। वर्तमान में जिस आकृति (शून्य अंक) को हम शून्य कहते हैं उसका मूल स्वर वैदिक दर्शन में है व स्वभाव की कल्पना में वह दृश्य भी है और अदृश्य भी। प्रकृति में सत् (of being) और असत् (of not being) दोनों विचार स्थापित हैं तथा एक दूसरे के पूरक भी हैं। मनीषियों ने भौतिक जगत में इन्हें अलग-अलग समझा व अभौतिक जगत में इनका समायोजन भी अपनी कल्पना में रखा। इसीलिये तो ईशावास्योपनिषद् में निम्न श्लोक मिलते हैं -

तदैजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः।।
एवं
ऊँ पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्णमेवाव शिष्यते।।

यहाँ पर प्रथम श्लोक में आत्मतत्व का गुण बतलाया है व दूसरा श्लोक परब्रह्म व कार्य ब्रह्म की व्याख्या करता है। वाँच्छित धरातल प्राप्त करने पर इस प्रकार के श्लोकों में कहीं न कहीं उस तत्त्व का आभास होता है जिसे वर्तमान में शून्य कहा जाता है। इस चिन्त्य का जब हम आंकिक रूप चित्रित करते हैं तो चित्रण में इसके अन्त को इसी के प्रारंभ में मिला देते हैं तब यह सांतत्य आकृति इस भांति दिखती है जिसका कि न प्रारंभ है व न अन्त! अतः इसमें अनन्त का भाव भी गोचर है। यह आंकिक शून्य नागार्जुन के शून्यवाद का एक भाव है। नियामक ज्यामिति की दृष्टि से इस शून्यवाद का रूप (...,...,..., आंकित शून्य, ..., ..., ...) है। अर्थात् आंकिक शून्य शून्यवाद के अनन्त नियामकों में एक है। इसी क्रम में हीनयान प्रवर्तन में शून्य का भाव अत्यधिक सूक्ष्म जान पड़ता है, इसका आभास (virtual impact) भी भाग्य से ही होता है। इस पथ का पथिक ब्रह्माण्ड को रिक्त सोचकर रिक्तता को भी नहीं स्वीकारता। उसी बोध को सम्प्रेषण में वह शून्य कहता है। पश्चिमी जगत में शून्य को रिक्तता के संदर्भ में नहीं देखा गया। फ्रॅडरिक एञ्जिल्स् (Frederick Angles) अपनी पुस्तक डायल्क्- टिक्स् ऑफ नेचर (Dialectice of Nature) में विचारते हैं कि शून्य गतिहीन नहीं है।

वे शून्य के महत्व को समझाने के लिए भौतिकी में स्थापित भार रहित गतिमय-आभासी (Namo Particle) का उदहारण देते हैं।[2]

अब प्रसंगतः भास्कराचार्य ने लीलावती के शून्य परिकर्म प्रकार में शून्य-अशून्य राशियों में किस तरह से तारतम्य स्थापित किया उसे अति संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है -

योगेखं क्षेप समं, वर्गा दौ खं ख भाजितो राशिः
खहरः स्यात् व गुणः खं खगुणश्च चिन्त्य श्चशेष विधौ।
शून्ये गुणके जाते, खहार श्चे त्पुनस्तदा राशिः
अविकृत एवज्ञेय, स्तथैव खेनोनित श्चयुतः।।

ख (शून्य) की इन व्याख्याओं का भाव यह है कि शून्य को किसी राशि में जोड़ने से अथवा घटाने से वह राशि नहीं बदलती। शून्य का वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल (चतुर्थ मूल,... आदि) करने से शून्य ही लब्धि होती है। किसी राशि में शून्य का भाग देने से हर के स्थान पर शून्य ही होता है (!) शून्य से अशून्य राशि को गुणा करने पर लब्धि शून्य ही होती है। किसी राशि को एक साथ शून्य से गुणा व भाग करने से राशि वैसे ही रहती है क्योंकि गुणक व भाजक समान हैं (!) उक्त क्रियान्वयनों को समझने वाले की परीक्षा के लिए उन्होंने प्रश्नोदहारण स्थापित किये हैं जिनमें से एक निम्न है -

खं पञ्चयुग्भवति किं वद खस्य वर्गमूलं घनं घनपदं ख गुणा श्च पञ्च।
खेनाद्धृता दश च कः ख गुणो निजार्द्ध युक्तस्त्रि भिश्च गुणितः खत्दृतस्त्रिषष्टिः।।

हे! मित्र पांच के युक्त शून्य का क्या होता है व शून्य का वर्ग, वर्गमूल, घन तथा घनमूल क्या होता है?शून्य से पाँच को गुणा करने से क्या मिलता है व दस में शून्य से भाग देने से क्या लब्धि होती है?... ... ...

इन प्रश्नों का उत्तर उत्तरोत्तर श्लोकों में है जिसका सार यह है कि शून्य को पाँच से युक्त (जोड़) करने पर पाँच ही होता है। शून्य का वर्ग एवं वर्गमूल शून्य ही है तथापि शून्य का घन व घनमूल शून्य ही होता है। दस में शून्य का भाग देने से दस के नीचे शून्य हर हो जाता है (!) आदि

इन श्लोकों से यह आभास होता है कि भास्कराचार्य शून्य परिकम्र प्रकार की तार्किक व्याख्या आंशिक रूप से ही कर पाये।

वर्ग कर्म प्रकार शीर्षक के अन्तर्गत कुछ श्लोकों में अज्ञात राशियों को ज्ञात करने के उदाहारण दिये हुए हैं जैसे -

राश्योर्य यो र्वियोगोऽष्टौत त्कृत्योश्च चतः शती। विवरं वदतौ राशि शीघ्रं गणित को विद।।

इस श्लोक में प्रश्न है कि जिन राशियों का अन्तर आठ है और दोनों राशियों के वर्गों का अन्तर चार सौ है, उन राशियों को ज्ञात करो?

अज्ञात राशियों को ज्ञात करने की विधियों को समझाने के साथ ही भास्कराचार्य बीज गणित व उसकी गूढ़ता की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं -

पाटि सूत्रोपमं बीजं गूढ मित्यव भासते। नास्ति गूढम् मूढानां नैवषोढेत्यनेकधा।।

पाटि गणित के समान ही बीज गणित है, अति गूढ़ है, पर बुद्धिमानों के लिए कुछ भी गूढ़ नहीं है। बीज गणित में अनेक प्रकार हैं (इन प्रकारों को वर्णित नहीं किया गया)।

पञ्चराशिक, सप्तप्राशिक व नवराशिक प्रकारों में दैनिक, मासिक अथवा वार्षिक व्याज निकालना, मिश्रधन, प्रतिशत अथवा समय निकालने संबंधी प्रश्न उलाहना के रूप में हैं। भांड प्रतिभाण्ड करण विधि (बाजार में अपनी वस्तु बेचकर ठीक उतने ही प्राप्त धन से दूसरी आवश्यक वस्तु खरीदना चाहे उन दोनों के

बेच-खरीद भाव कितने ही भिन्न क्यों न हों।) को भी उदाहरणों द्वारा समझाया गया है। इन व्यवहारों के साथ ही स्वर्ण एवं रत्नों की पहचान व शुद्धता व उनके खरीद-बिक्री संबंधी अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। ये समस्त व्यवहार मिश्रक व्यवहार शीर्षक के अन्तर्गत हैं।

जीवनोपयोगी उक्त दैनिक व्यवहारों की तरह ही भास्कराचार्य ने श्रेढ़ी व्यवहार को भी विस्तार से समझाया है। उन्होंने सर्वप्रथम गणितीय नियमों का उपयोग करके श्रेढ़ी स्थापित की व इसके पश्चात् प्राप्त श्रेढ़ियों को दैनिक जीवन के लेन-देन के उपयोग में लाए। जिन व्यवहारों में व्यावहारिक घटनाएं क्रमशः अपने से पूर्व की घटना पर आधारित होती हैं उन्हें समझने व प्रश्न का निदान करने के लिए घटनाओं को क्रमवद्ध करके (inductien approach) व उनकी श्रेढ़ी बनाकर व्यवहार में प्रयोग किया जा सकता है। इस व्यवहार में श्रेढ़ी-पदों को जोड़ने के लिए जो विधि है वह निम्न श्लोक द्वारा निरूपित है -

सैक पदघ्न पदार्द्धमथै का घङ्क युतिः किलसङ्क लिताख्या।
साद्वियुतेन पदेन विनिध्नी स्या त्रित्हृता खलु सङ्कलितै क्यम्।।

भावार्थ यह है कि श्रेढ़ी के अन्तिम सदस्य को पद कहें। पद में एक जोड़ें व फिर इस नये पद को आधा करें। इस आधे से श्रेणी के अन्तिम पद को गुणा करें। जो लब्धि होगी वही संख्या श्रेणी के पदों का जोड़ होगा। श्रेणी के पदों के जोड़ को श्रेणी के अन्तिम पद में दो जोड़कर गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल क्रमशः प्राप्त जोड़ों के जोड़ के बराबर होगा। इसे स्पष्ट समझने के लिए एक उदाहारण उद्धृत है -

एकादीना नवन्ताना पृथक सङ्कलितानि मे।
तेषां संकलिते क्यानि प्रचक्ष्व गणक द्रुतम।।

हे प्रचक्ष्व गणक एक से नौ तक के अंकों का योग शीघ्र लिखो। इसी विधि से प्राप्त एक तक का योग, दो तक का योग, तीन तक का योग, चार तक का योग, ..., नौ तक का योग, इन योगों के योग को शीघ्र बताओ?

सर्वप्रथम एक से नौ तक का जोड़ निकालने के लिए नौ में एक जोड़ें व उसके आधे से नौ को गुणा कर दें। प्राप्त संख्या ऐच्छिक होगी। इस स्थिति में जोड़ पैंतालीस है। अब जोड़ों के जोड़ को प्राप्त करने के लिए अन्तिम पद नौ में दो जोड़ें व इस जोड़ से पैतालीस को गुणा कर दें। प्राप्त राशि चार सौ पचानवे (पचाणवे) है।

इसी क्रम में दिये हुए क्रमिक संख्याओं के वर्गों व घनों के जोड़ों को ज्ञात करने के लिए निम्न श्लोक पर दृष्टि डालें -

द्विध्नपदं कुयुतंत्रि विभक्तं सङ्कलिते नहतं कृति योगः।
सङ्कलितेस्य कृतेः सममेकाद्यं कघनैक्य मुदीरित माद्येः।।

श्रेढ़ी व्यवहार का प्रयोग धन को उधार देकर उस धन पर प्रतिदिन, प्रतिमाह अथवा प्रति वर्ष की दर से ब्याज लेने को समझाया गया है। इसके साथ ही उधार लिए हुए धन को किस विधि से वापिस किया जाये कि एक निश्चित सयम में ऋणी कर मुक्त हो जाय। समस्त देयक राशि को नियत दिनों में बाँटकर प्रतिदिन एक निश्चित राशि लौटाई जाने की जानकारी मिल सके। यही कार्य प्रारंभ से ही एक निश्चित राशि दिनों दिन बढ़ाकर पूर्ण किया जा सकता है अथवा राशि लौटाने के दिन से क्रमिक ह्रास करके भी पूर्ण किया जा सकता है। क्रमिक ढंग से धन एकत्रित करना, लम्बी तीर्थ यात्रा के लिए योजना बनाना, अधिक समय तक अध्ययन करने की योजना बनाना या किसी अन्य बड़े कार्य को सम्पन्न करने की योजना पूर्ण करने आदि के लिए श्रेढ़ी विचार समझने की आवश्यकता होती है।

श्रेढ़ी व्यवहार के पूर्ण होने के साथ पुस्तक का प्रथम खण्ड भी समाप्त किया गया है यद्यपि प्रथम खण्ड

का उल्लेख नहीं किया है। द्वितीय खण्ड का प्रारंभ क्षेत्र व्यवहार से प्रारंभ किया जाता है। क्षेत्र व्यवहार के प्रारंभिक विचार में गणक भास्कराचार्य लिखते हैं कि त्रिभुज के भुज, कोटि व कर्ण तीन भाग हैं। इस तरह से कल्पित त्रिभुज को वह समकोण त्रिभुज नहीं कहते परन्तु जिस त्रिभुज में भुज व कोटि हों वह समकोण त्रिभुज ही होता है। प्रारंभिक दो श्लोकों में त्रिभुज व चतुर्भुज को स्थापित किया है। यदि भुज को एक रेखांश माने तब भुज को रोकने वाली रेखा को कोटि कहा है एवं कोटि के व भुज के किनारी बिन्दु मिलाएं तो कर्ण बनता है। चतुर्भज स्थापित करने में स्पष्टता नहीं है। यहाँ त्रिभुज की सर्वमान्य परिभाषा भी नहीं है। भुज व कोटि के वर्गों का योग कर उस राशि का वर्गमूल लेने से जो लब्धि मिलती वह कर्ण का नाप है। इसके पश्चात् भुज व कोटि ज्ञात होने पर कर्ण की लम्बाई निकालने संबंधी श्लोक है-

कोटि श्चतुष्टयं यंत्र दो स्त्रयं तत्र का श्रुति।
कोटिं दोः कर्णतः कोटि श्रुतिभ्याञ्चभुजं वदः।।

जहाँ कोटि का प्रमाण चार है व भुज तीन है वहां कर्ण का प्रमाण बताओ? साथ ही यदि भुज व कर्ण ज्ञात हो तो कोटि बताओ और यदि कोटि व कर्ण ज्ञात हो तो भुज का नाप बताओ?

भुज व कोटि ज्ञात होने पर कर्ण के नाप को जानने की दूसरी विधि निम्न श्लोक में स्थापित है -

राश्योरन्तर वर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयोः।
वर्गयोगो भवेदेवं तयो र्योगान्तरा हतिः।।
वर्गान्तर भवे देवं ज्ञेयं सर्वत्र धीमता।

जिन राशियों का वर्ग योग करना हो तो उन्हें गुणा कर लें। प्राप्त राशि को दो से गुणा करें, फिर उन्हीं राशियों के अन्तर का वर्ग करें व उक्त राशि में जोड़ दें। यह जोड़ उन्हीं मूल राशियों का वर्ग करने पर जोड़े होगा। इसी प्रकार जिन राशियों का वर्गान्तर करना हो उनका योग कर लें व इस योग को उन्हीं राशियों के अन्तर से गुणा करने पर वर्गान्तर राशि मिल जाएगी।

ऊपर वर्णित श्लोक-उदाहरण जिसमें कोटि चार हैं व भुज तीन हैं, उसमें कर्ण इस विधि से निकल सकता है।

भुज व कोटि की लम्बाईयाँ ज्ञात होने पर कर्ण के नाप को जानने की तीसरी विधि निम्न श्लोक में वर्णित है-

साङ्घ्रित्रयमितो वाहुर्यत्र कोटि श्च तावती। तत्र कर्ण प्रमाणं किं गणक ब्रुहि में द्रुतम्।।

इस उदाहरण से कर्ण निकालने की जिस विधि को समझाया है उस विधि का प्रयोग तब भी किया जा सकता है जबकि पूर्व की दोनों विधियों से कर्ण का नाप न निकल सके। उक्त उदाहरण में कर्ण के नाप को जानने के लिए नई विधि को विस्तार से समझाया गया है। ऐसा लगता है कि यह विधि इस श्रेणी के सभी प्रश्नों को हल करने में सहायक नहीं हो सकती जबकि ग्रीक भूमि में पोषित पाइथागोर संघ ने समस्त समकोण त्रिभुजों के लिए कर्ण के नाप जानने की व्यवस्था दी है। पाइथागोर का प्रमेय सार्वभौम है। इसी प्रमेय के सिद्ध होने के कारण संख्या सिद्धान्त में अपरिमेय संख्याओं का मनुष्य को ज्ञान हुआ। भास्कराचार्य ने इस विधि का प्रारूप निम्न श्लोक में दिया है -

वर्गेण महतेष्टेन हताच्छेदांशयोर्वधात्। पदंगुण पद क्षुण्णु च्छिद्भक्तं निकटं भवेत्।।

सर्वप्रथम भुज व कोटि के नापों का वर्ग करके जोड़ो।

यदि प्राप्त संख्या का वर्गमूल कोई पूर्ण संख्या नहीं आती तब उक्त जोड़ के हर व अंश का गुणा करें व इस गुणन को 10000 से गुणा करें। इस नई राशि का वर्गमूल निकल जायेगा। इसके पश्चात् कर्णी राशि के हर

को 100 से गुणा करने के बाद प्राप्त राशि से पहले प्राप्त वर्गमूल को भाग दें। इस अन्तिम राशि को ही कर्ण की लम्बाई माना जायेगा। यह राशि कर्णीगत राशि (अपरिमेय संख्या/irrational number) कहलाती है।

उक्त उदाहरण श्लोक (साङ्घ्रित्र... ... द्रुतम्'') में भुज व कोटि के नाप 13/4 व 13/4 हैं व कर्ण का मान ज्ञात करना है। नियमनानुसार भुज व कोटि के वर्गों का जोड़ 338/16 अथवा 169/8 हुआ। इसके अंश व हर का गुणा 1352 है। इसको 10,000 से गुणा करने पर व वर्गमूल लेने पर 3677 आया। अब 10,000 के वर्गमूल 100 से 8 का गुणा किया और 800 से 3699 को भाग देकर कर्ण नाप 4x477/800 हुआ। यह करणीगत संख्या है व कर्ण का नाप है।

यदि कर्ण की लम्बाई ज्ञात हो व भुज व कोटि में कुछ सम्बध स्थापित हो तब भुज व कोटि के मान किस तरह ज्ञात करें। विधान के लिए निम्न प्रश्नोदहारण उपलब्ध है।

दोः कोट्योरन्तर शैलाः कर्णौ यत्र त्रयोदश।
भुज कोटि पृथक्त त्रवदाऽऽशु गणकात्तमः।।
अर्थ : भुज व कोटि का अन्तर 7 है एवं कर्ण 13 है तो भुज व कोटि के नाप बतलाओ?

उत्तर इस प्रकार है- कर्ण का वर्ग करके दो गुना किया तो राशि 338 हुई। अब 7 का वर्ग किया व पूर्व संख्या में घटाया तब प्राप्त राशि 289 है। इस राशि का वर्गमूल 17 है। अतः कोटि प्राप्त करने के लिए 17 व 7 को जोड़कर आधा किया कोटि का मान 12 है। इसी तरह भुज जानने के लिए 17 में से 7 घटाकर आधा किया, इसलिए भुज 5 हुआ।

भुज कोटि कर्ण से संबधित अलग-अलग प्रकार के श्लोक-उदाहरण लीलावती में उपलब्ध हैं।

निम्न श्लोकों में क्षेत्र के लक्षण पर विचार किया गया है। क्षेत्र व अक्षेत्र में भेद प्रस्तुत किया गया है।

धृष्टोद्दिष्ट भृजुभुजं क्षेत्रं यत्रैक बाहुतः स्वल्पा।
तदितर भुजयुतिरथवा तुल्यज्ञेयं तदक्षेत्रम्।।

अर्थात् जिस त्रिभुज अथवा चतुर्भुज जैसे क्षेत्र में एक भुज से अन्य भुजों का योग न्यून हो अथवा तुल्य हो वह ढ़ीठ पुरूष का कहा हुआ अक्षेत्र है। इसे समझने के लिए निम्न श्लोक उदाहरण प्रस्तुत है -

चतुरस्त्रे त्रिषड्द्वयर्का भुजास्त्रस्य स्त्रे त्रिषण्णावाः।
उद्दिष्टा यत्रघृष्टेन तदक्षेत्रं विनिर्दिशेत्।।

अर्थात् जिस चतुरस्र क्षेत्र में 3,6,2 व 12 प्रमाण के भुज हैं तथा त्रिभुजाकार में 3, 6 व 9 प्रमाण के भुज हैं, यदि कोई ढ़ीठ ऐसा प्रशन करे तो उन्हें अक्षेत्र कहना चाहिए क्योंकि इन नापों से चतुर्भुज व त्रिभुज नहीं बनते।

त्रिभुज व चतुर्भुज क्षेत्र के लक्षणों पर विचार करने के पश्चात् त्रिभुज के क्षेत्रफल निकालने की व्यवस्था निम्न श्लोकों में है -

त्रिभुजे भुजयोर्योगस्तदन्तर गुणो भुवात्दृतो लब्ध्या।
द्विः स्थाभूरूनयुता दलिता बाधे तयोः स्याताम्।।
स्वाबाधा भुज कृत्योरन्तर मूलं प्रजायते लम्बः।
लम्ब गुणं भूम्यर्ध स्पष्टं त्रिभुजे फलं भवति।।

इन श्लोकों में भाव इस प्रकार है - त्रिभुज के भुजों का का योग करें। तब भुजों के अन्तर से योग को गुणा करें। इस गुणनफल में भूमि के नाप का भाग दें। प्राप्त लब्धि को एक बार भूमि में जोड़े व एक बार घटा दें। लब्धि व भूमि को जोड़कर आधा कर दें तो एक अबाधा मिली। लब्धि व भूमि के अन्तर (घटाने पर) को

आधा करें तब दूसरी अबाधा मिली। लम्ब जानने के लिए एक भुज व उसी तरफ की अबाधा के वर्गों का अन्तर निकाला। पुनः इस अन्तर का वर्गमूल निकाला। यही लम्ब है। इसी प्रकार दूसरी भुज व उसी तरफ की अबाधा के वर्गों का अन्तर लिया व इसका वर्गमूल लिया, यह लम्ब का (ऊपर जैसे) नाप है। अन्त में लम्ब व भूमि के आधे को गुणा करें। यही उस त्रिभुज का यथेष्ठ फल है।

स्पष्ट फल निकालने की उक्त विधि को निम्न उदहारण -श्लोक से समझाया गया है -

क्षेत्रेमहीम नुमिता त्रिभुजे भुजौ तुयत्र त्रयोदश तिथि
प्रमितौ च यस्य। तत्रऽवलम्ब कमथो कथयाव
बाधे क्षिप्रं तथा च फलकोष्ट मितिं फलाख्याम्।।

भावार्थ यह है कि जिस त्रिभुज क्षेत्र में 14 प्रमाण की भूमि है व दोनों भुज 13 व 15 प्रमाण के हैं तो उसका स्पष्ट फल निकालो ? ऊपर स्थापित विधि के अनुसार भुजों के योग 28 को भुजों के अन्तर 2 से गुणा करने पर 56 प्राप्त होता है। इस लब्धि को भूमि 14 से भाग देकर 4 मिला। इस 4 को एक बार भूमि 14 में जोड़कर आधा किया व 9 प्राप्त हुआ। यह नाप एक अबाधा का है। दूसरी बार भूमि मे से 4 घटाने व तब आधा करने से 5 मिला। यह दूसरी आबाधा की लम्बाई है। अब लम्ब की लम्बाई एक भुज का वर्ग अन्तर उसी तरफ की अबाधा का वर्ग का वर्गमूल हुआ। अर्थात् 13 x 13 -5x5=144, इसका वर्गमूल 12 है अथवा 15 x 15 - 9x9=144 का वर्गमूल है। इस भांति त्रिभुज का क्षेत्रफल 12 x 14 का आधा 84 प्रमाण हुआ।

एक भिन्न श्लोक में जब भूमि का प्रमाण अति न्यून हो एवं प्रत्येक भुज का नाप अधिक हो तब भी त्रिभुज के स्पष्ट फल को निकालने की विधि एक उदाहरण-श्लोक से समझायी गयी है।

चतुर्भुज में स्पष्ट अथवा अस्पष्ट फल जानने की रीति :-

इन फलों को जानने के लिए एक उदहारण-श्लोक है जिसका भाव कुछ इस तरह है। चतुर्भुज की चारों भुजाओं का योग करें व इस योग के आधे में से चारों भुजाओं के मानों को अलग-अलग घटाएँ। प्राप्त चारों राशियों को गुणा करके वर्गमूल निकाले। यही राशि उस चतुर्भुज का स्पष्ट/अस्पष्ट फल है।

वर्तमान में स्थापित समलम्ब, समानान्तर, आयात, विषम, सम व वर्ग, चतुर्भुजों के रूप में चित्रित किया गया है। इन रूपों को समझाने के लिए अलग-अलग चित्र व उदाहरण हैं। प्रायः सभी आकृतियों के स्पष्ट फल निकाले हुए हैं - यद्यपि कहीं कहीं भाषायी कमी तार्किक त्रुटि भी लगती है। भास्कराचार्य विभिन्न प्रकार के चतुर्भुजों के इष्टफल ज्ञात करने के लिए उनके कर्णों को महत्व देते हैं अतः वे विभिन्न प्रकार से कर्णों के मान ज्ञात करने की विधि समझाते हैं तथा ब्रह्मगुप्त व अन्यों ने कर्णों को नियत माना। ऐसा कह कर भास्कराचार्य अपने से पूर्व के चिंतकों की वैषेयिक कमी को इंगित करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि जो गणक चतुर्भुज के फल का जानने के लिए ईष्ट कर्ण या लम्ब को महत्व नहीं देता वह बड़ा पिशाच है तथा जो विधियाँ अति सरल हैं उन्हें क्लिष्ट क्यों किया?

त्रिभुज व चतुर्भुज क्षेत्र व्यवहारों को उदाहारणों से समझाने के पश्चात् भास्कराचार्य वृत्तकरण सूत्र पर विचार करते हैं और सर्वप्रथम वे बतलाते हैं कि यदि किसी वृत्त का व्यास-प्रमाण ज्ञात है तो उस वृत्त की परिधि का प्रमाण कैसे ज्ञात करेंगे। इस उत्कण्ठा को व्यवहरित करने के लिए वे लिखते हैं कि ब्यास के मान को 3927 से गुणा करें व 1250 से भाग दें जो लब्धि मिले वही परिधि का प्रमाण है। परन्तु उन्हें ये संख्याएं किस परम्परा से मिलीं इसका उल्लेख नहीं है। परिधि का व्यावहारिक परिमाण प्राप्त करने के लिए वे कहते हैं कि व्यास को 22 से गुणा करें व 7 से भाग दें। प्राप्त संख्या से व्यवहार हो सकता है। इन व्यवहारों को वे निम्न श्लोकों में वर्णित करते हैं -

वृत्तक्षेत्रे परिधि गुणित व्यास पादः फलंतत्।
क्षुण्णुवेदैरू परिपरितः कन्दुकस्येव जालम्।।
गोलस्यैवं तदपचि फलं पृष्टजं व्यास निघ्नं।
षड्भ र्भक्तं भवति नियतं गोल गर्भे घनाख्यम।।

उक्त श्लोकों के अनुसार व्यास के चौथे भाग को वृत्त की परिधि से गुणा करने पर वृत्त का क्षेत्रफल ज्ञात होता है। इस क्षेत्रफल को चार से गुणा करने पर पूरे गोल के पृष्ट का क्षेत्रफल मिलता है। इस गोलीय पृष्ट के क्षेत्रफल को व्यास से गुणा कर व छः से भाग देने से प्राप्त लब्धि वृत्त के घनत्व (volume) को दर्शाता है।

दूसरी विधि से वृत्त का क्षेत्रफल आदि के ज्ञान के लिए निम्न श्लोक हैं-

व्यासस्य वर्गे भवनाग्नि निघ्नो सूक्ष्मं फलं पंचसहस्त्रभक्ते।
रूद्रा हतेश कृत्दृतेऽथवा स्यात्स्थूलं फलं तद्वयवहार योग्यम्।।
घनीकृत व्यास दलंनिजैक विंशाशयुग्गोल घनं फलं स्यात्।

उक्त श्लोक में कहा है कि व्यास के वर्ग को 3927 से गुणा करके जो गुणनफल हो उसमें 5000 का भाग देने से जो राशि मिले वह वृत्त के क्षेत्र का सूक्ष्म फल होता है और यदि व्यास के वर्ग को 11 से गुणा करें व जो फल मिले उसमें 14 का भाग देने से जो फल मिले वह वृत्त क्षेत्र का व्यवहार के योग्य स्थूल फल होता है तथा व्यास का घन करके व उसका आधा करके जो संख्या हो उसमें उसका इक्कीसवां भाग जोड़ने से जो राशि मिले वह गोल का घनफल होगा।

इसी क्रम में भास्कराचार्य शर और जीवा (ज्या) जानने की रीति उदाहारण- श्लोकों से स्थापित करते हैं। वे कहते हैं कि वृत्त क्षेत्र में से परिधि के दो भिन्न बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा जीवा (ज्या) कहलाती है। इस रेखा को खीचनें से वत्त क्षेत्र में जीवा व परिधि का भाग धनुष के आकार का होता है। जो रेखा इस जीवा के मध्य बिन्दु को परिधि के धनुष वाले भाग के किसी बिन्दु पर इस तरह मिलाये कि वह जीवा पर लम्बवत् हो तो इसी रेखा को शर कहते हैं। गणक ने वृत्त का व्यास, जीवा व शर में विस्तृत संबंध स्थापित किये हैं इसे समझने के लिए एक श्लोक-उदहारण प्रस्तुत है -

दश विस्तृति वृत्तान्तर्यत्र ज्याषण्मिता सखे।
तत्रेषुं वद बाणा ज्ज्यां ज्या बाणाभ्याञ्च विस्तृतिम्।।

उक्त श्लोक में पूछा है कि जिस वृत्त के क्षेत्र का व्यास 10 है व ज्या का प्रमाण 6 है उसमें शर का प्रमाण बताओ। शर का प्रमाण जानने पर व बाण के प्रमाण के ज्ञान से ज्या का प्रमाण यही (6) है दिखाओ?

इस प्रश्न में व्यास का प्रमाण 10 है, ज्या का प्रमाण 6 है व पहले शर का प्रमाण ज्ञात करना है। इसके लिए व्यास व ज्या के प्रमाणों के योग को उनके अन्तर से गुणा करने पर 64 प्राप्त हुआ। अब 64 के वर्गमूल को 10 में से घटाने पर 2 प्राप्त हुआ। अतः शर का प्रमाण 2 का आधा 1 है। अब ब्यास के प्रमाण में से शर का प्रमाण घटाकर प्राप्त संख्या का वर्गमूल 3 है। 3 का दुगुना करने पर ज्या (जीवा) की लम्बाई सिद्ध होती है।

इसी क्रम में वत्तों के भीतर बड़े से बड़ा त्रिभुज, चतुर्भुज समसपृभुज सम अष्टभुज सम नौ भुज बनाने की विधियाँ समझायी हुयी हैं। इनसे संबंधित अनेकों चित्र भी बने हुए हैं इसके साथ अनेक वृत्तों के भीतर बहुभुज बने हुए हैं जिनमें से किसी भी बहुभुज का कोई भी कोणिक बिन्दु वृत्त की परिधि को नहीं छूता। क्षेत्र व्यवहार के अन्तिम भाग में यह समझाया है कि यदि व्यास व जीवा का ज्ञान हो तो तो जीवा-चाप कैसे ज्ञात करेंगे। इससे संबंधित श्लोक निम्न है -

व्यासाब्धि घातयुत भौर्विकया विभक्तो जीवांध्रि

पञ्चगुणितः परिधेस्तु वर्गः।
लब्धो निता त्परिधि वर्ग चतुर्थ भागा दाप्ते
पदे वृत्ति दब्नात्पत्ति ते धनुः स्यात्।
इस विधि को स्पष्ट करने के लिए तीन उदाहरण स्थापित किये हुए हैं।

रेखागणित पर आधारित क्षेत्र व्यवहार विषय समाप्त होते ही इतना ही महत्वपूर्ण विषय, जिसे खात व्यवहार के नाम से जाना गया है, प्रारंभ किया गया है। खात व्यवहार में खातों (बावड़ियों) के निर्माण के लिए रेखागणित का प्रयोग किया गया है। इस विषय व्यवहार की उत्कृष्टता की झलक, बावड़ियों को देखने पर ही पारखियों को मिल सकती है।

भारत के अनेकों भागों में जल संरक्षण के लिए हर युग के जन समुदाय ने जल आपूर्ति के लिए जल-उपलब्धता के अनुसार विभिन्न गहराई के कुओं, बावड़ियों (खातों) व तलैय्या या तालाबों का निर्माण जमीन को खोद कर किया। मध्य भारत व राजस्थान-गुजरात क्षेत्रों के गाँवों व छोटे नगरों में बनी ये बावड़ियाँ वर्तमान में भी जल आपूर्ति में सहायक हैं। जल आपूर्ति के लिए बने इन जल प्रबन्धनों में निर्माण कला की दृष्टि से खात सर्वोत्कृष्ट हैं। इनमें तत्कालीन कर्मिकों के जल एकत्रीकरण विधि के साथ ज्ञान, कला विविधता व सौंदर्य बोध के दर्शन होते हैं। अधिकतम खात भूमि-सतह पर विशाल वर्गाकार या चतुर्भजाकार रूप में दृष्टिगत होते हैं। इसके बाद कुछ हाथ की गहराई पर कुछ खाते चौकोर न होकर पंचभुजाकार या अन्य बहुभुजाकार हैं, और अधिक गहराई में खातों के किनारी के नाप फिर बदल गये। खातों का निर्माण इस तरह से है कि उनके भीतर हर तरफ सीढ़ियाँ दिखती हैं। बाबड़ी के जल क्षेत्र में प्रकाश आवश्यकता से अधिक रहता है। भास्कराचार्य द्वारा लिखित खात व्यवहार से समझ में आता है कि खातों के नाप की कितनी कलाएं हैं व उनका कितना महत्व है। खात व्यवहार में भास्कराचार्य सर्वप्रथम किसी खात में कितना जलराशि हो सकती है उसका अनुमान समझने की कोशिश करते हैं। राशि का अनुमान लगाने का श्लोक निम्न है -

गणयित्वा विस्तारं बहुषु स्थानेषुतद्युति र्भाज्या।
स्थान कमित्या सममिति रे वंदैर्ध्येच वेधेच।।
क्षेत्रफलं वेधगुणं खाते धनहस्त संख्या स्यात्।

इस श्लोक का भाव यह है कि यदि खात की लम्बाई के अलग-अलग नाप हैं तो जितने प्रकार के नाप हैं उन्हें जोड़ें एवं प्रकार की संख्या से भाग दें तो औसत लम्बाई प्राप्त होगी। (उदाहरण के लिए यदि खात की लम्बाई के तीन नाप 60, 50, 70 हाथ हैं तब औसत लम्बाई 60 हाथ होगी) इसी भाँति खात की चौड़ाई का औसत मिलेगा। अतः घनत्व के लिए औसत लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई को गुणा करने पर औसत राशि मिल जाएगी। यही राशि खात में पानी होने का लगभग नाप बतलाएगी।

एक श्लोक उदाहरण में लम्बाई, चौड़ाई व गहराई, हर एक के तीन-तीन नाप हैं तो खात का घनहस्त ज्ञात करो? खात की लम्बाई के तीन नाप क्रमशः 7, 6 व 5 हाथ हैं। तथा गहराई के 2, 2, व 5 हाथ नाप हैं तब (औसत) घनहस्त का नाप 11 हाथ लम्बा, 6 हाथ चौड़ा व 3 हाथ गहरा होगा। अतः कुल 198 घनहस्त की खात होगी।

इस उदाहरण के पश्चात् खात के घनहस्त निकालने की दूसरी विधि तथा एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

मुखज तलज तद्युतिज क्षेत्रफलैक्यं त्दृतंषड्भिः।
क्षेत्रफलं सममेत द्वेध गुणं घनफलं स्पष्टम्।।
सम खात फल त्र्यंशः सूची खाते फलं भवति।।

इन श्लोको का सारांश निम्न है -

खात के मुख व तली का अलग-अलग क्षेत्रफल निकाल कर जोड़ें। फिर खात के मुख व तल की लम्बाइयों को जोड़ें, इसी तरह की चौड़ाइयों को जोड़ें। तब इस नये मुख-तल क्षेत्र का क्षेत्रफल ज्ञात करें। इन तीनों क्षेत्रफलों को जोड़कर 6 से भाग दें। प्राप्त राशि को गहराई के नाप से गुणा करें। यही गुणनफल खात का घनहस्त होगा।

इस विधि का प्रयोग करके एक उदाहारण में खात के घनहस्त को निकाला है। श्लोक - उदाहरण का हिन्दी रूपान्तर संक्षेप में यह है -

खात के मुख की लम्बाई 12 हाथ व चौड़ाई 10 हाथ है तथा तल की लम्बाई का जोड़ 6 हाथ व चौड़ाई 5 हाथ है तथा गहराई 7 हाथ है, खात का घनहस्त बताओ ?

इस प्रश्न का सरलीकरण इस भांति है। मुख का क्षेत्रफल 120 वर्गहस्त है तल का क्षेत्रफल 30 वर्गहस्त है मुख व तल की लम्बाई का जोड़ 18 हाथ, मुख व तल की चौड़ाई का जोड़ 15 हाथ है अतः मुख तल का क्षेत्रफल 270 वर्गहस्त है। अतः दुसरी विधि के अनुसार तीनों वर्ग हस्त को जोड़ 420 वर्ग हस्त है इसे 6 से भाग देने पर लब्धि 70 है। अब 70 को गहराई 7 से गुणा करने पर 490 घनहस्त खात का नाप है।

खात व्यवहार को समझने के पश्चात् भास्कराचार्य चिति व्यवहार की विधि बतलाते हैं। चिति से तात्पर्य है एक दी हुई नाप की भीति पर एक ही नाप के पत्थर अथवा ईंटे चिनाई करने के लिए कितनी संख्या के लगेंगे। किसी विशेष नाप की चिनाई में पत्थर या ईंटों की संख्या ज्ञात करने के लिए निम्न श्लोक लिखा हुआ है -

उच्छ्रयेण गुणितं चितेः किल क्षेत्र संभव फलं घनं भवेत्।।
इष्टिकाघनत्दृते घने चितेरिष्टिका परिमिति श्च लभ्यते।।
इष्टिकोच्छ्रय त्दुदुच्छ्रितिश्चितेः स्युः स्तराश्चदृषदांचितरेपि ऽऽ।।

इन श्लोको का सारांश यह है कि चुनाई के क्षेत्रफल को चुनाई की ऊँचाई से गुणा करें तब चुनाई का हस्तफल मिलेगा। चुनाई के हस्तफल में ईंट के घनफल से भाग देने से ईंट की संख्या मिलेगी। फिर भीति की ऊँचाई में ईंट की ऊँचाई के नाप से भाग दें तब स्तरों की संख्या ज्ञात होगी। विधि को स्पष्ट करने के लिए एक श्लोक-उदाहारण भी है।

चिति व्यवहार को संक्षेप में समझने के पश्चात् क्रकच व्यवहार समझाया गया है। भवनों में अलग-अलग नाप की लकड़ी चीरकर तैयार करने को ही क्रकच कहा है। इस व्यवहार में एक लकड़ी चीरने की विधि-श्लोक व एक श्लोक-उदाहरण है। लकड़ी चिराई की दो विधियां हैं, सीधी चिराई व तिरछी चिराई। सीधी चिराई की विधि निम्न श्लोक में है -

पिण्ड योग दलमग्र मूलयौर्देर्ध्य संगुणितमंगुलात्मकम्।
दारूदारण पथैः समाहतंषट्स्वरेषु विहितं करात्मकम्।।

क्रकच व्यवहार की समाप्ति के पश्चात् राशि व्यवहार प्रारंभ किया गया है। यहाँ पर राशि से धन धान्यादिककों का अर्थ लिया है। खुले समतल स्थान में रखी अन्न की ढेरी का नाप, भीतियों से लगे अनाज की ढेरियों के नाप, भीतियों से बने कोशों में रखे अन्न का नाप, मोटे अनाज जैसे चना की ढेरियों के प्रमाण, बहुत छोटे अनाज जैसे राई, कुटकी आदि की ढेरियों के प्रमाण, सूखे अन्न व गीले अन्न की ढेरियों के प्रमाण आदि जानने के लिए विधियाँ स्थापित हैं। एक सामान्य अन्न की ढेरी का प्रमाण जानने की रीति इस श्लोक में है -

अनणुषु दश माशोऽणुष्व थैकाद शांशः।

परिधि नवम् भागः शूकधानेषुकेधः।
भवति परिधिषष्ठे वर्गिते वैधनिघ्नेन
गणित कराः स्युर्मा गर्धास्ता श्च खार्य्यः।।

उक्त का संक्षेप में सार यह है कि अन्न ढेर में ऊपर की तरफ ठीक बीच में जो ऊँचाई है उसे वेध कहते हैं। मोटे अनाज जैसे चना की ढेरी में ढेरी की परिधि का दसवां भाग वेध है। शूक धान्य जैसे धान आदि की ढेरी के परिधि का नवां भाग वेद होता है। यदि परिधि के छटे भाग का वर्ग करें व उसे उसी के वेध से गुणा करें तो प्राप्त गुणनफल अन्न की ढेरी को घनहस्तो मे प्रर्दशित करता है (घनहस्तः एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा व एक ही हाथ ऊँचा क्षेत्र का प्रमाण है) मगध क्षेत्र में यह नाप खारी कहलाता है।

विभिन्न धान्यदिकों को निम्न उदाहरण से भी समझा जा सकता है -

समभुविकिल राशिर्यः स्थितः स्थूल धान्यः
परिधि परिमितिः स्याद्धस्तषष्टिर्य दीया।
प्रवद गणक खार्य्यः किं मिताः सन्ति
तास्मिनथ पृथ गणु धान्यैः शूक धान्यैश्च शीघ्रं।।

समान भूमि में मोटे अनाज की ढेरी की परिधि साठ हाथ है तो उसमें कितनी खारियाँ हुयीं? उसी समतल भूमि में बारीक व शूक अन्नों की ढेरियां भी साठ-साठ हाथ परिधि की हैं तो अन्नों खारियाँ शीघ्र बतलाओं ?

इन प्रश्नों का उत्तर इस भांति है - मोटे अनाज का वेध-प्रमाण 6 है। परिधि का छटा भाग का वर्ग 100 है अतः 600 खारियां हुयी। इसी भांति बारीक अन्न का वेध 60/11, हुआ अतः खारियों की खारी संख्या 100x60/11 हुआ, अतः खारियों की खारी संख्या 100x60/11=6000/11 खारियां। शूक अनजा की खारी संख्या 100x60/9=2000/3 प्रमाण।

छाया व्यवहार करण के अन्तर्गत दीपक की बाती जलाने से जो प्रकाश होता है उस प्रकाश के पास अन्य वस्तुओं से जो छाया जमीन पर पड़ती है उसका अध्ययन करना है। छायाओं के अन्तर को नापने का विधान वर्णित हैं। दीपक की ऊँचाई, छाया शंकु, छाया परिधि आदि को समझाने के लिए कुछ श्लोक उपलब्ध हैं।

छाया व्यवहार के अन्र्तगत जितने भी प्रकर्म हैं सभी दीपक की छाया से संबंधित हैं। दिन की धूप के कारण वस्तुओं, पेड़ों आदि की छायाओं के अध्ययन का उल्लेख नहीं है। यह भी सम्भव नहीं है कि दीपक के प्रकाश के कारण वस्तुओं की छाया के अध्ययन से समस्त प्रकार की छायाओं का अध्ययन हो जाय।

अगले प्रखण्ड में कुट्टक व्यवहार समझाया गया है। कुट्टक उस रीति को कहते हैं जहाँ इस प्रकार का प्रश्न हो कि किसी संख्या को किसी अन्य संख्या से गुणा करने पर व उसके बाद गुणनफल में कोई संख्या जोड़ी अथवा घटायी तब जो संख्या प्राप्त हो उसमें किसी संख्या से भाग देने पर कुछ भी शेष न रहे। कुट्टक व्यवहार बीजगणित का प्रारंभिक स्तर है। इस विषय में समस्त उदाहरण श्लोक पूर्ण संख्याओं में हैं, भिन्न संख्याओं या करणीगत संख्याओं में नहीं।

भास्कराचार्य कुट्टक विधि को समझाने के लिए एक श्लोक को उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत करते हैं -

एक विंशति युतंशत द्वयं य द्गुणं गणक
पञ्चषष्टि युक्।
पंचवर्जित शत द्वयोद्धृतंशुद्धिमेति गुणकं वदाशुतत्।।

इस उदाहारण में यह पूछा है कि 221 को जिस किसी संख्या से गुणने पर व प्राप्त संख्या 65 मिलाने पर इस नई प्राप्त संख्या को 195 से भाग देने से कुछ शेष नहीं रहता, वह अंक बताओं ?

प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है - भाज्य 221, हार 195 व क्षेप 65 है। 221 में 195 का भाग देने से 13 शेष रहता है क्योंकि 13 से उक्त संख्याओं में पूरा-पूरा भाग चला जाता है, अतः 13 अपवर्तन कहलाया। अब 13 से उक्त तीनों संख्याओं में भाग देने से भजनफल क्रमशः 19, 15, व 5 हैं। इन भजनफलों में भाग का संबंध स्थापित किया। 15 का भाग 19 में देने से भजनफल 1 व शेष 2 है। अब शेष 2 से 15 में भाग दिया तब भजनफल 7 व शेष 1 है। इस भांति अंतिम शेष 1, अंतिम भजनफल 7 व अपर लिखित भजनफल 5 को एक पंक्ति में इस प्रकार रखा 1-7-5। इसे पूरा करने के लिए, ऊपर लिखित अपर्वन से मूल संख्याएं भाजित हो जाती हैं व हर स्थिति में शेष 0 है, 0 स्थापित किया तब उक्त पंक्ति पूर्ण हुई। 1-7-5-0 इस पंक्ति में 7 को 5 से गुणा करने पर 35 को 7 के स्थान पर रखा व शून्य को विलोपित किया। तब नई पंक्ति 1-35-5 हुई। इस पंक्ति में 35 का गुणा 1 से किया व उसमें 5 जोड़ा तथा उसे 1 के स्थान पर लिखा व 5 को विलोपित किया। इस तरह नई पंक्ति 40-35 है। अन्त में 40 में 19 का भाग देने पर तथा 35 में 15 का भाग देने से क्रमशः 6 व 5 शेष हैं। इस भाँति 6 लब्धि है व 5 से 221 को गुणा किया। अतः वह अंक 5 है। ये गुण-लब्धि सबसे छोटी हैं, इसी प्रश्न में इनसे बड़ी गुण-लब्धियाँ निकल सकती है।

कुट्टक की ऊपर स्थापित विधि के अतिरिक्त चार और भी विधियाँ स्थापित हैं। प्रायः इन सभी विधियों में ऊपर वर्णित विधि का प्रत्यक्ष या परोक्ष उपयोग हुआ है। हर विधि का विचार रखने के बाद एक-एक श्लोक उदाहरण भी अध्येताओं के लिए उपलब्ध है। कुट्टक समझने व सरल करने की एक अन्य रीति निम्न श्लोक द्वारा स्थापित है।

भवति कुट्ट विधेर्युति भाज्ययोः समपवर्तित योरपि वागुणः।
भवति योयुति भाजकयोः पुनः सचभवेद पर्वत न संगुणः।।

इस विधि की पुष्टि के लिए भी श्लोक-उदाहारण है।

कुट्टक विधियां के गहन अध्ययन करने पर इनके उपयोग से ग्रह-गणित के समझने में सहायता मिलती है। भास्कराचार्य कहते हैं कि -

कल्प्याऽथ शुद्धिर्विकला व शेषं षष्टिश्च भाज्यः कुदिना निहारः।।
तज्जं फलंस्युर्विकला गुणस्तुलिप्ताग्रम स्माच्च कलालवाग्रम।।
एवंतदूंर्द्ध च तथाधिमासावमाग्र काभ्यां दिवसार वीन्द्वोः।।

इसका हिंन्दी रूपान्तर टीकाकार ने इस भांति किया-कल्प्य भगण से त्रैमासिक करके जो ग्रह मिले उसकी विकलताओं के शेष से ग्रह और सायन अहर्गण तथा अधिमास शेष व अवम शेष से सौर दिन व चान्द्र दिन जानने के लिए पहले विकला शेष को ऋणक्षेप कल्पना करें। साठ को भाज्य कल्पना करें और कुदिनो को हार कल्पना करके कुट्टक की रीति से बल्ली (पंक्ति) बनाएं। इस बल्ली (पंक्ति) से जो लब्धि मिले उसको विकला समझें व गुण को कलाशेष माने। इस कलाशेष को ऋणक्षेप मानकर फिर कुट्टक की रीति से गुण लब्धि निकालें। जो लब्धि मिले उसे कला जाने व गुण को भाग शेष समझें। इस प्रकार क्रिया करते जायें फिर अधिमास शेष व अवम शेष से सूर्य व चाँद्र दिन निकलें।

निम्न श्लोक में भास्कराचार्य कहते हैं कि यदि क्षेप शून्य है तो गुण भी शून्य होगा।

क्षेपोभावोऽथवा यत्र क्षेपः शुद्धो हरोद्धृतः।
ज्ञेय शून्यं गुणस्तत्र क्षेपोहार त्दृतः फलम्।।

उक्त श्लोक-विधि को वैधता के लिए निम्न उदाहारण श्लोक उपलब्ध है -

येन पञ्चगुणिताः ख संयुताः पञ्चषष्टि सहिता श्चतेऽथवा।
स्युस्त्रयोदश त्दृतानिरग्रका स्तं गुणं गणक कीर्तयाऽऽ शुभे।।

कुट्टक विधि, श्लोक -उदाहरण तथा इनके प्रयोग से ग्रह-गणित समझाने के बाद भास्कराचार्य गणित पाश (अंकपाश) विधि समझाते हैं। गणित पाश व्यवहार में प्रारंभ में कुछ अंक मानकर उन्हें लिखना है। इसके पश्चात् उन समस्त अंकों को आपस में बार-बार स्थान बदलकर कितने ढंग से लिख सकते हैं यह जानना है। इस प्रकार से प्राप्त समस्त संख्याओं का जोड़ कितना होगा यह भी जानना है।

अंकपाश में कुछ अंक मानने पर व उनसे एक संख्या बनाने तथा उस संख्या में आपस में अंक बदल कर नई संख्या जितनी संभव हो उतनी बनाने की विधि एवं इन बनी हुई संख्याओं की जोड़ की विधि समझाने के लिए निम्न श्लोक है -

स्थानान्तमेकादि चयाङ्क घातः
संख्या विभेदा नियतैः स्यरकैः।
भक्तोंऽकमित्यांक समास निघ्नः
स्थानेषु मुक्तो मिति संयुक्तिः स्यात्।।

इन श्लोकों का भाव इस प्रकार है - प्रारम्भ में बिना पुनरावृत्ति वाले जितने अंक माने उन अंकों की गिनती की संख्या व उस संख्या से पूर्व समस्त घनात्मक पूर्णांकों की संख्या का गुणा करने से जो संख्या आती है वही संख्या उन मूल अंकों से बने समस्त संख्या भेद होंगे (संकेतः मूल अंकों की गणन संख्या की गुणन संख्या Factorial लें)। इस तरह से प्राप्त समस्त संख्या-भेद संख्याओं का जोड़ जानने के लिए सर्वप्रथम माने हुए अंकों को जोड़ें। प्राप्त जोड़ संख्या को मूल अंकों की गणन संख्या की गुणन संख्या से गुणा करें। प्राप्त संख्या को माने हुए अंकों की गणन संख्या से भाग दें।

इस भांति प्राप्त संख्या को लिखकर उसके ठीक नीचे एक-एक अंक दाहिनी ओर खिसकाकर ठीक उतनी बार लिखें जितने अंक माने थे। अन्त में जोड़ के नियम से इन्हें जोड़े। यही जोड़ समस्त संख्या भेद संख्याओं का जोड़ है। उक्त विश्लेषण थोड़ा क्लिष्ट है। निम्न उदाहरण समझने के बाद पुनः पढ़ें।

द्विकाष्ट काभ्यां त्रिनवाष्ट कैर्वा निरंतरं द्वयादिन वावसानैः।
संख्या विभेदाः कति संभवंति तत्संख्य कैक्यानि पृथग्वदाशु।।

सारांश यह है कि दो व आठ के, तीन, नौ व आठ के तथा दो से नौ तक के समस्त अंकों के अलग-अलग कितने-कितने संख्या भेद होंगे तथा उन अलग-अलग संख्या भेदों की संख्याओं का अलग-अलग योग क्या-क्या होगा। बताओ ?

प्रश्न के पहले भाग की व्याख्या - इसमें केवल दो मूल अंक हैं 2 व 8 इन अंकों को आपस में मात्र L2 बार याने दो बार बदल सकते हैं। ये हैं - 2 व 8 तथा 8 व 2, इन अंकों का जोड़ 10 है। इस 10 के L2 से गुणा किया व 2 से भाग दिया तब प्राप्त अंक 10 मिला। इस 10 को उक्त नियम में एक बार दाहिनी ओर खिसका कर लिखा व 10_{10} का जोड़ 110 मिला। यह 110 मूल संख्याओं 2 व 8 तथा 8 व 2 का जोड़ है।

प्रश्न के दूसरे भाग की व्याख्या- यहाँ पर कुल तीन अंक 3, 9, 8 हैं। अतः अंक बदलाब की संख्या L3 होगा अर्थात् 6 ढंग से ये अंक बदल सकते हैं। मूल अंकों की जोड़ संख्या 20 है। इसे L3 ये गुणा करने पर 120 मिला। इस 120 में 3 का भाग देने से 40 प्रमाण मिला। इस 40 को एक के नीचे एक खिसकाकर तीन बार लिखा व जोड़ा $^{40}40_{40}$, इनका जोड़ 4440 है। अतः उक्त मूल तीन संख्याओं के 6 बार बदलाव से प्राप्त

संख्याओं का जोड़ 4440 हुआ।

प्रश्न के तीसरे भाग की व्याख्या - इस प्रश्न में मूल दिये हुए अंक 2,3,4,5,6,7,8,9 कुल आठ अंक हैं। इन आठों अंको के अंक-भेद् (आपस में अंक बदलाव) की संख्या L8 हुई। अर्थात् 8x7x6x5x4x3x2x1=362880 हुआ। दिए हुए आठ अंकों का जोड़ 44 है। सम्पूर्ण भेद-संख्याएं 44xL8=15666720 हुयीं। इस संख्या में मूल अकों की संख्या 8 से भाग देने पर 1995840 प्राप्त हुई। अब इस संख्या को एक स्थान दाहिनी ओर खिसकाकर एक के नीचे एक आठ बार लिखें व जोड़ें। यह लिखने की प्रक्रिया जोड़ लिखने की होगी और कुल योग होगा 22175666998240। यह जोड़ दी हुयी आठ अंकों के 362880 संख्या-भेदों का योग है।

अगले श्लोक में पाठकों से प्रश्न किया गया है कि यदि शिव के दसों हाथों में स्त्राण हैं व विष्णु ने चारों हाथों में स्त्राण हैं। तब बताएं कि शिव के दस स्त्रोणों को उनके हाथों में क्रमिक रूप से बदला जाय तो शिव की मूर्तियों के कितने भेद होंगे। इसी तरह विष्णु के चारो हाथों में चार स्त्राण क्रमिक रूप में बदले जायें तो विष्णु की मूर्तियों के कितने भेद होगे?

> पाशांकुशाहि डमरू ककपाल शूलैः
> खद्वांग शक्ति शर चापयुतै र्भवन्ति।।
> अन्योन्य हस्त कलितैः कति मूर्ति भेदाः
> शंभो हरेरिवगदारि सरोज शंखै।।

यदि माने हुए अंकों में कुछ अंकों का पुनरावृत्ति हो तो सब अंकों के कुल भेदों की संख्या का ज्ञान निम्न श्लोक को समझने से होगा।

> यावत्स्थानेषु तुल्यांकास्तद्भेदैस्तु पृथक्कृतैः
> प्राग्भेदावित्दृता भेदास्त त्संख्यैक्य श्च पूर्ववत्।

इस श्लोक में कहा है कि सर्वप्रथम पुनरावृत्ति वाले अंकों समेत समस्त अंकों के कितने संख्याभेद हो सकते हैं यह जाने। तत्पश्चात् जितने भी एक ही प्रकार के अंक हो उनके अलग अंक भेद निकालें। इस अलग अंक भेद की संख्या से समस्त अंक भदों की संख्या को भाग दें, जो लब्धि मिले वही अंक-भेदो की संख्या होगी। इसके पश्चात् पूर्व रीति से समस्त संख्या भेदों का जोड़ निकालें।

अंक पाश व्यवहार में अन्य विधियों को स्पष्ट करने के लिए उदाहारण दिये हुए हैं।

अन्त में अंकपाश की सरलता व उसके उपयोग के संबंध में भास्कराचार्य निम्न श्लोक लिखते हैं -

> न गुणो न हरो कृतिर्नधनः पृष्टस्तथापि दुष्टानाम्।
> गर्वित गण कबहुनां स्यात्पातोऽवश्यमं कपाशेऽस्मिन।।

अर्थात् अंकपाश में न गुणा, न भाग, न वर्ग, न घन है तब भी यदि कोई दुष्टात्मा अंकपाश पर संदेह करता है तो उसका संदेह प्रश्न करते ही पात होगा (!)

अन्त में भास्कराचार्य गणित विषय की सरलता, संप्रेषणता, व्यावहारिकता, संक्षिप्ता आदि के महत्व एवं प्रशंसा में निम्न कथन लिखते हैं -

> येषां सुजाति गुण वर्ग विभूषितांङ्गी शुद्धाखिल व्यवत्दृतिः
> खलु कण्ठ सक्ता, लीलावतीह सरसोक्त मुदाहरन्ती,
> तेषां सदैव सुख सम्पदुपैति वृद्धिम्।।

इस कथन में यमक अलंकार भी झलकता है।

भास्कराचार्य निम्न क्षेपक के साथ ही कृति लीलावती को पूर्णता की ओर मानते हैं -

अष्टौ व्याकरणा निषट् चभिषजां व्याचष्टताः संहिता षट् ।
तर्कान्गणितानि पंच चतुरोवेदान धीतेस्मयः ।।
रत्नानां त्रितयं द्वयं च बुबुधेमीमः सयोरन्तरम् ।
सब्द्रैह्नैक मगाध बोधम हिमासोऽस्याः कविर्भास्करः ।।

पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ के पीछे ज्योतिष, तंत्र व वृहज्जातक आदि पुस्तकों की कीमत व उनके मिलने का स्थान प्रकाशित हैं। इस पुस्तक का अवलोकन करने से कुछ विचार मन में उठते हैं। लगभग बयालीस व्यवहारों को जो तत्कालीन समाज में प्रचलित थे व जीवन के लिए आवश्यक थे, भास्कराचार्य ने उन्हें सामान्य व्यक्ति तक को समझाने का प्रयत्न किया। इस अवलोकन के लेखक का प्रयत्न रहा है कि भास्कराचार्य द्वारा वर्णित प्रकार व व्यवहारों की झलक स्पष्ट रूप में प्रस्तुत हो सके। पुस्तक में छाया व उसके प्रकार के अध्ययन को देखकर प्रथम दृष्टि में लगा कि कहीं न कहीं इसी पुस्तक में भास्कराचार्य बादलों की गति, बादलों द्वारा ले जाया जा रहा जल का प्रमाण, मरूस्थलों में प्रकृति द्वारा बनाये हुए रेत के शंकु की आकृति के ढेर व उन टीलों को हवा द्वारा दी जाने वाली गति व बदलाव, समुद्री लहरों का अध्ययन व नदियों द्वारा बहाव बदलने के प्राकृतिक प्रकार आदि भी कुछ अंशों में वर्णित होगा, परन्तु ये प्रकार पुस्तक में समाहित नहीं किये।

अंकगणित, बीजगणित (एलूजब्रा नहीं) व रेखागणित (ज्यामिति नहीं) विषयों का उपयोग दैनिक जीवन संबंधी आवश्यकताओं को समझने व पूर्ण करने के लिए किया गया है। यूक्लिद (Eucleides) स्थापित जी- मेट्रान (ge-metron) वर्तमान में ज्यामिति कही जाने वाले विषय में साध्यों (Propositions) व उनके होने के तार्किक प्रमाण जैसे प्रयत्न इस पुस्तक में समाहित नहीं हैं।

यदि इस पुस्तक या इसके समरूप पुस्तक का ज्ञान गुरूकुलों में अध्येताओं को दिया जाता तो यह सम्भव था कि वर्तमान में हो रहे शोधों में भारतीय आयाम और भी अधिक होते।

सेवा निवृत्त आचार्य
गणित विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सन्दर्भ -

1. Abu- Alraihan Muhammad Ibn' Ahmad Al be runi : al beruni's India, (English Translation: Edwand c.schau) Rout ledge & Kegan Paul Ltd, London (Indian Print: S.Chaud &Co.New Delhi pp 161-164)

2. Fredrick Angls : Dialeclics of Nalivece, Foreign Lauguage Pub. house, Moscow, (1954,P/345)

3. रामस्वरूप शास्त्री लीलावती : श्रीयुत् गणक चक्र यूड़ामणि भास्कराचाय्र विरचिता, खेमराज श्री (टीकाकार) श्रीकृष्णदास इत्येनेन श्री बेङ्कटेश्वर मुद्राणालय (द्वितीय वृत्ति) जेष्ठ सम्बत् 1954, शके 1819 सम्पूर्णपुस्तक।

4. Stephen Hawking : A Brief Hishtony of tuine, Bantam Books (Loudom), (1989) PP 46, 47,81.

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में छायावाद

कामिनी

आधुनिकता शब्द अंग्रेजी के मॉडर्ननिटी (Modernity) का पर्याय है। यूरोप में सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग 'वर्तमान' के पर्याय के रूप में किया जाता रहा था। पुनर्जागरण के पश्चात आधुनिक शब्द से कई विशेषण जुड़ते चले गए और उसका अर्थ विस्तार होता गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक आते-आते आधुनिकता का प्रयोग 'सुधार', 'प्रगतिशीलता' व 'तार्किकता' के अर्थ में होने लगा। भारत में भी आधुनिकता का संबंध नवजागरण से ही जुड़ता है। भारत में अंग्रेजों का वर्चस्व बढ़ने के साथ ही सामाजिक व आर्थिक ढाँचे में गंभीर उथल-पुथल देखने को मिलती है जिसके फलस्वरूप एक नया सामाजिक वर्ग आकार लेता है। अंग्रेजों ने अपनी वर्चस्व स्थापना के क्रम में भारत में जो भी कार्यक्रम लागू किए उनका परिणाम एकांगी न रह सका बल्कि यह बहुआयामी सिद्ध हुआ, मसलन पश्चिमी शिक्षा, प्रेस का विस्तार, रेल आदि के प्रसार ने भारतीयों के लिए दुनिया भर के ज्ञान-विज्ञान का रास्ता खोल दिया। भारतीयों ने तर्क और विज्ञान की नई रोशनी में अंग्रेजी शासन के साथ भारतीय समाज की आंतरिक बुराइयों को भी देखना शुरू किया। 1857 के महान स्वतंत्रता संग्राम ने भारत में नवजागरण की प्रक्रिया को काफी तेज कर दिया जिसका परिणाम हमें बड़े पैमाने पर शुरू हुए सुधार कार्यक्रमों के रूप में दिखाई पड़ता है। आज हम यह बात प्रामाणिक रूप से कह सकते हैं कि भारतीय नवजागरण अपने अतीत के प्रति अत्याधिक मोह-ग्रस्त होने के कारण सदैव द्वंद ग्रस्त रहा जिसका असर हमारे साहित्य पर भी दिखाई पड़ता है। हमारी आधुनिकता ने भी इसी द्वंद्व के बीच आकार लिया है जिसके अच्छे और बुरे दोनों परिणाम हमारे सामने हैं। यहाँ 'बुरे' से इशारा आधुनिकता की कोख से जन्मी सांप्रदायिकता की तरफ है। भारत में आधुनिकता के आगमन की यह अवधारणा पूरी तरह निर्विवाद नहीं है। इसको चुनौती देते हुए अक्सर यह सवाल उठाया जाता है कि यदि अंग्रेज भारत न आए होते तो क्या भारत में आधुनिकता न आती? इस सवाल के जबाब में यही कहा जा सकता है कि आधुनिकता एक प्रक्रिया है किसी भी समाज में जब आत्मसजगता, तर्क, विज्ञान, के साथ कर्ता भाव जागृत होने लगता है तो वह आधुनिकता की तरफ अग्रसर होता है। निसंदेह भारत में अंग्रेजों के जमने के पहले ही उपरोक्त स्थितियाँ बनने लगीं थी सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों के साथ प्रेस का आगमन हो चुका था। साहित्यिक तथ्यों की खोज करें तो रीतिकाल में हमें आधुनिकता के लक्षण मिलने लगते हैं तो एक बात तो तय है कि अंग्रेज न आए होते तब भी आधुनिकता तो आती ही लेकिन उसका स्वरूप कैसा होता? यह प्रश्न आज निरर्थक है।

भारतीय नवजागरण अपने कलेवर में युरोपीय नवजागरण से सर्वथा अलग है विभिन्न प्रदेशों में

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

इसका स्वरूप अलग-अलग रूपों में दिखाई पड़ता है और यही हाल नवजागरण के साथ आ रही आधुनिकता का भी है। यह बंगाल में एक ढंग का, महाराष्ट्र में दूसरे ढंग का तथा हिन्दी क्षेत्र में इन दोनों से अलग ढंग का दिखाई पड़ता है। लेकिन नवजागरण के इन विभिन्न रूपों में एक समानता भी थी, वह यह कि भारतीय जनता को जागृत करने में सभी सहायक सिद्ध हुए थे और इसके फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज आधुनिकता की ओर उन्मुख हुआ था। रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में – ''भारत में आधुनिकता का प्रवेश उन्नीसवीं सदी में हुआ और उसके व्याख्याता राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानन्द, लोकमान्य तिलक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि भारतीय थे।''[1]

राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में जो भी बदलाव हो रहे थे उसका असर साहित्य पर पड़ना भी स्वाभाविक ही था। आधुनिकीकरण के चरण के रूप में पत्रकारिता का विकास, साहित्य की अनेक विधाओं का प्रवर्तन, भाषा की दृष्टि से खड़ी बोली की प्रतिष्ठा आदि तत्व हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से शुरू होकर द्विवेदी युग और छायावाद के साहित्य में प्रकट हुए। वस्तुतः आधुनिकता की प्रक्रिया क्रमिक रूप में निरंतर गतिशील प्रक्रिया है, इसलिए आधुनिकता की शुरुआत के लिए कहीं रेखा खींच कर इसे स्पष्ट नहीं किया जा सकता। जैसा कि केदारनाथ सिंह कहते हैं – ''वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दी कविता में (और कमोबेश पूरी भारतीय कविता में भी) आधुनिकता कोई आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि यह एक लंबी विकास प्रक्रिया का परिणाम है। मुक्ति आंदोलन के समानान्तर और कई बार उसके आगे-पीछे यह प्रक्रिया पुराने मूल्यों से टकराती हुई और उन्हें छिन्न-भिन्न करते हुए अपने ढंग से चुपचाप चलती रही है।''[2]

आधुनिकता-बोध के निर्माण की प्रक्रिया तीन स्तरों पर घटित होती है –विचार के स्तर पर, भाषा के स्तर पर और विधाओं के स्तर पर विचार के स्तर पर, देखें तो रीतिकालीन नखशिख परंपरा, नायक-नायिका भेद आदि को छोड़कर भारतेन्दु युगीन काव्य से ही हिन्दी जाति के जीवन के दुख-दर्द, ओज कर्मण्यता, जातीय गौरव, प्रेम सौहार्द और यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम कविता बनती है। रीतिकाल में जो सामाजिक जीवन उपेक्षित हो गया था, वह भारतेन्दु युग से पुनः प्रतिष्ठित होता है। भारतेन्दु युग में नारी शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा और अस्पृश्यता को लेकर अनेक सहानुभूतिमूलक कवितायें लिखीं गई। ''बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म''[3] कहकर भारतेन्दु ने वर्णाश्रम का विरोध किया तो प्रताप नारायण मिश्र ने बाल विधवाओं की दीन दशा को इन शब्दों में प्रकट किया 'कौन करेजो नहिं कसकत, सुनि विपति बाल विधवन की'।

विचारों में परिवर्तन के साथ-साथ भाषा में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था क्योंकि विचारों को उसकी सहज भाषा से पृथक नहीं किया जा सकता द्य पुराने संस्कारों को तोड़ने के लिए कवि ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली अपनाता है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में – ''भारतेन्दु से काव्यभाषा का आधार बदलता है। ब्रजभाषा से खड़ीबोली जहाँ क्रमशः द्विवेदी युग के प्रचलित अप्रस्तुत विधान के बीच से बिम्ब की नई पहचान उभरती है। जिस बिन्दु पर समस्त भावबोध एकबारगी जटिलतर होता है और संश्लिष्टता की ओर झुकाव बढ़ता है।''[4]

गद्य की जितनी भी विधाएँ समकालीन साहित्य में प्रचलित हैं, उसमें से लगभग सारी विधाओं का प्रवर्तन भारतेन्दु युग में ही होता है। सामान्य जनता तक अपनी बात को पहुँचाने के लिए इस युग के रचनाकारों ने गद्य की सभी विधाओं का प्रयोग किया, जैसे नाटक, उपन्यास, कहानी आत्मकथा आदि।

भारतेन्दु युग से शुरू हुई सभी साहित्यिक प्रवृतियाँ अपने घनत्व तथा विस्तार के साथ द्विवेदी युग में आगे बढ़ती हैं। छायावाद तक आते-आते भाषा ,विचार आदि में एक प्रौढ़ता दिखाई पड़ने लगती है। छायावाद

बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में भारत में हुए नवजागरण का काव्यात्मक रूपांतर है। विकासमान और संघर्षशील पूंजीवाद तथा पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा और साहित्य के निकट संपर्क या प्रभाव से भारत में वैयक्तिक अनुभूतियों, व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों की सीधी अभिव्यक्ति दिखाई पड़ने लगती है। पूंजीवाद के उदय और आधुनिक विकास के प्रारम्भ में व्यक्ति की बदली हुई सामाजिक स्थितियाँ कविता को रोमांटिकता की ओर ले जाती हैं। स्वचेतना, वस्तुगत प्रकृति के प्रति जिज्ञासा का भाव, सौंदर्य-प्रेम, परिवेश के प्रति असंतोष आदि रोमांटिकता के सारे तत्व छायावादी कविता में मिलते हैं। इस रोमानियत की वजह से हमें छायावादी कविता में जहाँ एक ओर स्वप्न और आत्मरति दिखाई पड़ती है वहीं दूसरी ओर विद्रोह और मुक्ति की अकुलाहट भी कविता का मुख्य स्वर बनती है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा राष्ट्रीय आंदोलन के उत्थान में मध्यवर्गीय रोमांटिकता का प्रमुख योगदान रहा है कविता के क्षेत्र में छायावाद के रूप में इन सबका ऐतिहासिक और तर्कसंगत प्रतिफलन हुआ है।

छायावादी काव्य तत्कालीन समाज में पैदा हो रहे आधुनिक भाव-बोध तथा उसके विरोधाभासों को अभिव्यक्त करता है। वह भारत की औपनिवेशिक पराधीनता तथा समाज में व्याप्त सामंती मूल्यों से मुक्ति का साहित्य है जिसमें जागरण तथा विद्रोह के भावों के साथ जातीय एकता व नवीन सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा दिखाई पड़ती है। छायावाद में मिलने वाली व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना का रूप आपने-आप में अनूठा है यह प्रयोगवाद या नई कविता के व्यक्तिवाद जैसा नहीं हैं। छायावाद में व्यक्ति स्वातंर्त्य की चाहत तत्कालीन समाज की पराधीनता से मुक्ति की लड़ाई से जुड़ी हुई है। निराला कहते हैं –

'मैंने मैं शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई।'[5]

यहाँ एक बात साफ तौर पर रेखांकित की जा सकती है कि छायावादी 'मैं' सामाजिक मुक्ति व उसके दुख- दर्द को व्यक्त करने वाला सर्वनाम है। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार – ''मुक्ति के प्रति आग्रह का तात्पर्य इस लौकिक सत्ता से परे किसी चरम सत्ता में विलयन से नहीं था बल्कि रूढ़ियों, अंधविश्वासों, गलित मूल्यों से मुक्त होना था।..... अपने आप को विलीन करने की प्रक्रिया ही स्वतन्त्रा तक ले जाती है। बंधन चेतना के मद्धिम पड़ने, बोध के संकीर्ण होने और चीजों के गलत मूल्यांकन का दूसरा नाम है। मुक्ति एक स्तर पर वैयक्तिक है, तो दूसरे स्तर पर सामूहिक, साहित्य में वैयक्तिकता के फलस्वरूप ही काव्यरूढ़ियों से मुक्त होने की बात कही गई है।''[6]

छायावादी काव्य में नारी को सौंदर्य-प्रतिमा के साथ सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ नारी दया की पात्र न होकर प्रेरक है। इस तरह देखें तो यह एक बदली हुई नारी चेतना है जो परिवर्तित होते हुए समाज के साथ प्रकट हो रही है। द्विवेदी युगीन नारी का त्याग छायावाद तक आते–आते अधिकार की मांग करने लगता है वह आदर्श की खोखली जमीन से यथार्थ की सतह पर उतरने को बेचौन दिखाई पड़ता है। छायावाद ही वह काव्य आंदोलन है जिसमें एक नारी इतना साहस अर्जित कर पाती है कि वह अपने पूर्व-प्रेमी से कह सके।

''हम दोनों भिन्न वर्ण
भिन्न जाति, भिन्न रूप
भिन्न धर्मभाव पर

केवल अपनाव से प्राणों से एक थे ।'[7]

शिक्षा के नए वातावरण में स्त्री और पुरुष के साहचर्य से प्रेम का एक नया स्वरूप सामने आया ।जिसमें अपने प्रेम को व्यक्त करने के लिए किसी माध्यम का सहारा नहीं लिया गया ,अपितु स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया गया कि 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी' ।[8] वही महादेवी वर्मा के काव्य में सामंती बंधनों से नारी के स्वातंर्त्य भाव और मुक्ति की छटपटाहट सर्वत्र दिखलाई पड़ती है ---

'मैं नीर भरी दुख की बदली
स्पंदन में चीर निस्पंद बसा
क्रंदन में आहत विश्व हँसा
नयनों मे दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली'[9]

नवजागरण काल में नारी के प्रति एक नई दृष्टि विकसित हुई थी। विभिन्न सामाजिक परम्पराओं के मूल्यांकन के साथ ही नारी की सामाजिक स्थिति का भी मूल्यांकन किया गया। छायावाद की नारी दृष्टि भी इसी मूल्यांकन का परिणाम है। नारी के प्रति इस बदली दृष्टि का परिणाम बदले स्त्री–पुरुष सबन्धों के रूप में भी दिखाई पड़ता है। स्त्री केवल पत्नी के रूप में ही नहीं प्रिय, प्रेयसी, सखी या सजनी के रूप में भी पहचान प्राप्त करती है। इसी क्रम में छायावादियों की उस भावदृष्टि का विकास भी देखा जा सकता है जिसे हम सामंत विरोधी कह सकते हैं। सम्राट अष्टम एडवर्ड जब अपनी प्रेमिका के लिए सम्राट पद त्याग देते है तो निराला कहते हैं-

'मानव-मानव से नहीं भिन्न
निश्चय हो श्वेत कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न
भेद कर पंक
निकलता कमाल जो मानव का
वह निष्कलंक हो कोई सर ।'[10]

इसी तरह छायावादी प्रेमनुभूति भी एक नए रूप में है। रीतिकाल की तरह शरीर यहाँ लक्ष्य नहीं है भक्तिकाल की तरह तिरस्कृत भी नहीं है, बल्कि यह वह भूमि है जहाँ स्त्री-पुरुष अपने रागात्मक सबंध की जैविकी का सानंद उपभोग करते हैं। छायावादी प्रेमानुभूति न केवल शरीर व मन दोनों की प्रतिक्रियाओं को समान स्थान देती है बल्कि इसका हर पक्ष कहीं न कहीं अपने युग में नया रूपकार लेते मानवीय सम्बन्धों के यथार्थ से जुड़ा है। श्रद्धा और मनु का मिलन जिसने मन से लेकर शरीर तक की लंबी यात्रा तय की यह मिलन मध्ययुगीन स्त्री-पुरुष सम्बन्धों से सर्वथा विपरीत बिन्दु प्रस्तुत करता है। डॉ. शम्भूनाथ के शब्दों में –''प्रेम मनुष्य को व्यक्तिवाद से मुक्त कर देता है, उसका पुनर्निर्माण करता है, उसे व्यापक सौंदर्यबोध की ओर ले जाता है, छायावाद का प्रेम ऐसा ही था ।''[11]

महादेवी की प्रेमानुभूति छायावादी प्रेम के दूसरे कोण को सम्पन्न करती है। यह कोण है स्त्री की दृष्टि से देखे-समझे और भोगे संसार का, स्त्री के अनुभव का। इसके माध्यम से उस युग की स्त्री मानसिकता में घटित हो रहे परिवर्तनों को समझा जा सकता है, जिसके एक ओर लज्जालु किशोर भावना है, किन्तु इसके बाद के सारे प्रेमानुभाव में एक ही पक्ष बार-बार उभरता है और वह है नवजागृत नारी विश्वास का, जिसके चलते वह अपने को पुरुष के अस्तित्व में लय नहीं करना चाहती –

''सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।''[12]

छायावाद का समय इतिहास के पुनरान्वेषण का भी समय था। वैसे हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता का उदय पुनुरुत्थान भावना के साथ होता है। अंग्रेज रोमांटिक कवियों ने भी विगत सांस्कृतिक वैभव को प्रलुब्ध दृष्टि से देखा था और औद्योगिक सभ्यता के निर्मम प्रसार में मानवीय सम्बन्धों को आदिम रागात्मकता की ओर लौटने का संदेश दिया था। एक बात यहाँ साफ करना जरूरी है कि अंग्रेज कवि गुलाम नहीं थे उनके सामने औद्योगिक सभ्यता का विराट भ्रमजाल था जबकि भारत में स्थितियाँ एक-दम उलट थीं यहाँ हम विगत सांस्कृतिक वैभव में आदिम रागात्मकता के साथ-साथ पौरुष भी ढूंढ रहे थे और इस क्रम में ऐतिहासिक विसंगति का शिकार भी हो रहे थे। छायावादी साहित्य एक पराधीन देश की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। भारत के अतीत की काफी गौरवशाली छवियाँ हैं, सभ्यता संस्कृति का सुंदर इतिहास है ऐसे में जब देश साम्राज्यवाद और नव पूंजीवाद के लौहतन्त्र में जकड़ता जा रहा था तब वर्तमान के पराभव में शक्ति अर्जित करने के लिए अतीत की ओर लौटना छायावादी संस्कार बन गया। अतीत के प्रति अत्याधिक मोहग्रस्तता के काफी दुष्परिणाम भी हमें झेलने पड़े क्योंकि वर्तमान दुश्मन से लड़ने के लिए हमने जिन प्रतीकों का चयन किया वे बहुत ही अतार्किक थे। यहाँ पर एक बड़ा सवाल हमारे सामने खड़ा होता है कि जिस 1857 ने भारतीय नवजागरण के पनपने में इतनी बड़ी भूमिका निभाई उसकी शानदार परंपरा हमारी राजनीति और साहित्य का हिस्सा क्यों नहीं बन सकी?

छायावादी कविता में भी हम इस कमी को महसूस कर सकते हैं। छायावादी कविता अपने समय की राजनीति से गहरे तक प्रभावित है यह अकारण नहीं है कि एक तरफ तिलक शिवाजी उत्सव और गणेश पूजा का आरंभ करते है तो दूसरी तरफ निराला 'शिवाजी का पत्र', प्रसाद 'महाराणा का महत्व', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' जैसी कविता लिखते हैं। ध्यान से देखा जाय तो यह सारे प्रतीक हिन्दू प्रतीक हैं जो सांझी लड़ाई में बहुत फायदेमंद नहीं साबित हुए। बहरहाल यह छ्यवाद का एक अनुद्धृत पक्ष है जो कहीं से भी उसका मुख्य प्रतिपाद्य नहीं है अतः इसे छायावादी चेतना के मूल्याकन का आधार नहीं बनाया जा सकता। छायावादी कविता के मूल्यांकन का आधार तो उसकी मुक्तिकामी चेतना ही हो सकती है जो की उक्त प्रतीकों का भी प्रतिपाद्य है। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' में प्रसाद कहते हैं –

''आह! इस खेवा की!
कौन थामता है पतवार ऐसे अंधड़ में
अंधकार पारावार गहन नियति सा
उमड़ रहा है, ज्योति रेखा हीं क्षुब्ध हो।''[13]

अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नीति केवल भारत के आर्थिक शोषण तक सीमित नहीं थी बल्कि उसका उद्देश्य भारतीय जनता के जातीय और सांस्कृतिक भावों को नष्ट कर उसे आत्महीनता की दशा में धकेल देना भी था। इसीलिए तत्कालीन भारत में राजनीतिक स्वतन्त्रा प्राप्त करने के लिए जनता को सांस्कृतिक बोध कराना आवश्यक था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए लिखा है – ''छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का काव्य था, जिसमें कवियों की भीतरी आकुलता ने ही नवीन भाषा-शैली में अपने को अभिव्यक्त किया। सभी उल्लेखनीय कवियों मे थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की आकुलता थी। जिन कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का भाव दिखाया था, उनके इस भाव का कारण तीव्र सांस्कृतिक चेतना ही थी।''[14] उदाहरण के लिए हम निराला को ले सकते हैं। निराला भारतीय

सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन और राजनीतिक पराभव का कारण ही नहीं उपस्थित करते बल्कि संघर्ष के भावों द्वारा पुनर्जागरण की प्रेरणा भी देते हैं। निराला की "जागो फिर एक बार" कविता को छायावादी सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है।

सन् 1920 से लेकर छायावाद के उत्कर्ष काल सन 1936 तक भारतीय राजनीति में गांधी जी का उत्कर्ष काल माना जा सकता है इसलिए कई विद्वान छायावाद को गांधीवादी विचारों का राजनीतिक प्रतिफलन मानते हैं जैसा की डॉ. नगेंद्र ने लिखा है – "यह ठीक है कि छायावाद का जन्म दक्षिण और वामपंथ के इस संघर्ष यहाँ तक की गांधीवाद के जन्म से ही पहले हो चुका था, परंतु फिर भी इसमें संदेह नहीं कि उसका मूल आधार आदर्शवादी चिंताधारा ही है जो गांधीवाद अथवा समस्त दक्षिणपक्षीय विचारधारा का ही मूल आधार है।"[15] लेकिन गहराई से देखें तो हम पाते हैं कि सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाने की पद्धति में छायावाद गांधीवाद से एकदम अलग रास्ता चुनता है। गांधीवादी विचारधारा राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्ति के लिए किसान और जमींदार, उच्च और निम्न वर्ग, पूंजीपति और मजदूर को एक ही रास्ते पर चलकर सत्य और अहिंसा की विचारधारा के माध्यम से वर्ग समन्वय और हृदय परिवर्तन जैसे सिद्धांतों का पाठ पढ़ाती है। छायावादी कवि इन सिद्धांतों की हकीकत समझते हैं वे इन वर्गों के आपसी अंतर्विरोध को उद्घाटन कराते हुए उपेक्षित निम्न वर्ग, किसान और मजदूर की स्वाधीनता को ही असली स्वाधीनता मानतें हैं। कहने का तात्पर्य है कि समाजवादी यथार्थवादी चेतना भी छायावाद का एक हिस्सा है हाँ एक बात जरूर है कि वह उसके घोषणा-पत्र में शामिल नहीं की गई है। यहाँ बात को स्पष्ट करने के लिए निराला की कविता 'बादल राग-6' का उदाहरण सबसे बेहतर रहेगा। निराला की यह कविता 1924 में प्रकाशित होती है। इस कविता की खास बात यह है कि सीधे-सीधे पूंजीवाद साम्राज्यवाद सामंतवाद के खिलाफ क्रांति की वकालत करती है और इस बात को भी स्थापित करती है कि क्रांति से 'छोटे ही शोभा पाते हैं' निराला को व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन का पूरा भरोसा है वैसे ही जैसे क्रांतिकारियों को होता है –

'अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर,
गगन-स्पर्शी स्पर्धा-धीर।
हँसते है छोटे पौधे लघुभार-
शस्य अपार,
हिल-हिल
खिल-खिल,
हाथ मिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव-रव से छोटे ही शोभा पाते।
रुद्ध कोष है, क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर

तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!'[16]

भारत में आधुनिकता के आगमन की प्रक्रिया काफी जटिल और भिन्न है उसमें ढेर सारी सकारात्मकता है तो कुछ नकारात्मकता भी है और छायावादी साहित्य दोनों अर्थों में इस प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता दिखाई पड़ता है। इस लेख के अंतिम बिन्दु के रूप में हम छायावादी रहस्यवाद और आधुनिकता से उसके संबंध की पड़ताल करेंगे। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार - ''रहस्य भावना प्राचीन है, लेकिन रहस्यवाद आधुनिक है और हिन्दी में छायावादी काव्यान्दोलन से संबद्ध है।''[17]

छायावाद का आधार था नव्यवेदांत अर्थात वेदान्त दर्शन की नवीन युग के अनुरूप पुनर्व्याख्या। यह व्याख्या अद्वैत दर्शन पर आधारित थी, किन्तु यह अद्वैत दर्शन का प्राचीन वैयक्तिक साधनपरक तत्वों से हटा नवीन समाजिकता के धरातल पर अवतरण था। छायावाद ने अपने युग के यांत्रिक भौतिकवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। यांत्रिक भौतिकवाद प्रकृति और मनुष्य के बीच उपयोगितामूलक व्यवसायिक संबंध स्थापित करता था, छायावाद ने प्रकृति को एक चेतन व्यक्तित्व, विराट सत्ता के रूप में देखा। छायावादी रहस्यवाद के वस्तुगत स्रोतों को देखें तो पहला ही तत्व कवि में आत्मप्रसार तथा आत्मविस्तार की अदम्य आकांक्षा के रूप में दिखाई देता है। वास्तव में यह सभी प्रकार की देशकालगत बहिरंग व अंतरंग रूढ़ियों से मुक्ति की कामना के रूप में तथा कहीं रूप और नाम की सीमा में घिरे जगत से निर्बंध होने की लालसा के रूप में आता है। डॉ. नामवर सिंह इसका सामाजिक आधार स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - 'यह जो अज्ञात और असीम की अभिलाषा है, वह वस्तुतः ज्ञात सीमाओं के असंतोष से उत्पन्न हुई है, और यह असंतोष तथा अभिलाषा केवल दिमागी ऐय्याशी नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक आधार है, यह असंतोष और महत्वाकांक्षा उस मध्यवर्गीय व्यक्ति की है जो मध्ययुगीन पारिवारिक और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर उन्मुक्त वातावरण में साँस लेने के लिए आकुल हो रहा था।'[18]

मध्यकाल की रहस्यभावना में मुक्ति की कामना इहलोक के बंधनों से थी, परलोक के लिए, किन्तु छायावादी रहस्यभावना में कवि इहलोक के बंधन इहलोक के लिए ही तोड़ना चाहता है। उसकी मुक्ति का सारा प्रयोजन लौकिक और मानवीय है। इसी प्रेरणा के वशीभूत होकर पंचवटी प्रसंग में राम कहते हैं –

'छोटे से घर की लघुसीमा में
बंधे हैं क्षुद्रभाव
यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निः सीम भू पर।'[19]

निराला का वेदान्त दर्शन से जुड़ाव आरंभ से ही रहा, लेकिन यह वेदान्त गतिहीन, जड़, लोकनिरपेक्ष न होकर सामाजिक आधार पर प्रतिष्ठित है। कवि के भीतर एक द्वंद्व चलता है -जगत को माया समझने और उसका त्याग करने की सदियों से चली आ रही अवधारणा और जगत के शोषित, पीड़ित मनुष्य को लेकर, लेकिन इस द्वंद्व से निकलता हुआ कवि मनावमात्र का पक्ष लेता है और इसमें उसे अधिवास छूटने का भी कोई दुख नहीं है। प्रकृति के अनंत यौवन और सुषमा और मनुष्य जगत के दीन-हीन जीवन के बीच महादेवी प्रश्न करती हैं –

'देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को

तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ।'[20]

यही प्रश्न कामायनी का मनु कुछ इस प्रकार करता है - 'वन गुहा कुंज-मरुअंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास।' 21 यह विकास मनु का अपना नहीं, मनुष्यमात्र का है। वह प्रगति आकांक्षी मनुष्य है जो कहीं रुकना नहीं चाहता, एक लालसा उसे निरंतर उद्वेलित किए रहती है और यह लालसा अपने को खोजने, जानने और इसके माध्यम से मनुष्य मात्र के संधान की लालसा है, लेकिन इसके साथ ही मनु आधुनिक, औद्योगिक, पूंजीवादी युग की स्पर्धा, स्वार्थ और प्रगति की कल्पनाएं भी उभारता है। कामायनी की मूल चिंता मनुष्य की चेतना में पड़ी दरार ज्ञान, इच्छा और क्रिया में असंगति को दूर करने की और उन्हें सामरस्य में ढालने की है। मनु की प्रगति कामना उसे मनुष्य सभ्यता के विकास के विभिन्न चरणों वन्य-जीवन, कृषि-उद्योग में ले जाती है, वह इनके निर्माण के लिए उत्तरदायी है, उसकी चेतना का विकास उसे श्रद्धा और बुद्धि के द्वंद्व से गुजरकर समरसता की भूमि पर ले जाता है। वस्तुतः यह समरसता मानव -समाज की समरसता है ,जहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है और यही प्रसाद के समरसता दर्शन का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य है।

वस्तुतः छायावाद ने अपने समय की बहुत सी रूढ़ियों को तोड़ा था, लेकिन रूढ़ियाँ मनुष्य निर्मित होते हुए भी अपनी सघनता और दीर्घगामिता में मनुष्य के ही वश से बाहर हो जाती हैं। वे मनुष्य के अवचेतन में ग्रंथियों, कुंठाओ के रूप में पैठ जाती हैं। छायावादी कवि अपनी अपरिसीम जीवनाकांक्षा और सौन्दर्य लालसा को सामाजिक विधि-निषेधों के तले दबकर फासिल बनते जाने की प्रक्रिया को सौंप नहीं सकता था और खुलकर अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकती थी, क्योंकि तत्कालीन समाज इसके अनुकूल नहीं था, अतः वह अध्यात्म की शरण में जाता है और रहस्य के रूप में अपने विचारों को वाणी देता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि हिन्दी जगत में आधुनिकता की चेतना के विस्तार में छायावाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। छायावाद ने परम्पराओं का मूल्यांकन करते हुए समाज के लिए नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की। जिस वैज्ञानिक और तार्किक सोच के साथ छायावादी काव्य आकार लेता है वह निश्चित ही आगे आने वाले कवियों के लिए एक आधार का निर्माण भी करता है।

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर

सन्दर्भ -

1. *डॉ. रामधारी सिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पंजाबी पुस्तक भंडार, दिल्ली प्रथम संस्करण 1973 पृ. 44*
2. *स. परमानंद श्रीवास्तव : समकालीन हिन्दी आलोचना, साहित्य अकादमी ,डिल्ले प्रथम संस्करण 1998 पृ. 254*
3. *सं रामकली सर्राफ : भारत दुर्दशा, विश्वविद्यालय प्रकाशन 2002 पृ. 6*
4. *डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी : आधुनिक कविता यात्रा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद तृतीय संस्करण -2005 (भूमिका)*
5. *स. नन्द किशोर नवल : निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण-2006 (भाग-1) पृ- 47-48*
6. *डॉ. बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभरती प्रकाशन, इलाहाबाद-1999 पृ. 140*
7. *स. नन्द किशोर नवल : निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण-2006 (भाग-1) पृ. 328*
8. *सुमित्रनंदन पंत : पल्लव, राजकमल प्रकाशन-दिल्ली, नौवा संस्करण 1993 पृ. 56*
9. *महादेवी वर्मा : सांध्यगीत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2002 पृ. 53*
10. *निराला रचनावली भाग-1 पृ. 339*

11. डॉ. शम्भुनाथ : दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञानभारती दिल्ली-1993 पृ. 200
12. महादेवी वर्मा : सांध्यगीत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2002 पृ. 66
13. जयशंकर प्रसाद : लहर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2002 पृ. 67
14. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य : उदभव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छड़ा संस्करण-1990 पृ. 243
15. डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ.11
16. सं. नन्द किशोर नवल : निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण -2006 (भाग-1) पृ-135-136
17. डॉ. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2008 पृ. 38
18. वहीं पृ. 43
19. स. नन्द किशोर नवल : निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण -2006 (भाग-1) पृ- 51
20. सं. निर्मला जैन : महादेवी साहित्य, समग्र प्रकाशन, नई दिल्ली 2000 पृ. 132
21. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1989 (कर्म सर्ग) पृ. 103 बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म दर्शन और मार्क्सवाद के साथ दलित साहित्य का अंतर्सम्बन्ध

दीपक सिंह

दलित साहित्य की सांस्कृतिक व वैचारिक निर्मिति में बौद्ध धर्म का स्पष्ट प्रभाव है। ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म के बीच की सांस्कृतिक व वैचारिक टकराहट की गहराई से पड़ताल कर आसानी से दलित साहित्य को बौद्ध धर्म से जोड़ने वाले सूत्रों की शिनाख्त की जा सकती है। भारत में एक लम्बे समय तक बौद्ध धर्म बहुसंख्यक जनता का धर्म था। ब्राह्मण धर्म के सामने सबसे बड़ी चुनौती बौद्ध धर्म ने ही पेश की थी। अतः वह स्वाभाविक रूप से ब्राह्मण धर्म द्वारा उत्पीड़ित मानवता को संबल प्रदान करता है। भक्तिकालीन संत साहित्य और आज के दलित साहित्य के बीच सम्बन्ध सूत्र भी बिना बौद्ध धर्म के नुक्ते के पूरा नहीं होता।

डॉ. अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण किए जाने की परिघटना ब्राह्मण धर्म के खिलाफ एक प्रतिरोधात्मक कार्यवाही थी। उनका यह निर्णय भावुकता पर आधारित न होकर हिन्दू धर्म की असमानता पर आधारित व्यवस्था के खिलाफ एक ठोस बौद्धिक व रणनीतिक कार्यवाही का परिणाम था। डॉ. अंबेडकर के इस निर्णय के कारण ही बड़ी संख्या में दलित बुद्धिजीवी बौद्ध धर्म की ओर बढ़े। डॉ. अंबेडकर ने हिन्दू धर्म में दलितों की अवस्थिति को देखते हुए कई दूसरे धर्मों की पड़ताल की और अंत में वे बौद्ध धर्म पर आकर ठहर गए। इसके जो तीन विशेष कारण समझ में आते हैं उसमें एक तो ब्राह्मण धर्म के खिलाफ उसका संघर्ष और दूसरा फ्रांसीसी क्रांति से उपजे मूल्यों के साथ उसका सहकार तथा तीसरा कारण उसका भारतीय होना समझ में आता है। 'बुद्ध और उनके धर्म का भविष्य' नामक लेख में डॉ. अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को व्याख्यायित करते हुए लिखा है –

1. धर्म निर्धनता को महिमामंडित नहीं करता।
2. समाज निश्चित रूप से कानून पर आधारित होना चाहिए जिससे कि वह समाज को संगठित कर सके न कि उसे टुकड़ों में बांटे।
3. धर्म को यदि जीवित रहना है तो उसे तर्कों पर आधारित होना चाहिए जिसका दूसरा नाम विज्ञान है।
4. धर्म के लिए यह पर्याप्त नहीं है कि वह केवल एक नैतिक संहिता बने बल्कि इस नैतिक संहिता को स्वतन्त्रता, समानता तथा बंधुत्व की रक्षा करनी होगी।[1]

यदि हम ऊपर के उद्धरण को ध्यान से देखें तो इनमें कहीं गई बातें धर्म से अधिक उदारवादी लोकतान्त्रिक मूल्यों के नजदीक दिखाई पड़ती हैं। ऐसा लगता है कि डॉ. अंबेडकर के सामने तमाम धर्मों के लोकतन्त्र विरोधी स्वरूप का कठिन सवाल भी था। तो क्या ब्राह्मण धर्म के अलोकतांत्रिक स्वरूप को चुनौती देने के लिए डॉ. अंबेडकर बौद्ध धर्म की ओर गए? यह बात तो स्पष्ट ही है कि बौद्ध दर्शन वेद विरोधी नास्तिक

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

दर्शन है और डॉ. अंबेडकर ईश्वर और आत्मा से समाज के लिए कोई उम्मीद भी नहीं रखते थे। ऐसे में बौद्ध धर्म उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति करता दिखाई पड़ता है। मई 1956 में बी.बी.सी. से एक भेंट वार्ता में उन्होने कहा था 'वर्तमान परिस्थितियों में मैं बुद्ध धर्म को इसलिए स्वीकार करता हूँ कि यह तीन सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है जो कि और धर्म नहीं करते। बौद्ध धर्म प्रज्ञा, करुणा तथा समता की शिक्षा देता है। मनुष्य इन्हीं तीनों सिद्धांतों के आधार पर सुख प्राप्त करता है। उन्होंने कहा कि ईश्वर और आत्मा समाज को नहीं बचा सकते।'[2]

डॉ. अंबेडकर स्वतन्त्रता, समानता व बंधुत्व के नारे को बौद्ध धर्म के सहारे सामाजिक सांस्कृतिक व धार्मिक वैधता प्रदान करने की कोशिश करते जान पड़ते हैं क्योंकि अनपढ़ गरीब जनता को एक सांस्कृतिक और धार्मिक ढांचे में गोलबंद करना काफी आसान होता है। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'गांधी, अंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ' में अंबेडकर के यहाँ धर्म की भूमिका को समझने का प्रयास किया है। वे अंबेडकर के लेख 'बुद्ध या मार्क्स' के हवाले से बताते हैं कि बुद्ध के विचारों का सूत्रीकरण करते हुए डॉ. अंबेडकर पहली ही स्थापना यह देते हैं कि स्वाधीन समाज के लिए धर्म आवश्यक है। बुद्ध के साथ स्वयं डॉ. अंबेडकर की भी यही मान्यता है। 'बुद्ध और उनका धर्म' पुस्तक के साथ छपी एक पूरक पुस्तिका के हवाले से डॉ. शर्मा इस बात की पुष्टि करते हैं ''समाज को विखरने से बचाने के लिए वह (डॉ. अंबेडकर) धर्म को आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं कि सभी समाजों में कानून की भूमिका बहुत छोटी होती है। उसका उद्देश्य होता है अल्पसंख्यक समुदाय को सामाजिक अनुशासन की परिधि में रखे। बहुसंख्यक समाज को इस बात के लिए छोड़ दिया जाता है कि वह अपना सामाजिक जीवन नैतिकता के सिद्धांतों और उसकी स्वीकृति के बल पर बनाए रहे इसलिए नैतिकता के अर्थ में धर्म प्रत्येक समाज में शासन सिद्धान्त बन कर रहता है। इस व्याख्या के अनुसार जो धर्म होगा उसे विज्ञान के अनुरूप होना चाहिए यदि धर्म विज्ञान के अनुरूप न होगा तो वह अपना सम्मानजनक स्थान छोड़ देगा। लोगों के उपहास का विषय बनेगा और इस तरह वह जीवन के शासक सिद्धान्त होने की शक्ति खो देगा। यही नहीं समय बीतने पर वह विखंडित होकर नष्ट भी हो सकता है। दूसरे शब्दों में यदि धर्म को क्रियाशील बने रहना है तो उसे विवेक के अनुरूप होना चाहिए और विवेक विज्ञान का ही दूसरा नाम है। सामाजिक नैतिक तंत्र के रूप में धर्म को स्वाधीनता, समानता और भाईचारे के बुनियादी सिद्धान्त स्वीकार करने होंगे। जब तक धर्म सामाजिक जीवन के इन तीन बुनियादी सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करता तब तक उसका विनाश निश्चित है। धर्म को यह न करना चाहिए कि वह निर्धनता को पवित्र माने या उसे महिमामंडित करे। जिनके पास धन है वे उसे त्यागें तो यह गौरव का विषय हो सकता है परंतु निर्धनता गौरव का विषय नहीं हो सकती। निर्धनता को गौरव का विषय बनाना धर्म को चौपट करना है। अपराध और दुराचार को स्थायी बनाना है, संसार को जीवित नरक बना देना है। एक मात्र धर्म जिसमें ये सभी सिद्धान्त समाहित हैं, बौद्ध धर्म है''[3] दरअसल डॉ. अंबेडकर की चेतना उदारवादी लोकतांत्रिक मूल्यों से रची-पगी थी और वे उसी के अनुरूप एक धर्म की खोज कर रहे थे। दुनिया के तमाम धर्म अपनी निर्मिति में चाहे जितने प्रगतिशील रहे हों अंततः उनकी परिणति अवैज्ञानिकता को प्रश्रय देने में ही होती है, इन तमाम खतरों को पहचानते हुए भी वे धर्म की उपेक्षा नहीं कर पाते तो इसे उनकी राजनीतिक जरूरत के रूप में देखा जाना चाहिए। इसके दो ठोस कारण समझ में आते हैं एक तो धर्म की संगठन शक्ति दूसरी ब्राह्मण धर्म के खिलाफ उसकी मजबूत अवस्थिति। इसीलिए भारत में बौद्ध धर्म की भौतिक रूप में समाप्ति के बावजूद डॉ. अंबेडकर उसे एक आत्मिक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं।

दलित बुद्धिजीवियों ने सिद्ध-नाथ परंपरा या सीधे बुद्ध की शिक्षाओं के बरक्स बुद्ध को डॉ. अंबेडकर के जरिए जाना समझा और यह बहुत जरूरी भी था। आधुनिक लोकतान्त्रिक मूल्यों के आलोक में धर्म के

संधान का सुफल यह हुआ कि अनकहे ही लोकतान्त्रिक मूल्य दलित संस्कृति का हिस्सा बन गए जिससे वैज्ञानिक चिंतन और तार्किक बौद्धिक संस्कृति के निर्माण में सहायता मिली ''बौद्ध, जैन और लोकायत जैसे जीवन दर्शनों में शूद्र व्यवस्था नहीं थी। भारत के बहुत बड़े इलाके के कामगार शिल्पी इस अभिशाप से मुक्त थे। जातिवादी वर्णव्यवस्था का सबसे तीखा विरोध बुद्ध ने किया था। संभवतः यही वजह है कि आज भारत के सवर्णेतर समाज में सबसे गहरा आदर बौद्ध धर्म को ही दिया जाता है। निसंदेह बौद्ध विचारकों ने इस देश को विश्व स्तरीय दार्शनिक और वैज्ञानिक चिंतन दिया और समाज को अंधविश्वासों से बाहर लाकर तार्किक बौद्धिक संस्कृति का विकास किया था। दलित आंदोलन कि यही बुनियादी ताकत रही है।''[4]

बौद्ध धर्म दर्शन से दलित साहित्य और आंदोलन का बहुत गहरा रिश्ता है लेकिन यह निर्विवाद नहीं है। दरअसल धर्म की सामाजिक सांस्कृतिक भूमिका सदैव विवादास्पद रही है। प्रतिरोध की विचारधारा के रूप में इसका इस्तेमाल कब प्रतिक्रिया के रूप में बदल जाएगा कहना मुश्किल है। व्यवहारिक रूप में हम देख ही रहे हैं कि पूरे बुद्ध धर्म दर्शन का हिंदूकरण हो चुका है। बुद्ध की मूर्तिपूजा दलित समाज के भीतर तमाम ब्राह्मणी कर्मकांड के साथ जड़ जमा चुकी है। वैज्ञानिकता तार्किकता और लोकतांत्रिकता की तमाम प्रेरणाओं का सामाजिक प्रतिफलन बहुत ही क्षीण है। म्यांमार श्रीलंका तो पूरी तरह बौद्ध देश हैं लेकिन हमने वहाँ भयानक सांप्रदायिक दंगे देखे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म कोई भी हो होता वह दोधारी तलवार ही है। जातिभेद और उसके उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने वाला धर्म, दूसरे धर्मों के प्रति कब हिंसक हो कर सांप्रदायिक उभार को जन्म दे देगा कहना मुश्किल है। प्रणय कृष्ण ने अपनी किताब 'उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य' में इस नुक्ते की तरफ इशारा किया है - डॉ. अंबेडकर ने लाखों लोगों के साथ हिन्दू धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म को अपनाया था (1956)। दलित बुद्धिजीवियों का एक हिस्सा बौद्ध विचारधारा को दलित विमर्श का अनिवार्य घटक मानता है, वहीं दूसरा हिस्सा इसकी आलोचना करता है। डॉ. तुलसीराम और डॉ. धर्मवीर को हम क्रमशः इन दो परस्पर विरोधी धारणाओं का प्रतिनिधि मान सकते हैं। धर्मांतरण के बावजूद महाराष्ट्र के नव-बौद्धों की सामाजिक हैसियत में फर्क न आने की बात उठाकर कुछ चिंतक राजनीतिक सामाजिक उपकरण के बतौर धर्मांतरण को अप्रासंगिक मानते हैं, वहीं कुछ अन्य विचारक बौद्ध धर्म दर्शन की विचारधारात्मक भूमिका पर ही प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। डॉ. धर्मवीर लिखते हैं, ''पहले इशारा किया जा चुका है कि दलित चिंतन को सबसे पहला और भारी धक्का ढाई हजार साल पहले बुद्ध के चिंतन के रूप में लगा था।.... उन्होंने धर्म और दर्शन के क्षेत्रों में सुकरात और ईसा वाला कठिन रास्ता न अपनाकर राजकुमारों के सुभीते वाला रास्ता पकड़ा .... दलित के लिए बौद्ध चिंतन एक पराया चिंतन है .... अपने स्वतंत्र चिंतन की राह पर आते ही दलित को बौद्ध चिंतन एकदम पराया और निरर्थक लगने लगेगा।''[5]

निसंदेह समय के साथ यह बहस और आगे बढ़ेगी और दलित विमर्श नई दिशाओं में अग्रसर होगा। जहां तक बौद्ध धर्म के दलित चिंतन से रिश्ते का सवाल है तो यह स्थापित सच्चाई है कि उसने आधुनिक दलित चिंतन और अस्मितावादी लेखन को एक सांस्कृतिक आधार प्रदान किया है। ध्यान से देखने पर हम यह पाएंगे कि डॉ. अंबेडकर ने बुद्ध को मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया था न कि ईश्वर के रूप में। बुद्ध के माध्यम से उन्होने हिन्दू धर्म की अमानवीयता का प्रतिपक्ष रचने कि कोशिश की थी, अधिकांश दलित चिंतक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

दलित चिंतकों व दलित साहित्य के भीतर सर्वाधिक विवाद मार्क्सवाद को लेकर है कहीं यह सीधे मार्क्सवाद को खारिज करता दिखता है तो कहीं उसकी बृहद प्रेरणा का अंबेडकरवाद से मिलने को जरूरी कार्यभार मानता है। इन दोनों ही स्थितियों के सामाजिक प्रतिफलन को यूं समझा जा सकता है कि जहां भी

दलितों का जमीनी आंदोलन है उनका मार्क्सवाद के साथ सीधा रिश्ता दिखाई पड़ता है और जहां सिर्फ पहचान और राजनीतिक सत्ता में भागीदारी का आंदोलन है वहाँ मार्क्सवाद को सीधे तौर पर खारिज किया जाता है या कहें कि उससे एक तरह का भय है। जहां दलित विमर्श का मार्क्सवाद के साथ सहकार का रिश्ता है वहाँ भी वर्ण के प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं लेकिन उन्हे वर्ग के भीतर हल किया जाना है इसे लेकर मार्क्सवाद के साथ उसकी बड़ी टकराहट भी है, वह मार्क्सवाद के भीतर जातिप्रश्न को हल किए जाने की स्पष्ट कार्ययोजना की मांग करता है जहाँ दलित विमर्श का रुख मार्क्सवाद को खारिज करने का है वहाँ वह भूमंडलीकरण और बाजार में मुक्ति खोजता हुआ दिखाई पड़ता है। वह स्पष्टतः पूजीवाद का समर्थन करते हुए वर्ग संघर्ष की धार को कुंद करता है। यहाँ आकर इस अस्मितावादी आंदोलन (इस तरह के दूसरे भी) को हम पूंजीवाद के एक औजार के रूप में देख सकते हैं। मजे की बात यह है कि दलित वैचारिकी की ये दोनों धाराएँ मार्क्सवाद को अधिकांशतः डॉ. अंबेडकर के जरिए ही समझती हैं। यहाँ हम कंवल भारती और सूरजभान प्रसाद के लेखन से लिए गए दो उदाहरणों के माध्यम से इस फर्क को देख सकते हैं। कंवल भारती ने अपनी पुस्तक 'दलित विमर्श की भूमिका' के दूसरे संस्करण में 'पुनश्च-दलित और वाम, कुछ और जरूरी सवाल' नाम से एक अध्याय जोड़ा है, जिसमें वे लिखते हैं ''दलितों को यह अच्छी तरह समझ लेने की जरूरत है कि अंबेडकर कम्युनिस्ट विरोधी नहीं थे। यदि दलितों को यह मालूम है कि अंबेडकर पूंजीवाद के समर्थक नहीं थे, सामंतवाद के समर्थक नहीं थे, ब्राह्मणवाद के समर्थक नहीं थे, सांप्रदायिकता और जातिभेद के समर्थक नहीं थे तो वे कम्युनिस्ट नहीं थे तो और क्या थे? यदि दलित यह मानते हैं कि डॉ. अंबेडकर ईश्वरवादी नहीं थे, भाग्यवादी नहीं थे, नियतिवादी नहीं थे, पूर्वजन्म और पुनर्जन्म की धारणाओं को नहीं मानते थे, अंधविश्वासों, पाखंड को नहीं मानते थे तो वे कम्युनिस्ट नहीं थे तो क्या थे। यदि दलित स्वीकार करते हैं कि डॉ. अंबेडकर ने संविधान सभा को ज्ञापन देकर राज्य समाजवाद स्थापित करने की मांग की थी, श्रमिक वर्ग के प्रत्येक सदस्य को मार्क्स का कम्युनिस्ट घोषणा पत्र पढ़ने को कहा था और श्रमिकों को ही देश का नेतृत्व करने के योग्य माना था तो वे कम्युनिस्ट नहीं थे तो क्या थे।''[6]

कंवल भारती के ये विचार थोड़े भाववादी जरूर हैं लेकिन यह डॉ. अंबेडकर के ही लेखन और कर्म से निसृत हुए हैं। कंवल भारती यह मानते हैं कि साम्राज्यवाद-फांसीवाद के खिलाफ संघर्ष बहुत बड़ा व कठिन है। इसका सामना करने के लिए व्यापक जन गोलबंदी की जरूरत है अतः अपने अंतर्विरोधों को हल करते हुए संघर्ष की शक्तियों को एकजुट होना होगा। अब हम दलित चिंतक चंद्रभान प्रसाद के हवाले से दूसरा उदाहरण लेते हैं। अपने एक इंटरव्यू में वे कहते हैं ''बाजारवाद को आप इस अर्थ में देखें। भारत के भीतर दो भारत हैं। एक है इंडिया और दूसरा है भारत। भारत की तुलना में इंडिया काफी डेमोक्रेटिक है। आज हर दलित भारत को छोड़कर भागना चाहता है सभी कोलकाता, मुंबई, बडोदरा भाग जाना चाहते हैं। मैं तो मानता हूँ भारत पूरी तरह तब्दील होकर इंडिया बन जाय .....शहर में अब उस तरह कोई छुआ-छूत नहीं कर सकता, जिस तरह गांवों में होता है।.... मैं तो चाहता हूँ जमीन का पूरी तरह से कोर्पोराइटेशन हो जाय ....जब मैं डायवर्सिटी की बात करता हूँ तब मैं ये नहीं कहता कि सारे दलित ही पूंजीपति हों। लेकिन यह भी ठीक नहीं कि सारे गैर दलित ही पूंजीपति हों... अब हमें बाजारवाद के संदर्भ में यह बात समझनी होगी कि नई परिस्थितियों में पुराने कांट्राडिक्सन को साल्व नहीं किया जा सकता।''[7] यह सर्वविदित तथ्य है कि डॉ. अंबेडकर जाति व्यवस्था को बनाए रखने में ग्रामीण संरचना को बहुत बड़ी वजह मानते थे और ग्रामीण संरचना को नष्ट करने के पक्षधर थे लेकिन क्या वास्तव में वे बाजार में मुक्ति तलाश रहे थे? आज भूमंडलीकरण के दौर में जो विकास हो रहा है वह रोजगार विहीन है दूसरी तरफ शिक्षा, चिकित्सा आदि के निजीकरण का सबसे खतरनाक असर दलित आदिवासी गरीब किसान मजदूर पर ही पड़ रहा है। ऐसे में जाति का एक तर्क लेकर पूजीवाद की गोद में बैठ

जाना अंबेडकर का गलत पाठ ही कहा जाएगा। डॉ. अंबेडकर ने जमीन के राष्ट्रीयकरण की बात कही थी तो उन्हे यह मालूम था कि अधिकांश दलित भूमिहीन हैं और पूजीपतियों को बेचने लायक कोई जमीन उनके पास नहीं है।

मार्क्सवाद के बारे में डॉ. अंबेडकर हमेशा आलोचनात्मक रहे उन्होने ऐतिहासिक भौतिकवाद और वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मार्क्स की वर्ग संघर्ष की व्याख्या भारत के प्राचीन इतिहास विशेषकर शूद्रों के इतिहास के संदर्भ में ठीक नहीं बैठती। हालांकि डॉ. अंबेडकर बुद्ध और मार्क्स के 'साध्य की समानता' को स्वीकार करते हैं और मार्क्स की इस बात से सहमत होते हैं कि दर्शन का कार्य मात्र दुनिया को समझना नहीं बल्कि उसे बदलना है। डॉ. रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'गांधी अंबेडकर लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ' में लिखते हैं ''अंबेडकर की अंग्रेजी रचनावली के तीसरे खंड में उनकी एक प्रकाशित पुस्तक का शीर्षक है 'बुद्ध अथवा कार्ल मार्क्स' इस अध्याय के आरंभ में उन्होने लिखा है कि उन्होंने दोनों को पढ़ा है। दोनों की विचारधारा में दिलचस्पी रही है। इससे दोनों की तुलना करने के लिए वह बाध्य हुए। बुद्ध के मूल सिद्धांतों का परिचय देते हुए उन्होंने यह सिद्धांत भी उद्धृत किया है -''धर्म का कार्य संसार के उद्भव कि व्याख्या करना नहीं है वरन उसका पुनर्निर्माण और उसे सुखी बनाना है। इसी तरह मार्क्स का सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए उन्होंने उनका एक सिद्धांत यह बताया है – दर्शन का कार्य संसार के उद्भव कि व्याख्या करते हुए समय नष्ट करना नहीं है वरन उसका पुनर्निर्माण है।''[8]

डॉ. अंबेडकर द्वारा की गई मार्क्सवाद की आलोचना प्रक्रियागत है उसके साध्य को लेकर उनका कोई मतभेद नहीं है। उनके मतभेद का एक बड़ा कारण भारत के मार्क्सवादियों का रवैया भी रहा क्योंकि औपनिवेशिक दौर में उनके द्वारा जाति और वर्ग के बड़े प्रश्न को हल करने का प्रयास नहीं किया गया और बहुत बार डॉ. अंबेडकर को गलत तरीके से साम्राज्यवाद समर्थक समझा गया। इसके बावजूद हम मराठी और हिन्दी दलित साहित्य में मार्क्सवाद को लेकर भिन्न नजरिया पाते हैं। मराठी दलित साहित्य में मार्क्सवाद को लेकर ज्यादा समवेशी तरीके से विचार किया गया है। डॉ. शरण कुमार लिंबाले अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' में लिखते हैं – ''अंबेडकरवाद का केंद्र बिन्दु आम आदमी है। मार्क्सवाद का शोषित, पीड़ित आम आदमी है। बौद्ध तत्व ज्ञान भी मनुष्य का और उसके शोषण का विचार करता है। बाबा साहब अंबेडकर कार्ल मार्क्स व गौतम बुद्ध के तत्व ज्ञान का सर एक ही है वह है मनुष्य की शोषण से मुक्ति। मार्क्स अंबेडकर व बुद्ध के विचारों में साम्य है। ऐसा लगता है कि इस साम्य के कारण ही मार्क्स व अंबेडकर के विचारों का समन्वय होना चाहिए।''[9]

हिन्दी दलित साहित्य में मार्क्सवाद के प्रति दलित साहित्यकारों कि समझ अंबेडकर और उनके समकालीन वामपंथियों के साथ संबंध पर आधारित है। जैसा कि ऊपर इशारा किया जा चुका है कि अस्पृश्यता के मुद्दे पर वामपंथियों का रुख स्पष्ट नहीं रहा और उसने अंबेडकर को साम्राज्यवाद के नजदीक समझा। डॉ. अंबेडकर ने वामपंथियों की इन मुद्दों पर आलोचना की। मार्क्सवाद और अंबेडकरवाद का यही अंतर्विरोध हिन्दी दलित साहित्य के मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में काम आया। कंवल भारती लिखते हैं कि ''वामपंथियों के इस पूर्वग्रह को खत्म करना होगा कि डॉ. अंबेडकर साम्राज्यवादी थे। उनकी यह धारणा दलित प्रश्न को ठीक से न समझने के कारण बनी है जो उनमें इस कदर रूढ़ हो गई है कि नामवर सिंह जैसे प्रगतिशील विचारक भी डॉ. अंबेडकर को साम्राज्यवाद समर्थक मानते हैं। मैं लेनिन की भाषा में इसे टुटपूंजिया जनवादियों का पंडिताऊपन के सिवा कुछ नहीं कह सकता।''[10]

दलित साहित्य के साथ मार्क्सवाद के संबंध पर ऊपर हमने जो भी बातें कहीं है आज वे राजनीतिक रूप से ज्यादा स्पष्ट दिखाई पड़ रही हैं। आंदोलनों में जहां 'जय भीम लाल सलाम' का नारा साथ-साथ सुनाई पड़ रहा है वहीं इसके खिलाफ घृणा प्रचार भी खुले रूप में सामने आया है। यह अंतर अंबेडकरवाद वाद के दो पाठों का अंतर है एक दलित पिछड़ा गरीब मजदूर की बृहद एका के लिए मार्क्स और अंबेडकर को साथ लेकर आगे बढ़ रहा है तो दूसरा मार्क्सवाद को ही बड़ा शत्रु मान रहा है यहाँ तक कि पूंजीवाद के साथ फासीवादी राजनीति से भी उसे कोई परहेज नहीं है।

डॉ. हरीसिंह गौर वि..
सागर

सन्दर्भ -

1. *धनंजय कीर : डॉ. अंबेडकर लाइफ एंड मिशन,पापुलर प्रकाशन बंबई, पुनर्प्रकाशित 2005 पृष्ठ 120-121*
2. *वही पृ. 490*
3. *रामविलास शर्मा : गांधी, अंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण 2000 पृ. 620*
4. *संपादक : मुद्राराक्षसय नई सदी की पहचान, श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, लोकभरती प्रकाशन आवृत्ति संस्करण, भूमिका पृ.6*
5. *प्रणय कृष्ण : उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद प्रकाशन , इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रथम संसकरण 2008 पृ. 308-309*
6. *कंवल भारती : दलित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद 2002 पृ.138-139*
7. *संपादक : उमाशंकर चौधरी, बाजारवाद ही है असली समाजवाद, चन्द्रभान प्रसाद का साक्षात्कार, उमाशंकर चौधरी को हिस्से के प्रश्न–प्रतिप्रश्न, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि. सं. 2009 पृ. 406-409*
8. *रामविलास शर्मा : गांधी, अंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन प्रथम संस्करण 2000 पृ. 614-615*
9. *शरण कुमार लिंबाले : दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000 पृ. 69*
10. *कंवल भारती : दलित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद 2002 पृ. 66*

भारतीय ज्ञान परम्परा में कामशास्त्र का इतिहास

राघवेन्द्र मिश्र

आचार्य वात्स्यायनकृत 'कामसूत्र' संस्कृत साहित्य का अद्भुत ग्रन्थ है और इसी ग्रन्थ में कामशास्त्र का प्राचीन इतिहास वर्णित हुआ है, जिससे हमें कामशास्त्र के इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ का प्रभाव केवल कामकला विषयक विद्या पर नही पड़ा अपितु इसके इतर काव्यों, नाटकों और कला आदि पर भी प्रभाव पड़ा। कला के क्षेत्र में यह भारतीय ज्ञान परम्परा का आदर्श ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ कि महत्ता प्राचीन काल में जितनी थी, उससे कहीं अधिक आधुनिक काल में है। जिन ६४ कलाओं को वात्स्यायन ने माना था, बाद के आचार्यों ने उसी को प्रमाणिक रूप से स्वीकार किया। स्थापत्यकार, मूर्तिकार, चित्रकार आदि ने अपनी-अपनी कलाओं में कामसूत्र के शास्त्रीय विधानों को साकार किया। आज भी कामसूत्र के विधि-विधानों का अंकन, चित्रण और उत्कीर्णन सर्वत्र दृष्टिगत होता है। कामसूत्र के आरंभ में किसी देवी या देवता की वंदना नहीं की गई है। बल्कि कहा गया 'धर्मार्थकामेभ्योनमः'- अर्थात् धर्म, अर्थ और काम को नमस्कार है। आगे कहा 'शास्त्रप्रकृत्वात्' अर्थात् इस शास्त्र में मूलरूप से धर्म, अर्थ और काम का उपदेश दिया गया है, इसलिए धर्म, अर्थ और काम को ही नमस्कार किया गया है।

'कामसूत्र' के शास्त्रसंग्रह प्रकरणम् नामक पहले अध्याय में यह बताया गया है कि 'कामसूत्र' के प्रत्येक अध्याय में क्या है और किस तरह कामसूत्र हमारे सामने आया। जयमंगला टीका को कामसूत्र की सबसे अच्छी टीका माना जाता है। इस टीका का हिन्दी अनुवाद भी है। काम क्या है? कामसूत्र के दूसरे अध्याय में वात्स्यायन ने 'काम' की अवधारणा प्रस्तुत की है। लिखा है, 'श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः'। अर्थात् कान, त्वचा, आंख, जीभ, नाक इन पाँच इन्द्रियों की इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन विषयों में प्रवृत्ति ही काम है अथवा इन प्रवृत्तियों से जीवात्मा जो आनंद अनुभव करता है, उसे 'काम' कहते हैं। आगे कहा 'स्पर्शविशेषविषयात्वस्याभि मानिनिकसुखानुबिध्दा फलवत्यर्थ प्रतीतिः प्राधान्यात्कामः'। अर्थात् चुम्बन, आलिंगन, प्रासंगिक सुख के साथ गाल, स्तन, नितम्ब आदि विशेष अंगों के स्पर्श करने से आनंद की जो अनुभूति होती है वह 'काम' है । इस सूत्र में 'फलवती प्रतीति' का विशेष अर्थ है । कामसूत्र में संभोग और प्रेम के जितने भी उपाय सुझाऐ हैं, उनमें स्त्री और पुरूष दोनों को समान रूप से सुझाव दिए गये हैं। दोनों के लिए अलग-अलग प्रकार की व्यवस्थाओं का निर्देश है और जो सुझाव दिये गये हैं, वे सभी व्यवहारिक हैं। वात्स्यायन इन्हें नैतिकता के दृष्टिकोण से नहीं देखते। इन सुझावों में भिन्न प्रकार की काम मुद्राओं का व्यवस्थित विवेचन किया गया है। अधिकांश काम मुद्राओं के बारे में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में नैतिक निष्कर्ष नहीं दिया गया है। इसके बावजूद काम

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

मुद्राओं को बताते हुये नैतिक आकांक्षाओं को समाहित कर लिया गया है। कामसूत्र की मुख्य चिन्ता है समाज को एक व्यवस्था में बांधना और नियमित करना। स्त्री-पुरूष संबंधों को सामाजिकता के पैमाने से व्याख्यायित करना। स्त्री और पुरूष की दो भिन्न लिंग, देशज-अवस्था, अभिरूचियों और मूल्यबोध की भिन्नता को स्वीकार किया गया है। भिन्नता और सहिष्णुता इसका मुख्य आधार है।

'कामसूत्र' में कामशास्त्र के सन्दर्भ में वर्णन प्राप्त होता है कि सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के बाद लोक में सुचारु रूप से व्यवस्था बनाये रखने के उद्देश्य से एक लाख श्लोक परिमाण ग्रन्थ का प्रवचन किया था। उसमें धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग का प्रतिपादन किया था। इस मत का उल्लेख वेदव्यास 'महाभारत' और 'मत्स्यपुराण' में भी करते हैं। ब्रह्मा के सृष्टिमूलक ग्रन्थ से धर्मविषयक श्लोकों का अध्ययन करके स्वायम्भुव मनु ने मानव धर्मशास्त्र का पृथक रचना किया। उसी के अर्थ विषयक अंग को लेकर देवताओं के गुरु आचार्य बृहस्पति ने अर्थशास्त्र का निर्माण किया।

अतः इसी प्रकार से महादेव शिव के अनुचर, आचार्य नन्दी ने कामविषयक भाग को ग्रहण करके, एक हजार अध्यायों में कामशास्त्र का प्रणयन् किया। आचार्य नन्दी को हीं नन्दीकेश्वर कहते हैं। शिवपुराण के अनुसार नन्दी शालंकायनपुत्र शिलादि ऋषि के पुत्र थे। नन्दी का जन्म शिव के वरदान से हुआ था, नन्दी ने वेदादि अन्य शास्त्रों का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन किया था। सुयशा नामक मरुद्‌गण कन्या से इनका विवाह संस्कार हुआ था। नन्दी शिव के द्वारा अमरत्त्व प्राप्त करके गणनायकाध्यक्ष के पद पर सुशोभित हुये, 'कुर्मपुराण' और 'वाराहपुराण' में ऐसा ही उल्लेख प्राप्त है। आचार्य नन्दी ने शिव और पार्वती के सुरत क्रिया को देखा था, तब उन्होंने कामशास्त्र की रचना किया। आचार्य कोक्कोक ने भी रतिरहस्य में नन्दी के विषय में उल्लेख किया है। आचार्य नन्दी आयुर्वेद के अन्तर्गत 'नाभियन्त्र' के आविष्कारक भी रहे हैं। आचार्य नन्दी कामशास्त्र, आयुर्वेद, रसशास्त्र आदि विद्याओं के विद्वान थे।

कामशास्त्र की परम्परा को उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने आगे संचालित रखा। श्वेतकेतु ने सुखशास्त्र रूपी कामसूत्र की रचना 500 अध्यायों में लिखा। आचार्य औद्दालकि श्वेतकेतु पांचाल निवासी आरूणि के ज्येष्ठ पुत्र थे। उद्दलन कर्म करने के कारण इन लोगों को उद्दालक कहा जाता था। छान्दग्योपनिषद् में श्वेतकेतु को आरुणेय नाम भी प्राप्त होता है।

पुनरू पांचाल (पंजाब) देश के निवासी बाभ्रव्य ने 150 सौ अध्यायों में कामसूत्र को संक्षिप्त किया, जिसमें की सात अध्याय थे। बाभ्रव्य पांचाल देश के राजा ब्रह्मदत्त के मन्त्री थे, इनका पुरा नाम सुबालक बाभ्रव्य था, लेकिन समाज में इन्हें पांचाल नाम से प्रसिद्धि प्राप्त थी। ऋग्वेद के क्रमपाठ के प्रणेता आचार्य बाभ्रव्य ही थे। इनको गालव और 'बह्वृच' भी कहा जाता था। ऋग्वेद की बह्वृच शाखा के प्रवर्तक होने के कारण हीं इन्हे बह्वृच भी कहते हैं। महाभारत के अनुसार बाभ्रव्य क्रमपाठ और शिक्षा दोनों के प्रणेता थे। महाभारत में वर्णन है कि - महात्मा ने वामदेव के बताये हुये ध्यान मार्ग से मेरी आराधना करके मुझ सनातन पुरुष के ही—प्रसाद से वेद का क्रमविभाग प्राप्त किया था। बाभ्रव्य-गोत्र में उत्पन्न हुये, वे महर्षि गालव भगवान नारायण से वर एवं परम उत्तम योग पाकर वेद के क्रमविभाग और शिक्षा का प्रणयन करके सर्वप्रथम क्रमविभाग के विद्वान हुए थे।

कामसूत्र में भी उल्लेख प्राप्त होता है कि पांचाल निवासी बाभ्रव्य ने ऋग्वेद की बह्वृच शाखा को चौंसठ अध्यायों में विभक्त किया था। बाभ्रव्य ने साम्प्रयोगिक अधिकरण को भी चौंसठ अध्यायों में विभाजित किया था। इनके द्वारा रचित बाभ्रव्यकारिका ग्रन्थ वर्तमान समय में उपलब्ध है।

आचार्य बाभ्रव्य के पश्चात् आचार्य दत्तक ने वैशिक अधिकरण को आधार बनाकर दत्तकसूत्र नामक कामशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की। आचार्य दत्तक पाटलिपुत्र की गणिकाओं के संसर्ग में रहा करते थे, और

गणिकाओं के कहने पर ही इन्होंने कामशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा। कामसूत्र में उल्लेख प्राप्त होता है कि इनके पिता का नाम माथुर था, जन्म के कुछ समय पश्चात् इनके माता-पिता का देहान्त हो गया और इनको किसी ब्राह्मणी ने अपना दत्तक पुत्र स्वीकार कर लिया तब से इनका नाम दत्तक हो गया। ये सभी प्रकार की विद्याओं और कलाओं में निष्णात थे। काश्मीर के विद्वान् दामोदर गुप्त ने भी अपने ग्रन्थ कुट्टनीमतम् में दत्तक का उल्लेख किया है। आचार्य दत्तक का निश्चित काल-निर्धारण करना असंभव कार्य है, फिर भी ई. पू. 600 से ई. पू. 200 के मध्य इनकी स्थिति स्वीकार की जा सकती है ।

वात्स्यायन के अनुसार चारायण ने बाभ्रव्य द्वारा लिखित कामशास्त्र के साधारण अधिकरण पर पृथक रूप से ग्रन्थ की रचना की। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में चारायण का वर्णन किया है जिससे यह ज्ञात होता है कि चारायण किसी राजा के राज्य के अमात्य थे। चारायण कामशास्त्रज्ञ के साथ-साथ, कृष्णयजुर्वेद की चारायणीय शाखा के प्रवर्तक और चारायणीय शिक्षा के रचयिता एवं अर्थशास्त्रज्ञ भी थे। इनका काल-निर्धारण ई. पू. 300 से पूर्व का था।

सुवर्णानाभ ने बाभ्रव्य के कामशास्त्र में उल्लिखित साम्प्रयोगिक अधिकरण को आधार बनाकर एक स्वतन्त्र कामशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की। काव्यमीमांसा और आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में सुवर्णानाभ के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है ।

आचार्य घोटकमुख ने कन्यासम्प्रयुक्तक को आधार बनाकर अपने ग्रन्थ की रचना की। आचार्य घोटकमुख का उल्लेख बौद्धग्रन्थ मज्झिमनिकाय, अर्थशास्त्र, जैनग्रन्थ नन्दिसूत्र एवं अनुयोगदारसूत्र में मिलता है। मज्झिमनिकाय के घोटकमुखसुत्त के अनुसार आचार्य घोटकमुख अंगराज के अमात्य थे। इन्हें पांच सौ कार्षापण दैनिक वेतन प्राप्त होता था। बाद में ये बौद्ध बन गये। अतः आचार्य घोटकमुख का समय चतुर्थ शतक ई. पू. अनुमानित है। ये अर्थशास्त्र एवं कामशास्त्र के आचार्य विशेष माने गये हैं। आचार्य कौटिल्य भी इन्हें किसी राजा का अमात्य स्वीकारते हैं - शीटा शाटीति घोटकमुखः। कामसूत्र में इनके मतों का उल्लेख 'नायकसहायदूतकर्म' प्रकरण में होता है।

गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक अधिकरण को आधार बनाकर भार्याधिकारिक तन्त्र की रचना की। भार्याधिकारिक तन्त्र एवं भार्याधिकारिक अधिकरण में परिवार के मर्यादित नियमों का विशद विवेचन किया गया है, जिससे कि परिवार की मर्यादा को सुरक्षित रखते हुये दम्पत्ति कामरूपी आनन्द का सम्यक् रूप से प्राप्ति करें। आचार्य पतंजलि का ही देशज नाम गोनर्दीय था। क्योंकि गोनर्दीय शब्द का अर्थ गोनर्द-प्रान्तीय व्यक्ति होता है। भारत में गोनर्द नाम के दो स्थान प्रसिद्ध है, प्रथम कश्मीर राज्य का गोनर्द प्रान्त तथा द्वितीय अयोध्या के समीप गोनर्द नगर (वर्तमान में गोण्डा जनपद) ।

आचार्य गोणिकापुत्र ने बाभ्रव्य के कामशास्त्र अन्तर्गत पंचम अधिकरण को आधार बनाकर पारदारिक तन्त्र नामक ग्रन्थ की रचना की ।

आचार्य कुचुमार ने औपनिषदिक अधिकरण को आधार बनाकर औपनिषदिक कामशास्त्रीय (कुचुमारतन्त्र) ग्रन्थ की रचना की ।

अतः बाभ्रव्य के सातों अध्यायों पर, अलग-अलग आचार्यों ने अलग-अलग ग्रन्थों की रचना की। वे सातों अधिकरण निम्नलिखित हैं –

1. आचार्य दत्तक ने वैशिक अधिकरण पर ।
2. आचार्य चारायण ने साधारण अधिकरण पर।
3. आचार्य सुवर्णनाभ ने साम्प्रयोगिक अधिकरण पर।

4. आचार्य घोटकमुख ने कन्यासम्प्रयुक्तक अधिकरण पर।
5. आचार्य पतंजलि (गोनर्दीय) ने भार्याधिकारिक अधिकरण पर।
6. आचार्य गोणिकापुत्र ने पारदारिक अधिकरण पर।
7. आचार्य कुचुमार ने औपनिषदिक अधिकरण पर।

अभी तक वात्स्यायन द्वारा कामसूत्र में उल्लिखित कामशास्त्रीय ग्रन्थों का वर्णन हुआ। अब कामसूत्र, और कुछ अन्य विद्वानों के ग्रन्थों का उल्लेख किया जायेगा। कामशास्त्र के ग्रन्थों को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है - १. कामसूत्र के पूर्ववर्ती ग्रन्थ २. कामसूत्र के परवर्ती ग्रन्थ।

१. कामसूत्र के पूर्ववर्ती ग्रन्थ :-

१. पौरुरवसमनसिजसूत्र – इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम सम्पादित रूप कामकुंजलता में प्राप्त होता है, कामकुंजलता का सम्पादन पं. ढुण्ढिराजशास्त्री ने किया था। पौरुरवसमनसिजसूत्र में सम्पूर्ण ५२ सूत्र है, इस ग्रन्थ के आदि प्रणेता महाराज पुरुरवा हैं, इसका काल निर्धारण ऋग्वेदकालीन बताया जाता है, क्योंकि पुरूरवा वेदोक्त राजर्षि है और ऋग्वेद में पुरूरवा-उर्वशी संवाद सूक्त भी प्राप्त होता है। ब्रह्मसूत्र का प्रारम्भ 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' से होता है, उसी प्रकार इस ग्रन्थ का भी प्रारम्भ 'अथातः पौरूरवसं मनसिजसूत्रम् व्याख्यास्यामः' से होता है अर्थात् दोनों के प्रारम्भ में अथ और अतः शब्द प्रयोग हुये है। इसीलिए दोनों ग्रन्थ समकालीन स्वीकार किये जाते हैं। इस ग्रन्थ को पुरूरवा का कामसूत्र भी कहा जाता है। पुरूरवा की पत्नी देवांगना उर्वशी थी, जो कुछ प्रतिबद्धताओं के कारण पुरूरवा को छोड़कर देवलोक चली जाती है। इस ग्रन्थ में परमानन्द, ब्रह्मानन्द, इन्द्रानन्द, अवांगमनसगोचरानन्द और अन्त में चिदाभासानन्द शब्दों का प्रयोग संभोग से प्राप्त आनन्द के लिए किया गया है। यह ग्रन्थ कामकुन्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

२. कादम्बरस्वीकरणसूत्र – इस ग्रन्थ के रचनाकार राजर्षि पुरूरवा है, जिन्होंने पौरूरवसमनसिजसूत्र ग्रन्थ लिखा है, दोनों ग्रन्थों की सूत्रशैली एक समान है। ये दोनों ग्रन्थ वात्स्यायन और पतंजलि के बहुत पूर्व के हैं। यह ग्रन्थ बहुत ही लघुकाय है, क्योंकि इस ग्रन्थ में केवल तैतीस सूत्र है। यह ग्रन्थ भी पौरूरवसमनसिजसूत्र की तरह वेदकालीन है क्योंकि दोनों के लेखक एक ही हैं। पुराणों के अनुसार राजर्षि पुरूरवा चन्द्रवंश के प्रवर्तक और वैवस्वत मनु के वंशज थे और वैवस्वत मनु ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं। राजर्षि पुरूरवा की माता का नाम इला और पिता का नाम बुध, पितामह का नाम चन्द्रमा था। इस ग्रन्थ में वारुणीपान (मदिरापान) का उल्लेख बहुत ही शृंगारिक तरीके से किया गया है और बताया गया है कि मदिरा कितने प्रकार की होती हैं, कैसे बनती है, क्यों, कब और कैसे मदिरा का पान करना चाहिये ? अतः यह मदिरा प्रधान ग्रन्थ है, क्योंकि कादम्बर का अर्थ हीं अंगूर से बनायी गयी मदिरा होता है। यह ग्रन्थ कामकुन्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

३. कादम्बरस्वीकरण कारिका – यह एक कामशास्त्रीय काव्यकृति है। इस ग्रन्थ की रचना भरतमुनि ने किया है, ऐसा बहुत से विद्वानों का मानना है। बहुत से विद्वानों का कहना है कि नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ही इस ग्रन्थ के भी रचनाकार है, क्योंकि दोनों ग्रन्थों की भाषाशैली एक समान है। दोनों ग्रन्थों में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है। कामकुंजलता में भी दोनों ग्रन्थों के रचनाकार भरत मुनि को ही बताया गया है। भरत का रचनाकाल लगभग दो हजार ई. पू. माना जाता है। इस ग्रन्थ में मुख्यरूप से बताया गया है कि मृद्रीका (अंगूर) का रस कामतन्त्र कला में बहुत ही हितकारी है। इसमें भी कादम्बरस्वीकरणसूत्र की ही तरह मदिराओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ कामकुन्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के

सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

४. कामतन्त्र - आचार्य कर्णीसुत मूलदेव ने कामतन्त्र की रचना की है, इनका उल्लेख कोक्कोक अपने ग्रन्थ रतिरहस्य में करते हैं। बाणभट्ट ने भी कर्णीसुत का उल्लेख कादम्बरी के विन्ध्याटवी वर्णन में किया है और बताया जाता है कि यह चौर्यशास्त्र के प्रवर्तक थे - कर्णीसुतः करटकः स्तेयशास्त्र प्रवर्तकः। कर्णीसुत को उदयन की तरह वैशिक नायक के रूप में प्रसिद्धि थी। कर्णीसुत कामशास्त्र, कलाशास्त्र और चौर्यशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान थे। यह ई. पू. चतुर्थ शतक से ई. पू. षष्ठ शतक के मध्य सम्भवतः हुये।

५. बाभ्रव्यकारिका – इस ग्रन्थ के रचनाकार बाभ्रव्य मुनि हैं, ऐसा माना जाता है। इन्होंने लगभग 500 ईसा पूर्व इस ग्रन्थ की रचना किया होगा। यह एक पद्यात्मक कामशास्त्रीय ग्रन्थ है, इसमें 146 श्लोक है। बाभ्रव्य के पिता का नाम बभ्रू था। पूर्व में यह ग्रन्थ बहुत ही विशाल था परन्तु इसकी पाण्डुलिपियां शनैः शनैः लुप्त होती गयीं, और अब इतना हीं भाग बचा है। इस ग्रन्थ के टीकाकार आयुर्वेद मर्मज्ञ श्री सामराजदीक्षित के पुत्र आचार्य कामराज हैं। वात्स्यायन ने कामसूत्र में बाभ्रव्य का वर्णन किया है। कामसूत्र में इस ग्रन्थ के बहुत से श्लोक सूत्र रूप में प्राप्त होते हैं। बाभ्रव्यकारिका कामसूत्र से प्राचीन ग्रन्थ है, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। डॉ. दलवीर सिंह चौहान का भी कहना है कि- बाभ्रव्य कारिका अवश्य ही बाभ्रव्य मुनि द्वारा लिखित होगी। यह ग्रन्थ कामकुन्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

६. स्मरशास्त्र - वसुनन्द ने स्मरशास्त्र नामक कामशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है, केवल विवरण प्राप्त है। यह मूलतः कश्मीर के राजा क्षितिनन्द के पुत्र वसुनन्द थे। राजा वसुनन्द ने कश्मीर पर बावन (52) वर्ष, 2 माह तक शासन किया था, महाकवि कल्हण द्वारा लिखित राजतरंगिणी में इनका वर्णन प्राप्त होता है।

२. कामसूत्र के परवर्ती ग्रन्थ :-

अब कामसूत्र और कामसूत्र के परवर्ती ग्रन्थों को उल्लिखित किया जा रहा है। जिनमें से कुछ प्रकाशित है, कुछ उपलब्ध है और कुछ अनुपलब्ध है, जो निम्नलिखित है -

1. कामसूत्र - इस प्रकार से आचार्य बाभ्रव्य का ग्रन्थ बहुत विशाल एवं दुरध्येय था। इसलिए आचार्य वात्स्यायन ने सूत्र रूप में सम्पूर्ण कामशास्त्र को कामसूत्र में समाहित कर दिया। जिसमें उक्त सभी ग्रंथों का सार समन्वित है। इसीलिए कामसूत्र संस्कृत साहित्य जगत में सर्वमान्य हो गया। वात्स्यायन के कामसूत्र में धर्म, अर्थ और काम के विषय में चिन्तन किया गया है। कामसूत्र में कुल 7 अधिकरण, 36 अध्याय, 64 प्रकरण और 1250 सूत्र है। कामसूत्र को कामशास्त्र का उपजीव्य ग्रन्थ माना जाता है। कामशास्त्र के ज्ञान परंपरा में वैसे तो बहुत सारे ग्रन्थ लिखे गये हैं, परन्तु कुछ विद्वानों के द्वारा कामसूत्र को ही सर्वप्राचीन माना जाता है।

भारतीय विद्वान कामसूत्र को ईसा पूर्व 2-3 शताब्दी में रचा हुआ ग्रन्थ मानते हैं। परन्तु विंटरनिट्ज ने भाषा प्रयोग के आधार पर वात्स्यायन का समय ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी माना है। कामसूत्र पर सर्वप्रथम जयमंगला टीका यशोधर पंडित के द्वारा राजा विसलदेव के राज्यकाल में (1243-1261 ई.) में लिखी गयी। कामसूत्र में सात अधिकरण है, जिसका उल्लेख सर्वप्रथम बाभ्रव्य ने किया है, जो अधोलिखित है-

१. आचार्य दत्तक ने वैशिक अधिकरण पर ।
२. आचार्य चारायण ने साधारण अधिकरण पर।
३. आचार्य सुवर्णनाभ ने साम्प्रयोगिक अधिकरण पर।
४. आचार्य घोटकमुख ने कन्यासम्प्रयुक्तक अधिकरण पर।
५. आचार्य पतञ्जलि (गोनर्दीय) ने भार्याधिकारिक अधिकरण पर।

६. आचार्य गोणिकापुत्र ने पारदारिक अधिकरण पर।
७. आचार्य कुचुमार ने औपनिषदिक अधिकरण पर।

मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित New Catalogues Catalogorum तथा अन्य सन्दर्भों से प्राप्त कामसूत्र के कुछ अन्य भाषीय संस्करण इस प्रकार है ॐ -

बांग्ला संस्करण - बांग्ला लिपि में बंगानुवाद एवं विवरण सहित सन् 1909 ई. में कोलकाता से प्रकाशित है ।

कन्नड़ संस्करण - कन्नड़ लिपि में सन् 1927 ई. में बेल्लारी से तथा पं वेंकट जी भस्मे द्वारा कन्नड़ भाष्य सहित ४ भागों में सम्पादित होकर जनजीवन कार्यालय, धारवाड़ से सन् 1944-45 ई. में प्रकाशित।

तमिल संस्करण - तमिल लिपि में तमिल भाष्य सहित सन् 1924 ई. में कुम्भकोणम् से प्रकाशित।

मलयालम संस्करण - मलयालम लिपि में साधारण अधिकरण से विवाहयोगाधिकरण (कन्यासंप्रयुक्तक) पर्यंत त्रिसूर से सन् 1933 ई. में तथा भार्याधिकारिक अधिकरण से चित्रयोग अधिकरण (औपनिषदिक) पर्यंत त्रिसूर से सन् 1945 ई. में प्रकाशित।

तेलुगु संस्करण - तेलुगु लिपि में जयमंगला टीका एवं तेलुगु भाष्य सहित पं. पी. आदित्यनारायण शास्त्री द्वारा संपादित होकर सन् 1924 ई. में मद्रास से प्रकाशित।

अंग्रेजी संस्करण - Richard Burton ,oa F-F- Arbuthnot द्वारा संपादित एवं अनुवादित होकर सन् 1883 ई. में कामसूत्र सोसाइटी, लन्दन से प्रकाशित, के. रंगास्वामी आयंगर द्वारा आंग्लानुवादित संस्करण सन् 1921 ई. में पंजाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर से प्रकाशित सम्प्रति विश्व भर में अनेकों अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित।

जर्मन संस्करण - जर्मन लिपि में Rechard Schmith द्वारा संपादित एवं जयमंगलानुसार अनुवादित होकर सन् 1897 ई. में Leipzig से तथा Guido Heel द्वारा अनुवादित होकर Munich से सन् 1965 ई. में प्रकाशित।

फ्रेंच संस्करण - फ्रेंच लिपि में Isiodore Liseu द्वारा संपादित एवं अनुवादित होकर सन् 1885 ई. में पेरिस से तथा पेरिस से ही E- Lemairesse द्वारा संपादित एवं अनुवादित होकर सन् 1891 ई. में प्रकाशित।

उपर्युक्त संस्करणों के अतिरिक्त भारत एवं विश्व की और भी अनेक भाषाओं में इसके अनेकों संस्करण प्रकाशित हैं ।

2. नागरसर्वस्वम् - कलामर्मज्ञ ब्राह्मण विद्वान् वासुदेव से संप्रेरित होकर बौद्धभिक्षु पद्मश्रीज्ञान (पद्मश्री) ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ 313 श्लोकों एवं 38 परिच्छेदों में निबद्ध है। यह ग्रन्थ कोक्कोककृत रतिरहस्यम् और दामोदरगुप्त द्वारा लिखित कुट्टनीमतम् का निर्देश करता है। नागरसर्वस्यम् का उल्लेख नाटकलक्षणरत्नकोश (12 वीं शताब्दी) एवं शार्ङ्गधरपद्धति (13 वीं शताब्दी) में प्राप्त होता है। इसलिए इनका समय 10-12वीं शताब्दी के मध्य में स्वीकृत है। प्रो. ज्योतिर्मित्र आचार्य इस ग्रन्थ का रचनाकाल 11वीं शताब्दी का प्रारम्भिक चरण स्वीकार करते हैं। नागरसर्वस्यम् की दो टीकायें उपलब्ध हैं जिनमें एक तनुसुखराम द्वारा प्रणीत तथा दूसरी जगत्ज्योतिर्मल्ल (1617 से 1633 ई.) द्वारा प्रणीत है। यह ग्रन्थ डॉ. रामसागर त्रिपाठी और श्रीमति तारावती त्रिपाठी के द्वारा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

3. अनंगरंग - मुस्लिम शासक लोदीवंश अहमदखान के पुत्र लाडखान के कुतूहलार्थ भूपमुनि के रूप में प्रसिद्ध कलाविदग्ध कल्याणमल्ल ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। यह ग्रन्थ 420 श्लोकों एवं 10 स्थलरूप अध्यायों में निबद्ध है। यह कामशास्त्र का बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कल्याणमल्ल सूर्यवंशी राजघराने से थे, इनके पितामह का नाम त्रैलोक्य चन्द्र और पिता का नाम गजमल्ल था। कल्याणमल्ल ने अनंगरंग के अतिरिक्त दो और ग्रन्थ लिखे थे, जो अब उपलब्ध नहीं हैं। मेघदूत की टीका का उल्लेख कैटालागस कैटेलागोरम (1.86) में

किया गया है और सुलेमत चरित (डेविड का पुत्र) का वर्णन मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत पाण्डुलिपि की पंजिका में किया गया है। कल्याणमल्ल ने कामसूत्र के साम्प्रयोगिक अधिकरण को मुख्यरूपेण आधार बनाकर और अन्य अधिकरणों को गौणरूप में मानकर, अनंगरंग की रचना की। अनंगरंग में स्त्री-पुरुषों का विशद विवेचन किया गया है। कल्याणमल्ल ने विशेषरूप से उस समय के विभिन्न देशों की स्त्रीयों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। कल्याणमल्ल का काल-निर्धारण 15वीं शताब्दी के बाद स्वीकार किया जाता है। यह ग्रन्थ डॉ. रामसागर त्रिपाठी के द्वारा, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

4. रतिरहस्यम् - यह ग्रन्थ कामसूत्र के पश्चात दूसरा सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। भारतीय संस्कृत विद्वत परम्परा कोक्कोक को कश्मीरी स्वीकारती है। कोक्कोक को श्रीगद्यविद्याधरकवि भी कहा जाता था, कोक्कोक के पिता का नाम पं. पारिभद्र और पितामह का नाम तेजोक था। इस ग्रन्थ में पंचदश परिच्छेद और 555 श्लोकों है। यह ग्रन्थ वन्यदत्त के मनोविनोदर्थ के लिए लिखा गया था। इस ग्रन्थ का उल्लेख कुम्भकर्ण और नैचन्द ने अपने ग्रन्थों में भी किया है। रतिरहस्य पर काञ्चीनाथकृत दीपिका टीका उपलब्ध होती है। यह ग्रन्थ कामसूत्र के सांप्रयोगिक, कन्यासंप्ररुक्तक, भार्याधिकारिक, पारदारिक एवं औपनिषदिक अधिकरणों के आधार पर लिखा गया था। इनके समय के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि कोक्कोक 7वीं से 10वीं शताब्दी के मध्य हुए थे। यह कृति जनमानस में इतनी प्रसिद्ध हुई सर्वसाधारण कामशास्त्र के पर्याय के रूप में 'कोकशास्त्र' नाम प्रख्यात हो गया। यह ग्रन्थ डॉ. रामानन्द शर्मा के द्वारा, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

5. पंचसायक - मिथिलानरेश हरिसिंहदेव के सभापण्डित कविशेखर ज्योतिरीश्वर ने प्राचीन कामशास्त्रीय ग्रंथों के आधार बनाकर, इस ग्रंथ का प्रणयन किया। कविशेखर ने धूर्तसमागम नामक प्रहसन ग्रन्थ भी लिखा था। मिथिलानरेश ने इनको कविशेखर की उपाधि प्रदान की थी। ज्योतिरीश्वर के पिता का नाम पं. धीरेश्वर और पितामह का नाम पं. रामेश्वर था। कविशेखर ने पंचसायक में अनेकों ग्रन्थों का उल्लेख किये हैं - वात्स्यायन, गोणीपुत्र, मूलदेव, बाभ्रव्य, नन्दीकेश्वर, रन्तिदेव, क्षेमेन्द्र, आत्रेय, आर्जुन, शाक्यसारण, कवि क्षमापाल, वागीश्वर आदि। यह ग्रन्थ 200 श्लोकों एवं 7 सायकरूप अध्यायों में निबद्ध है जो कि साम्प्रयोगिक, कन्यासंप्रयुक्तक, पारदारिक और औपनिषदिक अधिकरणों पर आधारित है। यह ग्रन्थ आलोचकों में बहुत हीं लोकप्रिय रहा है। आचार्य ज्योतिरीश्वर का समय चतुर्दश शतक के पूर्वार्ध में स्वीकृत है। यह ग्रन्थ कामकुन्जलतान्तर्गत, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

6. रतिमंजरी – सर्वशास्त्रज्ञ कवि जयदेव ने इस ग्रन्थ की रचना की है, इसमें सम्पूर्ण साठ श्लोक है। कामशास्त्र और रतिशास्त्र को आधार बनाकर रतिमंजरी की रचना जयदेव ने किया। इस ग्रन्थ में जयदेव ने रतिशास्त्र और कामशास्त्र का सार संक्षिप्त किया है और इसमें विशेष रूप से नायक एवं नायिका के लक्षण तथा सोलह बन्धों का वर्णन किये हैं। रतिमंजरी का कालनिर्धारण 12-15वीं शताब्दी स्वीकार किया जाता है। यह ग्रन्थ बहुत ही सरल और लघुकाय है। अपने लघुकाय रूप में निर्मित यह ग्रंथ आलोचकों में पर्याप्त लोकप्रिय रहा है। यह ग्रन्थ कामकुन्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

7. स्मरदीपिका – आचार्य मीननाथ द्वारा प्रणीत यह एक अद्भुत कामशास्त्रीय ग्रन्थ है इसमें कुल 216 श्लोक है। स्मरदीपिका का अर्थ, कामदेव को जगाने वाली होता है। इसमें स्त्री के अन्तर्गत कामभाव को जगाने वाले सभी प्रकार की विधि बतायी गयी है। स्मरदीपिका का कालनिर्धारण 15-16वीं शताब्दी माना जाता हैं। यह ग्रन्थ कामकुन्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

8. रतिकल्लोलिनी – दाक्षिणात्य बिन्दुपुरन्दरकुलीन ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न एवं बुन्देलखण्ड नरेश श्रीमदानन्दराय के सभापण्डित आचार्य सामराज दीक्षित द्वारा 193 श्लोकों में निबद्ध इस ग्रन्थ का प्रणयन संवत 1738 अर्थात 1681 ई. में हुआ था। इसमें कन्याओं के लक्षण और प्रकार के विषय में बताया गया है कि ये चार प्रकार की होती हैं - पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी। इसी तरह नायक के भी चार भेद है- शशक, मृग, वृष एवं अश्व। इस ग्रन्थ में परदारागमन का निषेध किया गया है। यह ग्रन्थ कामकुञ्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

9. रतिरत्नप्रदीपिका – यह ग्रन्थ विजयनगर के महाराजा श्री इम्मादी प्रौढ़देवराय (1422-48 ई.) प्रणीत 476 श्लोकों एवं 7 अध्यायों में निबद्ध है। श्री इम्मादी प्रौढ़देवराय का समय पंचदश शतक के पूर्वार्ध में स्वीकृत है। प्राचीन अभिलेखों से प्राप्त होता है कि श्री इम्मादी प्रौढदेवराय का दूसरा नाम मल्लिकार्जुन भी था। इनके पिता का नाम देवराय द्वितीय था। रतिरत्नप्रदीपिका ग्रन्थ में प्रौढ़देवराय ने स्त्री जाति की कामकलाओं का विस्तार से वर्णन किया है। रतिरत्नप्रदीपिका में नन्दीश, गौणीपुत्र, वात्स्यायन, कोक्कोक आदि कामशास्त्रीय विद्वानों का उल्लेख प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ कामकुञ्जलतान्तर्गत, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

10. गुणपताकाशास्त्र – इस ग्रन्थ के लेखक अज्ञातकर्तृक है। इस ग्रन्थ का उल्लेख रतिरहस्य और रतिरत्नदीपिका में किया गया है। पण्डित पृथ्वीधररचित मृच्छकटिक की पृथ्वीधरी टीका में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। गुणपताकाशास्त्र नामक इस ग्रन्थ की रचना वात्स्यायन और कोक्कोक के मध्य में हुई होगी, क्योंकि रतिरहस्य में इसका उल्लेख प्राप्त हो रहा है। इस ग्रन्थ में बाला, तरुणी, प्रौढ़ा और वृद्धा स्त्रीयों के साथ उचित व्यवहार से सम्बन्धित कार्य-व्यापार का वर्णन किया गया है। पुरुष को आयु या अवस्था के अनुरूप स्त्री से व्यवहार करना चाहिये और स्त्रीयों को भी पुरुषों के साथ यहीं व्यवहार करना चाहिये।

11. रतिशास्त्र अथवा वैशिकरणतंत्र – रतिशास्त्र ग्रन्थ की रचना आचार्य नागार्जुन (सिद्धनागार्जुन) ने की थी। रतिरहस्य में इस ग्रन्थ का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि परस्पर प्रीतिवर्धन के लिए आचार्य नागार्जुन द्वारा कहे गये अनेक योग हैं जिनमें 14 द्रव्यों का ही संयोग है, जिनसे प्रत्यक्ष फल की प्राप्ति होती है। इस ग्रन्थ को दूसरा नाम वैशिकरणतन्त्र भी है। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि रतिशास्त्र नामक इस ग्रन्थ की रचना वात्स्यायन और कोक्कोक के मध्य में हुई होगी, क्योंकि रतिरहस्य में इसका उल्लेख प्राप्त हो रहा है, वैसे नागार्जुन कई हुये हैं। आचार्य नागार्जुन द्वारा रचित रतिशास्त्र लघुग्रन्थ है, वर्तमान समय में यह नाग प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित है।

12. कुट्टनीमतम् – कामसूत्र के वैशिक अधिकरण को आधार बनाकर पं. दामोदर गुप्त ने इस ग्रन्थ की रचना की, कुट्टनीमतम् का दूसरा नाम साम्भलीमत भी है। पं. दामोदर गुप्त कुट्टनीमतं के पुष्पिका में स्वयं बताते है कि वह काश्मीर के राजा जयापीड के मन्त्री थे। दामोदर गुप्त का समय-निर्धारण 8-9वीं ई. स्वीकार किया जाता है क्योंकि आचार्य कल्हण ने राजतरंगिणी में इनका उल्लेख किये हैं। जयापीड का शासनकाल 779-813 ई. माना जाता है और दामोदर गुप्त भी इसी समय हुये। कुट्टनीमतम् ग्रन्थ का भारतीय समाज पर बहुत ही प्रभाव हुआ और आज भी गांवों मे कुट्टनी शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ पर पं. रत्नगोपालभट्ट ने टिप्पणी लिखा और पं. तनसुखराम त्रिपाठी ने रसदीपिका नामक टीका लिखा। डॉ. जगन्नाथ पाठक ने इसका हिन्दी में अनुवाद किया है। कुट्टनीमतम् में बताया गया है कि एक वेश्या अपने कामकलाओं के माध्यम से नायक को किस प्रकार से अपने वशीभूत करे और कैसे ना करे क्योंकि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के लिए यह

बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है। सभ्य लोग वेश्या के अनुचित कार्यों से कैसे बचें, जिससे की सभ्य लोगों का मर्यादा, शील, स्वभाव आदि की रक्षा हो, अतः इन सभी विषयों पर भी चिन्तन किया गया है।

13. सममातृका - आचार्य क्षेमेन्द्र ने वैशिकतन्त्र के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में वेश्या के आचरण और विचरण पर चिन्तन हुआ है। डॉ. रामसागर त्रिपाठी का कहना है कि- कवि क्षेमेन्द्र व्यासदास की यह रचना है जिसका समय 11वीं शताब्दी ईसवी है।

14. वात्स्यायनसूत्रसार - इस ग्रन्थ के रचनाकार भी आचार्य क्षेमेन्द्र हैं। आचार्य क्षेमेन्द्र ने वात्स्यायन के कामसूत्र का अध्ययन करके संक्षेप में इस ग्रन्थ को लिखा। यह ग्रन्थ पूर्णरूप से वात्स्यायन के कामसूत्र पर आधारित है। यह ग्रन्थ ललित छन्दों में पद्यमय रचना है। वर्तमान समय में यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

15. कामराजरतिसारशतक – इस ग्रन्थ के रचनाकार कुम्भकर्णभूपति हैं, इन्हें राणा कुम्भा भी कहा जाता हैं। इस ग्रन्थ में 7 अंग और 100 श्लोक हैं। राणा कुम्भा ने प्राचीन कामशास्त्र और तन्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन करके इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें नागरिकों के कामकलाओं के विषय में बताया गया हैं जिससे नागरिक आनन्दित जीवन व्यतीत कर सकें।

16. कामसमूह – अनन्त नामक कवि ने 1457 ई. में इस ग्रन्थ की रचना की। अनन्त कवि ने प्रकृति का अध्ययन करते हुये इस ग्रन्थ में ऋतुविज्ञान, प्रेमालिङ्गन, प्रेम का उत्पन्न भाव क्रम, स्त्रियों के प्रकार आदि विषयों का वर्णन किया हैं। काम की सभी विद्याओं और कलाओं को को भी इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ अमल शिव पाठक के द्वारा चौखम्भा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

17. कामतन्त्र ग्रन्थ – तन्त्रों के महान पण्डित श्रीनाथभट्ट द्वारा प्रणीत कामतन्त्र 14 अध्यायों में निबद्ध है और यह कामशास्त्र का एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

18. रसिकरंजन – वैद्यनाथ द्वारा प्रणीत रसिक रंजन कामशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

19. रसिकबोधिनी – विद्यानाथ के पिता कामराज दीक्षित द्वारा लिखा हुआ यह एक प्रामाणिक कामशास्त्र ग्रन्थ है।

20. शृंगार तिलक – यह कालिदास द्वारा प्रणीत शृंगार तिलक एक लघुकाय कामशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

21. रसचन्द्रिका – विश्वेश्वर द्वारा प्रणीत यह कामशास्त्र का एक ग्रन्थ है जिसमें नायक-नायिकाओं का विस्तार से उल्लेख हुआ है।

22. विटवृत्ति – यह सौमदत्ति द्वारा प्रणीत एक ग्रन्थ है जिसमें प्रेमी-प्रेमिकाओं का विस्तार से वर्णन निहित है।

23. शृंगारसार – यह चित्रधार द्वारा प्रणीत सात पद्धतियों में निबद्ध है जिसमें नृत्य संगीत और कामशास्त्र मिश्रित सामग्री निहित है।

24. कन्दर्प चूडामणि – कन्दर्प चूडामणि नामक ग्रन्थ बघेल वंश के राजा रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र के द्वारा लिखा गया। स्वयं लेखक ने संवत् 1633 तदनुसार 1577 ई. काल बतलाया है।

25. बाभ्रव्यकारिका मंजरी – बाभ्रव्यकारिका पर आचार्य कामराज ने वार्तिक ग्रन्थ की रचना की। इस वार्तिक ग्रन्थ में सातों अधिकरणों का विशद विवेचन हुआ है। चुम्बन, आलिंगन, नखक्षत आदि का विस्तृत वर्णन इसमें किया गया हैं। इनका कालनिर्धारण 8-9 वीं शताब्दी माना जाता है।

26. नर्मकेलिकौतुक संवाद – दण्डिकवि विरचित नर्मकेलिकौतिक संवाद ग्रन्थ कामशास्त्र का अतिलघुकाय ग्रन्थ है क्योंकि इसमें केवल व्याख्या सहित चार श्लोक है। कामी नायक-कामिनी नायिका से जो काम अनुरोध रतिक्रीड़ा के समय करता है, उसी का इसमें वर्णन हुआ है।

27. शृंगाररसप्रबन्ध दीपिका – इस ग्रन्थ के रचनाकार कुमारहरिहरनामाक हैं। शृंगाररसप्रबन्ध दीपिका का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि आचार्य हरिहर कामशास्त्र के साथ-साथ काव्यशास्त्र के भी विद्वान थे, क्योंकि इन्होंने ग्रन्थ में काम के साथ-साथ काव्य का भी उल्लेख किये हैं। इनकी छन्द रवना बहुत ही क्लिष्ट है, जो इनकी विद्वत्ता का सूचक है। यह ग्रन्थ चार परिच्छेदों में लिखा गया हैं। इस ग्रन्थ का प्रमुख उद्देश्य कामशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर परिवारों में सुख, शान्ति स्थापित करना है, ना कि भोग-विलास और परस्त्रीगमन। अतः इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से दाम्पत्य जीवन में आस्था, विश्वास और प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। इसकी रचनाकाल लगभग 14वीं शताब्दी माना जाता है। यह ग्रन्थ कामकुंजलता के अन्तर्गत आता है। यह ग्रन्थ कामकुन्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

28. कामतन्त्रकाव्यम् – इस ग्रन्थ के मूल कवि (रचनाकार) के विषय में जानकारी प्राप्त नहीं होती है परन्तु इस ग्रन्थ पर श्रीदैवज्ञ सूर्यवर्य ने संस्कृत टीका की रचना की। कामतन्त्रकाव्यम में कवि ने अपने या अपने वंश के विषय में उल्लेख ही नहीं किया है। यह ग्रन्थ एक प्रकार का छून्दोबद्ध कामशास्त्रीय गीतिकाव्य है। इसमें कवि ने अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया है। कामतन्त्रकाव्यम दो सर्गों में लिखा गया है और दोनों सर्गों की कथायें भिन्न-भिन्न है। इस ग्रन्थ में माध्यम से, जीवन के अनिवार्य तत्त्व सम्भोग की सन्तुष्टि के अभाव से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान पर ध्यानाकर्षित किया गया है। यह ग्रन्थ कामकुञ्जलतान्तर्गत, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

29. कामरत्न तन्त्रम् – इस ग्रन्थ के रचनाकार योगेश्वर गौरीपुत्र नित्यनाथ हैं। यह ग्रन्थ लौकिक जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसमें मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण और स्तम्भनादि जो षटकर्म है, उनका वर्णन हुआ है। इसमें सर्वव्याधि चिकित्सा और यन्त्रमन्त्रादि का भी विशद विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ सोलह उपदेशों में लिखा गया है। यह ग्रन्थ राम कुमार राय के द्वारा, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी के सहयोग से वर्तमान समय में प्रकाशित है।

30. अमरुकशतकम् – इस ग्रन्थ के रचनाकार के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इसके रचनाकार आदि शंकराचार्य हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि अमरुक नामक राजा ने यह ग्रन्थ लिखा है और वह राजा शंकराचार्य से भिन्न है। परन्तु बहुत से विद्वानों का कहना है कि शंकराचार्य ही अमरुक राजा का रूपधारण करके कामकलाओं का ज्ञान प्राप्त किये और मण्डन मिश्र की पत्नी शारदा के साथ शास्त्रार्थ किये, तत्पश्चात अमरुकशतकम् नामक इस ग्रन्थ का प्रणयन किये। यह ग्रन्थ चौखम्भा ओरियन्टालिया, नई दिल्ली से वर्तमान समय में नारायण राम आचार्य के द्वारा प्रकाशित है। डॉ. रामसागर त्रिपाठी का यह भी मानना है कि- कहा जाता है कि प्रतिष्ठित पूज्य शंकराचार्य ने भी कामशास्त्र पर मनसिजसूत्र नाम की एक पुस्तक लिखी थी।

संस्कृत वाङ्मय के अतिरिक्त दक्षिण भारत की तेलगू भाषा के साहित्य में भी कुछ कामशास्त्रीय ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जो निम्नवत हैं -

1. रतिशास्त्रगु – इस ग्रन्थ के रचयिता कवि राविपाटितिप्पना हैं (तेलगू साहित्य का इतिहास, पृ. सं. 94)। ये तेलगू साहित्य में 'त्रिपूरान्तक कवि' नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

2. कोक्कोक – इस ग्रन्थ के प्रणयनकर्ता हैं कवि कुचिराज एर्रना (तेलगू साहित्य का इतिहास, पृ. सं.144)। ये षोडश शतक में हुये थे। इन्होंने अपने कामशास्त्रविषयक ग्रन्थ 'कोक्कोक' की रचना किसी 'मल्लयामात्य' के मनोविनोदार्थ की थी। यह ग्रन्थ पूर्णतया 'रतिरहस्य' पर आधारित है।

3. कामकलानिधि – इस ग्रन्थ के रचयिता हैं नेल्लूरि शिवराम कवि (तेलगू साहित्य का इतिहास, पृ. सं.171)। ये तंजावुर के शासक जयसिंह, जिनका राज्यकाल 1737-1740 ई. तक था उनके दरबारी कवि थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना वात्स्यायन 'कामसूत्र' एवं रतिशास्त्रगु के आधार पर की थी।

4. राधिकास्वान्तनमु – 'राधिकास्वान्तनमु' की रचना 'मुद्दुपलनि' नामक एक विदुषी गणिका ने की थी (तेलगू साहित्य का इतिहास, पृ. सं.171)। ये तंजावुर के शासक प्रतापसिंह, जिनका राज्यकाल 1740-1762 ई. थाय की गणिकाप्रेयसी थीं। ये परमविदुषी एवं कवयित्री थीं। यह ग्रन्थ राधिका एवं कृष्ण की प्रणयलीला के ऊपर आधारित है, जिसमें ग्रन्थकर्ती ने संभोग आदि के कामशास्त्रीय विविध विन्यासों के वर्णन का पूर्णतया नग्न चित्र उपस्थित कर दिया है। जिससे यह काव्य न होकर कामशास्त्रीय ग्रन्थ हो गया। 1931 ई. में द पंजाब संस्कृत बुक डिपोट. लाहोर से प्रकाशित, लाला कन्नू मल, एम. ए. और मुन्शी नारायन प्रसाद अस्थाना, एम. ए, एल.एल.बी. द्वारा लिखित ग्रन्थ 'काम-कला' में पचास कामशास्त्रीय ग्रन्थों का वर्णन किया गया है। जिसमें कुछ ग्रन्थों के विद्वानो का उल्लेख हुआ है और कुछ के नहीं। यह ग्रन्थ आंग्ल भाषा में लिखा गया है, जिनका उल्लेख हिन्दी भाषा में नीचे किया जा रहा हैं -

1. कामसूत्र - वात्स्यायनमुनिकृत, 2. कन्दर्प चुड़ामणि, 3. रतिरहस्य, 4. नागरसर्वस्व, 5. अनंगरंग, 6. पंचसायक, 7. शृंगार तिलक, 8. रतिशास्त्र, 9. कुचमारतन्त्र, 10. अनंगतिलक, 11. अनंग दीपिका, 12. अनंगशेखर, 13. कामसमूह, 14. कलावाद तन्त्र- गौरीकान्त टीका सहित, 15. कलाविधि तन्त्र, १६. कलाशास्त्र- कोक्कोक, 17. कामप्रकाश, 18. काम प्रदीप-गुणाकर, 19. काम प्रबोध (यह ग्रन्थ दो प्राप्त होता है और दोनों के लेखन अलग-अलग हैं) 20. कामरत्न- नित्यनाथ, 21. कामशास्त्र- माधव 22. कामसार- एक कामदेव, 23. कौतुक मंजरी, 24. मदनसंजीवनी, 25. मदनार्णव, 26. मदनोदय, 27. रति मंजरी- जयदेव, 28. रति रहस्य - विद्याधरकवि, 29. रति रहस्य दीपिका- कांचीनाथ, 30. रति रहस्य व्याख्या - रामचन्द्रसूरी, 31. रति रहस्य टीका, 32. रति रहस्य – हरिहर, 33. रतिसर्वस्व, 34. रतिसार, 35. वाजीकरण तन्त्र, 36. वेश्यांगन वृत्ति, 37. शृंगार पद्धति, 38. शृंगार मंजरी, 39. शृंगार सरीनी चित्रर्ध 40. स्मरकाम दीपिका, 41. स्त्री विलास- देवश्वर, 42. स्मर तत्त्व प्रकाशिका-रेवानाराध्या, 43. स्मर दीपिका - रुद्र (विभिन्न लेखकों के पाण्डुलिपि प्राप्त होती है) 44. रतिरत्न प्रदीपिका- देवराज महाराज, 45. स्मर रहस्य व्याख्या, 46. काम प्रभृति - केशव, 47. कामानन्द - वरदार्य, 48. रति – का और 49. रति दर्पण - हरिहर, 50. कोकसार (हिन्दी में)- आनन्द इस प्रकार से संस्कृत साहित्य में कामशास्त्र पर अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये क्योंकि भारतीय ज्ञान की एक कामशास्त्रीय अक्षुण्य परम्परा भी रही है। शोधार्थी का मानना है कि कामसूत्र से भी बहुत से पुराने ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जैसे कि – पौरुरवस्मनसिजसुत्र, कादम्बरस्वीकरणसूत्र, कादम्बरस्वीकरणकारिका, बाभ्रव्यकारिका आदि। जब इन सभी ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं तब ज्ञात होता है कि कामसूत्र में इन ग्रन्थों से बहुत सारी बाते ग्रहण की गयीं हैं और इन सभी ग्रन्थों की रचना शैली और लेखकों के नाम भी बहुत प्राचीन ज्ञात होते हैं। अतः कामशास्त्र की ऐतिहासिकता बहुत ही प्राचीन है। अब परिशिष्ट के माध्यम से कामशास्त्र के ग्रन्थों का अवलोकन किया जा रहा है।

परिशिष्ट

क्र.सं.	ग्रन्थ	आचार्य	समय	टिप्पणी
1.	अनंगतिलक	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख एम. कृष्णमाचारी ने History of Classical Sanskrit Literature में पृष्ठ संख्या 896 पर किया है। इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम उल्लेख Gustav Oppert के द्वारा संपादित एवं 1885 ई. में प्रकाशित स्पेज of Sanskrit Manuscripts in Private Library of Southern India नामक ग्रन्थ में विवरण संख्या 6548, 6556 पर किया गया है।
2.	अनंगदीपिका	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख राजेन्द्र लाल मित्र द्वारा संपादित एवं तत्कालीन भारत सरकार द्वारा सन् 1880 ई. में कोलकाता से प्रकाशित। Catalogue of Sanskrit Manuscripts पद the Library of H-H- the Maharaja of Bikaner नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ का नागरी लिपि में भी एक पर्ण बीकानेर महाराजा के पुस्तकालय में क्रम संख्या 1131 पर उपलब्ध होता है।
3.	अनंगरंग	कल्याणमल्ल		15 वीं शताब्दी यह ग्रन्थ वर्तमान समय में प्रकाशित है। सन् के पश्चात 1882 ई. में लन्दन में रिचर्ड बर्टन और फ एफ. अवुथनाट ने हिन्दू कामशास्त्र ग्रन्थों का अध्ययन करने के उद्देश्य से जब कामसूत्र? सोसाइटी बनाई, उस समय सर्वप्रथम यही ग्रन्थ उपलब्ध था। जब इस ग्रन्थ में वात्स्यायन आदि कामशास्त्र के आचार्यों और ग्रन्थों के नाम उपलब्ध हुये, तब जाकर कामशास्त्र के अनेकों ग्रन्थों को शोध के माध्यम से प्राप्त किया गया। इस ग्रन्थ पर अनेकों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं ।
4.	अनंगशेखर	अज्ञात	अज्ञात	अनंगशेखर का उल्लेख एम. कृष्णमाचारी ने History of Classical Sanskrit Literature में पृष्ठ संख्या 896 पर किया है। इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम उल्लेख Gustav Oppert के द्वारा संपादित एवं 1885 ई. में प्रकाशित List of Sanskrit

				Manuscripts in Private Library of Southern India नामक ग्रन्थ में विवरण संख्या 5485 पर किया गया है ।
5.	कन्दर्पचूड़ामणि	वीरभद्रदेव	1577ई.	यह ग्रन्थ सन् 1924 ई. में मुम्बई से गुजराती न्यूज प्रेस से प्रकाशित हुआ था, परन्तु अब इसकी प्रकाशित प्रति उपलब्ध नहीं है।
6.	कन्दर्पतंत्रप्रदीपाष्टक	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ की अपूर्ण पाण्डुलिपि नेवारी लिपि में उपलब्ध है। इस ग्रन्थ का उल्लेख एसियाटिक सोसाइटी, कोलकाता के मातृकागार में क्रमसंख्या Acc- No- 4729 पर किया गया है ।
7.	कलाशास्त्र	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख Gustav Oppert के द्वारा संपादित एवं 1885 ई. में प्रकाशित List of Sanskrit Manuscripts पद Private Library of Southern India नामक ग्रन्थ के द्वितीय भाग में विवरण संख्या 3608 पर किया गया है ।
8.	कलासूत्र		अज्ञात	अज्ञात इस ग्रन्थ का उल्लेख छमू Catalogues Catalogorum में किया गया है।
9.	कादम्बरस्वीकरण–कारिका	राजर्षि भरत	लगभग 2000 ई.पू.	यह ग्रन्थ वर्तमान समय में चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वारणसी से प्रकाशित एवं उपलब्ध है।
10.	कादम्बरस्वीकरणसूत्र	राजर्षि पुरुरवा	अज्ञात	यह ग्रन्थ वर्तमान समय में चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से प्रकाशित एवं उपलब्ध है ।
11.	कामकलाविलास	सूर्यनारायण	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है द्य
12.	कामकल्पलता	कृष्णपति	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
13.	कामकलासार	पं. इक्षागिरि	अज्ञात	इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1993 ई. में श्री वेंकटश्वर प्रेस, मुम्बई से हुआ है ।
14.	कामकारिका	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है।
15.	कामकुतूहल	कन्हैयालाल शर्मा	अज्ञात	इसका उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।

16.	कामकौतुकम	नित्यानन्द	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख 1702 ई. मंण देवनागरी लिपि में पाण्डुलिपि प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, बड़ोदरा में Acc- No-13001 पर किया गया है।
17.	कामकौतूहलम	गुरु हेमनाथ	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
18.	कामकौतूहलम	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है । इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद सहित प्रथम प्रकाशन सन् 1902 ई. में किया गया था परन्तु वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं होता है ।
19.	कामकौमुदी	रतिनाथ चक्रवर्ति	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
20.	कामतन्त्र	लेखक	अज्ञात	यह ग्रन्थ वर्तमान समय में 'कामकुंजलता' के अज्ञात है और दैवज्ञ अन्तर्गत प्रकाशित है। सूर्य टीका का है।
21.	कामतन्त्र	पण्डित दिवोदास	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
22.	कामतन्त्र	शिवप्रोक्त	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
23.	कामदायिनी	यदुनाथ सिंह	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
24.	कामदीपिका	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
25.	कामप्रकाश	गणेश प्रसाद	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख पूर्ण पाण्डुलिपि गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद के मातृकालय में S- No- 1770] Acc- No 9726/23 पर किया गया है ।
26.	कामप्रदीप	गुणाकर	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख भण्डारकर प्राच्यविद्या शोध संस्थान, पुणे के मातृकालय में। बब. छव. 1029 के 1884–87 पर किया गया है ।
27.	कामप्रदीप	आचार्य धनंजय	अज्ञात	यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। इसका उल्लेख पं. रघुनाथ मनोहर द्वारा प्रणीत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ कविकौस्तुभ में किया गया है ।
28.	कामप्रबोध	पं. जनार्दन व्यास	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख 1880 ई. मंण कोलकाता से प्रकाशित। Catalogue of Sanskrit

				Manuscripts in the Library of H-H the Maharaja of Bikaner में No- 1133 पर किया गया है ।
29.	कामप्राभृत	पं. केशव	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर के मातृकालय में Acc-No- 216ß3838 पर किया गया है ।
30.	कामरंगोदय	परमसुख कवि	अज्ञात	यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है ।
31.	कामरत्न	नित्यनाथ	अज्ञात	यह ग्रन्थ वर्तमान समय में प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित है ।
32.	कामरत्नसमुच्चय	क्षमानन्द ब्रह्मचारी	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
33.	कामराजरतिसार	कुम्भकर्ण महीन्द्र	अज्ञात	यह ग्रन्थ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर स्थित संग्रहालय में अपूर्ण रूप में प्राप्त है ।
34.	कामशास्त्र	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख। Descriptive Catalogue of the Sanakrit Manuscripts in the Tanjore Maharaja Serfoji*s Sarasvati MahalLibrary] Tanjore] Vol-XVI में किया गया है।
35.	कामशास्र	गोरखनाथ योगीन्द्र	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogu Catalogorum में किया गया है । इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद सन् १८६६ ई. में मुरादाबाद से प्रकाशित हुआ था परन्त वर्तमान समय में यह ग्रन्थ प्रकाशित रूप से उपलब्ध नहीं है ।
36.	कामशास्त्र	प्राणहरि योगविशारद	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गय है ।
37.	कामशास्त्र	रंगनाथ सखाराम लाले	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है।
38.	कामसमूह	अनन्त–कवि	१४५७ ई.	यह ग्रन्थ वर्तमान समय में चौखम्भा पब्लिकेशन्स से प्रकाशित है, इसका आंग्ल भाषा मंख अनुवाद अमल शिब पाठक ने किया है ।
39.	कामसर्वस्व	अज्ञात	अज्ञात	यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है ।
40.	कामसार	आचार्य कामदेव	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख पूर्ण पाण्डुलिपि गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद के मातृकालय में S-No-9581, Acc-No-9093/15 पर किया गया है।

41.	कामसूत्र	वात्स्यायन	ई.पू. २–३ शताब्दी	यह कामशास्त्र का वर्तमान समय में सबसे ख्यातिलब्ध ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ प्रकाशित रूप में उपलब्ध है ।
42.	कामानन्द	वरदार्य	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख Government Oriental Manuscript Library, Madras esa Acc- No- R- 2727(b) किया गया है, जो कि देवनागरी लिपि में लिखा गया है।
43.	कामानुशासन	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
44.	कामिनीकामकौतुक	कृष्णकान्त विद्यावागीश भट्टाचार्य	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
45.	कामुकरसायन	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख Government Oriental Manuscript Library, Madras में Acc- No- 5479 पर किया गया है ।
46.	कामोद्दीपनकौमुदी	माधवसिंह–देव	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogume Catalogorum में किया गया है ।
47.	कामोल्लास	सबल सिंह	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
48.	कुचसंस्कार	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
49.	कुट्टनीमतम् (शम्भलीतम्)	दामोदरगुप्त	779–813 ई.	यह ग्रन्थ कामकला के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है। वर्तमान में यह ग्रन्थ चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी से उपलब्ध है ।
50.	केलिकुतूहलम्	पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित	अज्ञात	यह ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद सहित कृष्णदास अकादमी, वाराणसी से प्रकाशित है।
51.	कोकशास्त्र	नर्मदाचार्य	19वीं शता.	इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के मुख्यालय में Acc- No- 12414 में किया गया है ।
52.	कोकसार	वैद्यक पं. नारायण प्रसाद मिश्र	प्रकाशित वर्ष– १९९३ ई.	यह ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद प्रकाश्ति सहित श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई प्रकाशित से है।
53.	कोकसारभूषण	नन्दिघोष	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख New Catalogues Catalogorum में किया गया है ।
54.	नर्मकेलिकौतुकसंवाद	कविराजमुकुट दण्डी	अज्ञात	यह ग्रन्थ चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से सन् 1967 ई. में प्रकाशित हुआ था।

55.	नागरसर्वस्वम्	भिक्षु पद्मश्री	११–१२वीं शताब्दी	यह ग्रन्थ वर्तमान में चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली से प्रकाशित है ।
56.	पंचसायम्	ज्योतिरीश्वर	१३ वीं शताब्दी	यह ग्रन्थ वर्तमान समय में चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी से प्रकाशित है ।
57.	पौरूरवसमन-सिजसूत्रम्	राजषि पुरूरवा	४ हजार वर्ष पूर्व	यह ग्रन्थ चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से सन् 1967 ई. में प्रकाशित हुआ था और वर्तमान समय में भी यह ग्रन्थ उपलब्ध है।
58.	योनिमंजरी	कृष्णदास विप्र	अज्ञात	इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि लालभाई दलपतभाई भारतीय विद्यामन्दिर, नवरंगपुरा, अहमदाबाद के मातृकालय में Acc-No- 10971 पर उपलब्ध होता है ।
59.	रतिकल्लोलिनी	सामराज दीक्षित	1658 ई.	यह ग्रन्थ चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से सन् 1967 ई. में प्रकाशित हुआ था और वर्तमान समय में भी यह ग्रन्थ उपलब्ध है ।
60.	रतिमंजरी	जयदेव	12–15वी शताब्दी	यह ग्रन्थ चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से सन् 1967 ई. में प्रकाशित हुआ था और वर्तमान समय में भी यह ग्रन्थ उपलब्ध है ।
61.	रतिरत्नप्रदीपिका	प्रौढ़देवराय	1522–48 ई.	यह ग्रन्थ चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से सन् 1967 ई. में प्रकाशित हुआ था और वर्तमान समय में भी यह ग्रन्थ उपलब्ध है।
62.	रतिरहस्यम्	कोक्कोक	7–10वी शताब्दी	यह ग्रन्थ वर्तमान में चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी से प्रकाशित है ।
63.	रतिशास्त्र	नागार्जुन	7–10 वीं शताब्दी	यह ग्रन्थ नाग प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित है।
64.	रतिसर्वस्व	अज्ञात	अज्ञात	यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है ।
65.	रतिसार	माधवदेव नरेन्द्र	अज्ञात	यह अप्रकाशित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख Government Oriental Manuscript Library, Kerala University,Thiruvananthapuramके मातृकालय में क्रम संख्या C-O-L-No-2521B- पर किया गया है ।
66.	रसिकबोधिनी	कामराज दीक्षित	अज्ञात	इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख Government Oriental Manuscript Library, Chennai के मातृकालय में किया गया है ।

67.	रसिकरंजन	वैद्यनाथ दीक्षित	अज्ञात	इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख Government Oriental Manuscript Library, Chennai के मातृकालय में किया गया है ।
68.	रसिकसर्वस्व	जगद्धर	अज्ञात	इस ग्रन्थ का केवल उल्लेख प्राप्त होता है, वर्तमान समय में यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है।
69.	वात्स्यायनसूत्रसार	आचार्य क्षेमेन्द्र	अज्ञात	इस ग्रन्थ का केवल उल्लेख प्राप्त होता है, वर्तमान समय में यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है।
70.	विटवृत्त	सौमदत्तिन	अज्ञात	इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख Government Oriental Manuscript Library, Chennai के मातृकालय में किया गया है ।
71.	वेश्यांगनाकल्पद्रुम	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख एम. कृष्णमाचारी ने History of Classical Sanskrit Literature में पृष्ठ सं. 894 पर किया है ।
72.	शयनरहस्य	भगीरथ	अज्ञात	इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख एसियाटिक सोसाइटी, कोलकाता के मातृकागार में क्रम संख्या Acc- No-8240 पर किया गया है ।
73.	श्रृंगारकन्दुक	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख एम. कृष्णमाचारी ने History of Classical Sanskrit Literature में पृष्ठ सं. 895 पर किया है ।
74.	श्रृंगारकुतूहल	अज्ञात	अज्ञात	इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख जीम व्तपें State Museum, Bhubaneshawar, esa S-No- 189] Cat- No-L/81(इ) पर किया गया है।
75.	श्रृंगाररसप्रबन्धदीपिका अथवा श्रृंगार दीपिका	कुमार हरिहर नामांक	१४वीं शताब्दी	यह ग्रन्थ चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से वर्तमान समय में प्रकाशित है ।
76.	श्रृंगारमंजरी	शाहराज	1684–1710 ई.	इस ग्रन्थ का उल्लेख A Descriptive Catalogue of the Sanakrit Manuscripts in the Tanjore Maharaja Serfoji*s Sarasvati Mahal Library, Tanjore,Vol-XVI, p- 7365 में किया गया है।
77.	सदर्पकन्दर्प	पं. भवानन्द ठक्कुर	अज्ञात	इस ग्रन्थ का उल्लेख एम. कृष्णमाचारी ने History of Classical Sanskrit Literature में पृष्ठ सं. 896 पर किया है।

78.	स्मरदीपिका या रतितन्त्रप्रदीपिका	मीननाथ या रुद्र	15–16वीं शताब्दी	यह ग्रन्थ चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से वर्तमान समय में प्रकाशित है ।
79.	स्मररहस्यपंचरत्न	पं. रेवाणाराध्य	अज्ञात	इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का उल्लेख एसियाटिक सोसाइटी, कोलकाता के मातृकागार में क्रमसंख्या Acc- No- 8260 पर किया गया है ।
80.	स्मरशास्त्र	कश्मीर नरेश वसुनन्द		इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि वर्तमान समय में अनुपलब्ध है।

नोट – सभी ग्रन्थों का वर्णन अकारादिक्रम से दिया गया है। उल्लेख किये गये ग्रन्थों के अतिरिक्त, और भी बहुत से कामशास्त्र के ग्रन्थों की पाण्डुलिपि किसी न किसी ग्रन्थालय में होंगी । यह एक स्वतंत्र शोध का विषय है ।

शोध-छात्र
संस्कृत अध्ययन शाला
जे.एन.यू, नई दिल्ली-110067

सन्दर्भ -

1. प्रजापतिर्हि प्रजारू सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्ध नं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच । (कामसूत्र, 1.1.5)

2. ततोऽध्यायसहस्त्रणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् । यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चौवाभिवर्णितः ।।
त्रिवर्ग इति विख्यातो गण एष स्वयम्भुवा । चतुर्थो मोक्ष इत्येव पृथगर्थः पृथग्गुणः ।। (महाभारत, शान्तिपर्व, 5929-30)

3. पुराणं सर्वशास्त्रणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतं । पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघः ।।
त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम् ।। (मत्स्यपुराण, 53.3-4)

4. तस्यैकदेशिकं मनुरू स्वायम्भुवो धर्माधिकारिकं पृथक चकार (कामसूत्र,1.1.6)

5. बृहस्पतिरर्थाधिकारिकम् (कामसूत्र, 1.1.7)

6. महादेवानुचरश्च नन्दी सहेस्रणाध्यायानां पृथक कामसूत्रम् प्रोवाच (कामसूत्र,1.1.8)

7. शिवपुराण, शतरुद्र संहिता, ६-७

8. तथा हि श्रूयते- दिव्यं वर्षसहस्त्रमुमया सह सुरतसुखमनुभवति महादेवे वासगृहद्वारगतो नन्दी कामसूत्रं प्रोवाच इति। (कामसूत्र, जयमंगला टीका, 1.1.8)

9. संक्षेपादिति नन्दिकेश्वरमतात्तत्त्वं किमप्युद्धृतं गोणीपुत्रकभाषितोऽयमधुना संक्षिप्यते विस्तरः । (रतिरहस्यम्, 2.5)

10. नाभियन्त्रमिदं प्रोक्तं नन्दिना सर्ववेदिना । (रसरत्नसमुच्चय, पूर्वखण्ड, 9.26)

11. तदेव तु पंचभिरव्यायशतैरौद्दालकिरू श्वेतकेतुरू संचिक्षेप (कामसूत्र,1.1.9)

12. महाभारत, सभापर्व, 3.21-39

13. छान्दोग्योपनिषद्, 6.1.1

14. तदेव तु पुनरध्येर्धेनाधयायशतेन साधारण-साम्प्रयोगिक- कन्यासंप्रयुक्तक- भार्याधिकारिक- पारदारिक- वैशिक- औपनिषदिकैरू सप्तभिरधिकरनैबाभ्रव्यरू पांचालरू संचिक्षेप । (कामसूत्र, शास्त्रसंग्रहप्रकरणं, 10)

15. इति प्रबाभ्रव्य उवाच च क्रमं, क्रम प्रवक्ता प्रथमं शशंस च । (ऋक्प्रातिशाख्यम्, क्रमहेतु पटल 65)

16. हरिवंश पुराण,1.23.21

17. पांचालेन क्रमः प्राप्तस्तमाद् भूतात् सनातनात् । बाभ्रव्यगोत्रः स बभौ प्रथमं क्रमपारगः ।।
नारायणाद् वरं लब्ध्वा प्राप्य योगमनुत्तमम् । क्रमं प्रणीय शिक्षां च प्रणयित्वा स गालवः ।।
(महाभारत, शान्तिपर्व, 342.103-104)

18. पंचालसम्बन्धाच्च प्रवर्तिता। पंचालेन महर्षिणा ऋग्वेदे चतुःषष्टिर्निगदिता।
बाभ्रेव्येणापि पांचालेन स्वकृते साम्प्रयोगिकेऽधिकरण आलिङ्गनादय उक्ताः। (कामसूत्र, 2.2.3)
19. पंचाल सम्बन्धाच्च बह्वृचौरेषा पूजार्थं संज्ञा प्रवर्तिता इत्येके। (कामसूत्र, 2.2.3)
20. तस्य षष्ठं वैशिकमधिकरणं पाटलिपुत्रिकाणां गणिकानां नियोगाद् दत्तकः पृथक् चकार। (1.1.11)
21. दामोदर गुप्त, कुट्टनीमतं, श्लोक सं. 22
22. संकर्षण त्रिपाठी, कामसूत्रकालीन समाज एवं संस्कृति, पृ. सं. 14
23. तत्प्रसंगात् चारायणः साधारणमधिकरणं पृथक् प्रोवाच। (कामसूत्र, 1.1.12)
24. तृणमिति दीर्घचारायणाः। (अर्थशास्त्र 5.93.4)
25. सुवर्णनाभः साम्प्रयोगिकम्। (कामसूत्र, 1.1.12)
26. रीतिनिर्णयं सुवर्णनाभ। (काव्यमीमांसा, 1.2)
27. औदुम्बरश्चमसः सुवर्णनाभः प्रशास्तः। (आपस्तम्ब-धर्मसूत्र, 2.19.3)
28. घोटकमुखः कन्यासम्प्रयुक्तकम्। (कामसूत्र, 1.1.12)
29. संकर्षण त्रिपाठी, कामसूत्रकालीन समाज एवं संस्कृति, पृ. सं. 15
30. अर्थशास्त्र, 4.93.5।
31. गोनर्दीयो भार्याधिकारकम्। (कामसूत्र, 1.1.12)
32. संकर्षण त्रिपाठी, कामसूत्रकालीन समाज एवं संस्कृति, पृ. सं.17
33. गोणिकापुत्रः पारदारिकम्। (कामसूत्र, 1.1.12)
34. कुचुमार औपनिषदिकम्। (वहीं)
35. श्रीमद्भागवत् पुराण, 9.14। विष्णुपुराण, 4.1
36. मृद्वीकायाः समुद्भूतो यो रसोऽमृत्तसन्नभः। कादम्बर इति ख्यात् उदन्जेः बोधकारकः।।(कादम्बरस्वीकरणकारिका, 1)
37. जातौ च सत्त्वे वयसि प्रमाणे प्रधानमाहुः प्रकृतिं वधुनां। तथैव तासामुपचारमूचुः कर्णीसुताद्याः कृतिनो विधेयम्।। (रतिरहस्य, ४.२१)
38. कर्णीसुतकथेन संनिहित विपुलाचला शशेपगता च। (कादम्बरी, विन्ध्याटवी वर्णन)
39. तदेव तु पुनरध्येर्धेनाधयायशतेन साधारण-साम्प्रयोगिक-कन्यासंप्रयुक्तक-भार्याधिकारिक-पारदारिक-वैशिक-औपनिषदिकै : सप्तभिरधिकरनैबाभ्रव्यरू पांचालरू संचिक्षे (कामसूत्र, 1.1.10)
40. कामकुन्जलता, बाभ्रव्यकारिका, पृ. सं. XIX
41. द्वापंचाशतमब्दान्क्ष्मां द्वौ च मासौ तदात्मजः। अपासीद्वसुनन्दाख्यः प्रख्यात स्मरशास्त्रकृत्।।(राजतरंगिणी, 1.337)
42. संकर्षण त्रिपाठी, कामसूत्रकालीन समाज एवं संस्कृति, पृ.सं.
43. तत्कुट्टिनीमतमुदीक्ष्य वरांगनानां कान्ते विधेयमबलाचरितं प्रदिष्टम्। स्त्रीसौख्यलिंगमवधारयतां नराणा चोक्तं स्वरागजननं सुतरामिहैव।। (नागरसर्वस्यम, 37.16)
विविधविधिविधानं देवतामन्त्रपूजादयितुयुवतिशिक्षा सत्प्रतिग्राहकाणा।
प्रथमुदितमस्मिन् वीक्ष्यसिद्धैकवीर परमरतिरहस्यं शांकरं कामतन्त्रम् । (वहीं, 38.16)
44. ज्योतिर्मित्र आचार्य, कामशास्त्र अन्तर्गत् वाजीकरण विज्ञान, पृ. सं. 21
45. उद्भूतः पारिभद्रादमरनरफणिप्रेयसीगीतकीर्त्तिः। नप्ता तेजोकनाम्नस्सदसि बहुमतः पण्डितानां कवीनाम् ।।
एतच्छ्रीगद्यविद्याधरकवितनयः कामकेलिरहस्यं। कोक्कोकः कामुकानाङ्किमपि रतिकरं व्याकरोत्कौतुकेन् ।।
(रतिरहस्यम,15.130)
46. पंचसायक, 1.3, 3.1, 4.27।
47. सर्वशास्त्रार्थवक्तेण जयदेवेन धीमता। मंजरी रतिशास्त्रस्य कृता नीता समाप्तताम्।। (रतिमंजरी, श्लोक सं.60)
48. रतिशास्त्रं कामशास्त्रं तस्य सारे समाहतम्। सुप्रबन्धं सुसंक्षिप्तं जयदेवेन भण्यते।। (वहीं, 2)
49. उक्ता गुणपताकायामवस्थासु क्रिया च या। तामपि न्यासंवित्तिसिद्धत्वादाद्रियामहे।। (4.3)
उक्तं गुणपताकायामनुरागेङ्गितं च यत्। अजातजातभोगानां तत्साधारणमुच्यते।। (4.25)
50. अतो गुणपताकाख्यामतमत्रनुकार्यते। श्लथा मध्या घना चेति त्रिविधासुसुस्त्र्यों मतः।। (2.36)

51. गणिकादारिका वेश्याविशेषा इति गुणपताकायामृक्तम् । (पृ. सं. 102)
52. नागार्जुनेन कथिता योगा बहवश्चतुर्दशद्रव्यैः । दृष्टफलान् प्रकृतानिह योगांस्तत्रोद्धरिष्यामः ।। (15.118)
53. इति श्रीकश्मीर महामण्डलमहीमण्डनराजजयापीडमन्त्रिप्रव दामोदरगुप्त-कविविरचितं कुट्टनीमतं समाप्तं ।(कुनीमतं, पुष्पिका)
54. सदामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम् । कविं कविं बलिरिव धुर्यं धीसचिवं व्यधात् ।। (राजतरंगिणी, 4.496)
55. अनंगरंग, पृ. सं. Vii ।
56. वात्स्यायनादि तन्त्रेभ्यः सारमुद्धृत्य भूपतिः । कुम्भकर्णो विनिर्माति कामराजरतेःशतम् ।।
कामराजरतेःसारं यो नायकः पठेत् । प्रौढ़ांगनानां सप्राण समो भवेत् ।। (कामराजरतिसार, श्लोक. सं. 2-3)
57. ज्योतिर्मित्र आचार्य, कामशास्त्र अन्तर्गत वाजीकरण विज्ञान, पृ. सं. 20
58. वहीं, पृ. सं. 21
59. वहीं
60. वहीं
61. वहीं
62. वहीं
63. वहीं
64. नागरसर्वस्वम्, पद्मश्री, पृ. सं. 9
65. संकर्षण त्रिपाठी, कामसूत्रकालीन समाज एवं संस्कृति , पृ. सं.27
66. काम-कला, पृ. सं. 6-7

धर्म और विज्ञान का अंतर्विरोध

अनिल कुमार तिवारी

प्रस्तावना - शाश्वत मूल्य ही धर्म का आधार होते हैं। मूल्यों में अपरिवर्तनशीलता ही धर्म की पहचान को सुस्थिर करती है। विशिष्ट दैवी सत्ता की अवधारणा, विशिष्ट प्रतीक-चिह्नों एवं धर्म-ग्रन्थों की स्वीकृति, कुछ व्यक्तियों और स्थानों के प्रति श्रद्धा का भाव, जन्म-मृत्यु और विवाह से जुड़े विशिष्ट कर्मकाण्ड आदि कुछ ऐसे धार्मिक मूल्य हैं जिनका अनुपालन ही किसी व्यक्ति को धर्म-विशेष का सदस्य संसूचित करता है। इन मूल्यों के संरक्षण एवं त्रुटिरहित हस्तांतरण के लिए अनेक संस्थाओं का गठन किया जाता है। इस तरह धर्म एक संस्था का रूप लेता है। स्पष्ट है कि यहाँ धर्म का अर्थ वही है जिस अर्थ में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी आदि धर्म कहे जाते हैं। इनके केंद्र में कुछ अपरिवर्तनशील मूल्य ही हैं, मूल्यों में परिवर्तन का कोई भी सुझाव धर्म की पहचान को या तो बदल देता है या किसी नए धर्म के उदय का कारण बनता है। सार यह कि धार्मिक मूल्य या सत्य अपरिवर्तनशील होते हैं, अन्तिम होते हैं।

धार्मिक सत्य के विपरीत वैज्ञानिक सत्य अनन्तिम होते हैं, परिवर्तनशील होते हैं। विज्ञान का अर्थ भी साधारण लेना चाहिए, जगत का ऐसा अध्ययन जिसमें परिकल्पनाओं की स्वीकृति का एकमात्र आधार इंद्रियानुभवजनित प्रामाणिकता है। अनुभव से बारंबार समर्थित परिकल्पना सिद्धान्त का रूप धारण करती है, वैज्ञानिक सत्य बन जाती है। परन्तु जब कोई नवीन अनुभव सिद्धान्त के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करता है, तब या तो सिद्धान्त का परित्याग कर दिया जाता है या उसमें संशोधन करके अनुभवसंगत बना दिया जाता है। इस प्रकार विज्ञान का विकास अंतहीन लक्ष्य की ओर होता रहता है। वैज्ञानिक प्रगति का मूलमंत्र है किसी सत्य को अन्तिम न मानना। किसी बेहतर सत्य के लिए वैज्ञानिक के दरवाजे हमेशा खुले रहते हैं। जब धर्म और विज्ञान के अंतर्विरोध की बात की जाती है तो उसके मूल में उनकी सत्य से संबन्धित यही धारणा होती है, धर्म का सच अन्तिम होता है, परिवर्तन की संभावना से परे होता है जबकि विज्ञान का सच तदर्थ होता है, बेहतर सच के आने पर इसको जाना ही होता है। और वैज्ञानिक सत्य के बेहतरी की एक ही कसौटी है अनुभव की अधिक सुसंगत व्याख्या। धार्मिक सत्य के साथ 'बेहतर' विशेषण बेमानी है, अधार्मिकता है।

प्रस्तुत पत्र के विषय को इस बात तक सीमित किया गया है कि क्या सत्य की अंतिमता की अवधारणा ही धार्मिक कट्टरता को जन्म देती है और इसी कारण से कट्टरपंथी आधुनिकता, जो वैज्ञानिक प्रगति की देन है, का विरोध करते हैं। किसी धर्म-विशेष में स्वीकृत सत्य को सार्वभौम सत्य मानना और उसके ग्रहण-अनुकरण को ही मानव-कल्याण का एकमात्र उपाय बताना ही धार्मिक कट्टरता है। धर्म-ग्रन्थों का अभिधात्मक अर्थ-ग्रहण ऐसी विचारधारा को पोषित करता है। पत्र के प्रारम्भ में धर्म और विज्ञान के बीच

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

प्रचलित अवधारणाओं का सर्वेक्षण किया गया है और इस बात की गवेषणा की गयी है कि इनके बीच विरोध का संभावित कारण उनकी सत्य के प्रति अवधारणा हो सकती है। इसके बाद धार्मिक सत्य की प्रकृति और धार्मिक कट्टरता के स्वरूप को समझते हुए उनके बीच संबंध की गवेषणा की गयी है। यह तर्क किया गया है कि धार्मिक कट्टरता समग्र रूप से आधुनिकता की विरोधी न होकर चयनित बिन्दुओं पर मतभेद रखती है। इस चुनावगत मतभेद का आधार वही है जो धर्मग्रंथों के अर्थ समझने में भी चुनावगत दृष्टि के लिए जिम्मेदार है।

भौतिक विज्ञानी और 1923 के नोबल पुरस्कार विजेता डा. रॉबर्ट एंड्रूस मिलिकन ने धर्म और विज्ञान के संबंध पर एक संकल्प पत्र तैयार किया और उस पर 1 जून 1923 को वैज्ञानिकों, धार्मिक नेताओं, सरकारी अधिकारियों और कुछ प्रमुख व्यक्तियों सहित 35 लोगों का हस्ताक्षर लिया। यह प्रयास उस समय के राजनैतिक रूप से एक ज्वलंत मुद्दे पर बुद्धिजीवियों का अभिमत प्रकट करने के लिए था। पत्र का मजमून कुछ इस प्रकार है -

"We, the undersigned, deeply regret that in recent controversies there has been a tendency to present science and religion as irreconcilable and antagonistic domains of thought, for in fact they meet distinct human needs, and in the rounding out of human life they supplement rather than displace or oppose each other- The purpose of science is to develop, without prejudice or preconception of any kind, a knowledge of the facts, the laws and the processes of nature- The even more important task of religion, on the other hand, is to develop the consciences, the ideals, and the aspirations of mankind (emphasis original) Each of these two activities represents a deep and vital function of the soul of man, and both are necessary for the life, the progress and the happiness of the human race- It is a sublime conception of God which is furnished by science] and one wholly consonant with the highest ideals of religion] when it represents Him as revealing Himself through countless ages in the development of the earth as an abode for man and in the agelong inbreathing of life into its constiteunt matter] culminating in man with his spiritual nature and all his Godlike powers."[1]

उपर्युक्त पत्र में धर्म और विज्ञान को हमारी दो आवश्यकताओं का पूरक माना गया है। धर्म जहाँ हमारी आंतरिक चेतना को समृद्ध करता है वहीं विज्ञान जगत के तथ्यों एवं प्राकृतिक नियमों से हमारा परिचय कराता है और सुविधापूर्ण जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है। हमें दोनों की आवश्यकता है, पहला दूसरे का विकल्प नहीं हो सकता है। परंतु मनुष्य की जिज्ञासु प्रवृत्ति को उस विधा की तलाश है जो प्रकृति के वैविध्य और मानव मूल्यों को एकीकृत रूप से समग्रता में प्रस्तुत कर सके। धर्म और विज्ञान हमारी इसी यात्रा के पड़ाव लगते हैं। विवाद यह है कि ये दोनों पड़ाव हैं या मंजिल। एक के अनुयायी दूसरे को पड़ाव और स्वयं को मंजिल मानते हैं। रॉबर्ट मिलिकन का उपर्युक्त प्रस्ताव इसी विवाद के समाधान का एक प्रयास प्रतीत होता है। उनके अनुसार धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के पूरक एवं हमारे जीवन के लिए अनिवार्य हैं, इनमें विरोध का निदर्शन खेदजनक है। विश्लेषणात्मक दर्शन के प्रसिद्ध ब्रिटिश चिंतक बर्टेण्ड रसेल (1935) भी यह मानते हैं कि धर्म और विज्ञान हमारे सामाजिक जीवन के दो पहलू हैं। इनमें धर्म का अस्तित्व तो मानव जीवन के प्रारम्भ से माना जाता है, परंतु जिस अर्थ में इसके विज्ञान से विरोध की बात की जाती है उस विज्ञान की शुरुआत ईसा के बाद 16वीं शताब्दी से हुई। यह विज्ञान अपने जन्म से ही परंपरागत धर्म के विरुद्ध खड़ा माना जाता है और तब से आज तक संघर्ष देखा जा सकता है। कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न इस प्रकार उठाये गए। क्या विज्ञान ने धर्म को

अप्रासंगिक बना दिया है? क्या वैज्ञानिक अनुसन्धानों ने धार्मिक मान्यताओं को निराधार ठहरा दिया है? क्या डार्विन के विकास के सिद्धान्त ने विश्व को ईश्वरीय सृष्टि न मानने पर अंतिम निर्णय दे दिया है? क्या जीव-जंतुओं का जीवन रासायनिक क्रिया मात्र है? आदि उपर्युक्त प्रश्नों के सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि की चर्चा करने के पूर्व रसेल के समकालीन चिंतक और उनके मित्र अल्फ्रेड नार्थ व्हाइटहेड के मत का उद्धरण देखना उचित है जहां वे यह कहते दिखाई देते हैं कि हमारे भविष्य का स्वरूप इस बात पर निर्भर करेगा कि हमारी आज की पीढ़ी धर्म और विज्ञान के बीच संबंध के बारे में क्या निर्णय लेती है। उद्धरण शायद यह संकेत करता है कि धर्म और विज्ञान के बीच एक नैसर्गिक विरोध की बात करना उचित नहीं है। वास्तव में, इनके बीच संबंध के स्वरूप के बारे में हमें तय करना है और इसी निर्णय पर हमारा भविष्य आधारित होगा।

धर्म और विज्ञान का संबंध

धर्म और विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में तीन प्रकार के सम्बन्धों की चर्चा की जाती है :-

(1) धर्म का विज्ञान से सीधा विरोध है क्योंकि विज्ञान अपनी कसौटी पर धर्म को निराधार ठहराता है। कुछ विद्वान कहते हैं कि इस बात का रत्तीभर प्रमाण नहीं है कि यह जगत उद्देश्यपूर्ण है। इस बात का भी कोई साक्ष्य नहीं है कि कोई कृपालु दैवी सत्ता हमारी परवाह करती है, हमारे भविष्य की चिंता करती है। सुरक्षा, परवाह और चिंता के लिए हम अपने परिवार, संबंधियों और समाज की तरफ ही देख सकते हैं। इस विस्तृत ब्रह्मांड में जीवन महज एक आकस्मिक घटना प्रतीत होता है, यह जगत निरुद्देश्य है, किसी बड़ी योजना का परिणाम नहीं। इस तरह के विचारों ने इतिहास में धर्म और विज्ञान के बीच अनेक टकराव पैदा किए हैं। इतालवी वैज्ञानिक गैलीलियो को 17वीं शताब्दी में जेल भेजा गया और उन्हें जीवन के अंतिम वर्षों में एकांतवास करने पर मजबूर किया गया क्योंकि उन्होंने बाइबिल की इस अवधारणा को नहीं माना कि पृथ्वी ब्रह्मांड का केंद्र है। रसेल ने गैलीलियो के बारे में एक अन्य रोचक तथ्य का उल्लेख किया है। पीसा में अपने अकादमिक समय के दौरान वे कभी-कभी पीसा की मीनार से अपने धार्मिक मित्रों के रास्ते में शीशे के बड़े और छोटे टुकड़े एक साथ गिराया करते थे। इसके पीछे उनका उद्देश्य यह दिखाना था कि किसी वस्तु का वजन उसके नीचे गिरने की गति के पीछे कारण नहीं होता। उनके मित्र अरस्तू की इस बात को धार्मिक विश्वास के साथ मानते थे कि नीचे गिराने पर भारी वस्तुएं हल्की वस्तुओं की अपेक्षा तेजी से गिरती हैं। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में डार्विन का सिद्धान्त पढ़ाने वाले प्रोफेसरों को कानून और हिंसा का शिकार बनाया गया। ये केवल ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं, आज 21वीं शताब्दी में भी हम ऐसा ही दृश्य देखते हैं। धर्म और उसके प्रतीकों पर नकारात्मक अभिमत व्यक्त करने पर आज भी इन घटनाओं की पुनरावृति सहज देखी जा सकती है। इसका मूल कारण धार्मिक प्रस्थापनाओं का इंद्रियजन्य साक्ष्य पर खरा न उतरना है। और विज्ञान के लिए केवल यही प्रमाण मायने रखते हैं। परंतु दुविधा यह है कि इंद्रियानुभव जिस प्रकार धार्मिक सत्यों की स्थापना में असफल होता है उसी प्रकार यह उसके निराकरण में भी नाकाम कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि यह सत्य है कि ईश्वर की सत्ता इंद्रियजन्य साक्ष्य से ङ्कमाणित नहीं होती, तो यह भी कमतर नहीं कि उसकी सत्ता के निराकरण का भी कोई इंद्रियजन्य प्रमाण नहीं मिलता। न सत्यापन, न मिथ्याकरण। कार्ल प. पर कहते हैं कि ऐसी बातों पर हमें ध्यान देने की जरूरत ही नहीं जिनका न तो सत्यापन हो सकता है और न मिथ्याकरण। इससे भी ज्यादा उत्साह से धार्मिक कहते हैं कि यदि विज्ञान की बातें धर्मग्रंथों में कही बातों से मेल नहीं खाती, तो उनका कोई मोल नहीं, त्याज्य हैं। धार्मिकों का यह भी मानना है कि आधुनिक जीवन में निराशा, अवसाद, निरर्थकता की भावना आदि विज्ञान के सत्यों पर अतिशय विश्वास का परिणाम है।

(2) दूसरा अभिमत यह है कि धर्म और विज्ञान के क्षेत्र सर्वथा अलग हैं, धर्म लोकेतर जगत की बात करता है और विज्ञान इस भौतिक लोक की जहां हम जन्म लेते हैं, जीते हैं और मृत्यु को प्राप्त करते हैं, इसलिए इनमें किसी विरोध की बात करना ही निराधार है। संयुक्त राज्य अमेरिका में धर्म और विज्ञान के पृथक्करण का एक लंबा न्यायिक इतिहास है। 1925 का कपि-परीक्षण (Monkey Trial) नामक एक मुकदमा है जिसमें डार्विन के विकास के सिद्धान्त को धार्मिकों ने निशाना बनाया। चूंकि डार्विन का सिद्धान्त इस बात का समर्थन करता है कि मानव और बंदरों का उद्‌गम एक ही है और वे एक ही विकास प्रक्रिया के परिणाम हैं। इसी रूपक के नाम से यह मुकदमा मंकी ट्रायल कहा जाता है। इसमें टिनेस्सी राज्य के एक हाईस्कूल अध्यापक को डार्विन का सिद्धान्त पढ़ाने के कारण कोर्ट में लाया गया। राज्य का कानून धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध किसी बात को पढ़ाने की इजाजत नहीं देता था और डार्विन का सिद्धान्त सृष्टि को दैवी रचना मानने के विरुद्ध है। हालांकि मुकदमे का निर्णय विलियम जेनिङ्ग्स ब्रायन के पक्ष में हुआ जिसमें धार्मिकों की बात को माना गया। परंतु इसके बाद जनसाधारण में इतना विरोध हुआ कि राज्य के कानून पर धर्म का प्रभाव समाप्त करने के लिए अनेक निर्णय लिए गए। धर्म को एक व्यक्तिगत मामला माना गया और राज्य को धर्मनिरपेक्ष रहने के बारे में निर्णय लिए गए। इस तरह का वर्गीकरण वास्तव में धर्म और विज्ञान के क्षेत्र के अलग होने की पूर्व मान्यता पर आधारित प्रतीत होता है।

(3) तीसरा मत यह है कि धर्म और विज्ञान हमारे सामाजिक जीवन के ही दो पहलू हैं, इसलिए इनमें संघर्ष और संवाद का नैसर्गिक कारण विद्यमान है, दोनों एक ही जगत में क्रियाशील हैं इसलिए उनमें आदान-प्रदान की स्वाभाविक स्थिति है। पूर्व में उद्धृत रसेल और व्हाइटहेड के मतों की प्रासंगिकता इस तीसरे संबंध के परिप्रेक्ष्य में स्पष्टतः देखी जा सकती है। धर्म और विज्ञान के बीच संघर्ष की स्थिति इसलिए बनती है कि दोनों एक ही सामाजिक स्तर पर काम करते हैं। रसेल के अनुसार संघर्ष की संभावना तभी बनती है जब धर्म कुछ ऐसी बात करता है जिसे विज्ञान अपने तरीके से अप्रमाणित कर देता है। यदि धर्म कुछ ऐसा कहता है जिसे विज्ञान अप्रमाणित न कर पाये, तो इनमें कोई अंतर्विरोध नहीं हो सकता। धर्म और विज्ञान के बीच संघर्ष का बौद्धिक कारण यह है कि धर्म आनुभविक जगत के बारे में कुछ प्रस्थापनाएं करता है। उदाहरण के लिए यह संसार ईश्वर की रचना है जिसे उसने छः दिनों में सृजित किया है। वैज्ञानिक अनुसंधान यह दर्शाते हैं कि संसार का वर्तमान स्वरूप करोड़ों वर्षों के विकास का परिणाम है। सर्वप्रथम इस प्राकल्पना के विरुद्ध हिंसक धार्मिक प्रतिक्रिया हुई और बाद में कुछ धर्मज्ञों ने 'दिन' का अर्थ भिन्न मानकर धार्मिक प्रस्थापना को वैज्ञानिक प्राकल्पना से सुसंगत ठहराने का प्रयास किया। भारतीय परंपरा में भी 'समय' की भिन्न-भिन्न धारणा की गयी है, ब्रह्मा का एक दिन मनुष्यों के कई वर्ष समाहित करता है। यह भी तर्क किया गया कि नैतिकता का आधार धार्मिक प्रस्थापनाएं हैं, इनके विरुद्ध आवाज उठाने या इन्हें गलत मानने से नैतिकता आधारित समाज की संरचना ही ध्वस्त हो जाएगी। इस तरह जो मध्यमार्गी हैं वे धर्म और विज्ञान दोनों को मानव जीवन के लिए प्रासंगिक मानते हैं।

19वीं सदी के कुछ अमेरिकी प्रसारवादी प्रोटेस्टेंटों का मानना था कि ईश्वर ने अपने अस्तित्व का उदघाटन दो प्रकार से किया, एक बाइबिल के माध्यम से और दूसरा प्रकृति के माध्यम से। दुविधा तब होती है जब धर्म ग्रन्थों का अभिधात्मक अर्थ लिया जाता है और उन्हें ऐतिहासिक विवरण की तरह माना जाता है। कट्टरपंथी विचार रखने वाले इसी अवधारणा से प्रभावित लगते है। वास्तव में, धर्म और विज्ञान के बीच अंतर्विरोध का मुख्य कारण उनकी एक ही जगत के बारे में विभिन्न धारणाओं का प्रतिपादन है। यदि जागतिक सत्य एक है तो उसके बारे में धर्म और विज्ञान परस्पर विरोधी बातें क्यों करते हैं?

धर्म और विज्ञान में अंतर्विरोध का कारण

धर्म और विज्ञान के बीच अंतर्विरोध का परंपरागत कारण उनकी जगत संबंधी तत्त्वमीमांसीय और ज्ञानमीमांसीय अवधारणा है। धर्म जिस सत्य की प्रस्थापना करता है विज्ञान उसे आनुभविक साक्ष्य प्रस्तुत कर चुनौती देता है। जैविक और भौतिक संरचना के संबंध में धर्म आधारित अनेक विश्वासों का वैज्ञानिक निराकरण विज्ञान के पक्ष को सुद्रढ़ करता दिखाई देता है। उदाहरण के लिए एक धार्मिक विश्वास था, और कहीं-कहीं अभी भी है, कि नवजात शिशु को अकेला छोड़ देने पर एक अद्रश्य बुरी आत्मा उसका गला दबाकर मार देती है। परंतु आज विज्ञान ने हमें इसका भौतिक कारण बता दिया है। जंग लगे चाकू या ब्लेड से नाल काटने पर टिटनस हो सकता है जिसके प्रभाव में श्वास नली अवरुद्ध हो सकती है और बच्चे की मृत्यु हो सकती है। इसी प्रकार अनेक रोगों और महामारियों को दैवी प्रकोप माना जाता था जिसके आज भौतिक कारण पता हैं और उनका चिकित्सीय निराकरण संभव है। प्रकृति के विभिन्न रूपों में दैवी सत्ता का आरोपण या ग्रह नक्षत्रों की गति को दैवी विधान मानना वैज्ञानिक दृष्टि से अविश्वसनीय प्रतीत होता है। अब यदि धर्म और विज्ञान सांसारिक सत्य के बारे में प्रतियोगी धारणायें हैं, तो इनमें एक का विकास स्वाभाविक रूप से दूसरे को क्षीण करता है। विज्ञान के विकास ने हमारे इस विश्वास को संदिग्ध बना दिया कि आध्यात्मिक शक्तियाँ बिना प्रकृति के नियम माने प्राकृतिक जगत को प्रभावित करती हैं। परंतु यह भी सुनने में अजीब लगता है कि हमारी खुशियाँ, हमारे दुख, हमारी यादें, हमारी आकांक्षाएँ, हमारी पहचान और संकल्प की स्वतन्त्रता आदि महज स्नायु-तंत्र और उनके जाल का खेल है, जैसा कि फ्रांसिस क्रिक ने जेम्स वाटसन के साथ डी.एन.ए. का अनुसंधान कर बताया।

शाश्वत मूल्य ही धर्म का आधार होते हैं। मूल्यों में अपरिवर्तनीयता ही धर्म की पहचान को सुस्थिर करती है। विशिष्ट दैवी सत्ता की अवधारणा, विशिष्ट प्रतीक-चिह्नों एवं धर्म-ग्रन्थों की स्वीकृति, कुछ व्यक्तियों और स्थानों के प्रति श्रद्धा का भाव, जन्म-मृत्यु और विवाह से जुड़े विशिष्ट कर्मकाण्ड आदि कुछ ऐसे धार्मिक मूल्य हैं जिनका अनुपालन ही किसी व्यक्ति को धर्म-विशेष का सदस्य संसूचित करता है। इन मूल्यों के संरक्षण एवं त्रुटिरहित हस्तांतरण के लिए अनेक संस्थाओं का गठन किया जाता है। इस तरह धर्म एक संस्था का रूप लेता है। स्पष्ट है कि यहाँ धर्म का अर्थ वही है जिस अर्थ में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी आदि धर्म कहे जाते हैं। इनके केंद्र में कुछ अपरिवर्तनशील मूल्य ही हैं, मूल्यों में परिवर्तन का कोई भी सुझाव धर्म की पहचान को या तो बदल देता है या किसी नए धर्म के उदय का कारण बनता है। सार यह कि धार्मिक मूल्य या सत्य अपरिवर्तनशील होते हैं, अन्तिम होते हैं।

धार्मिक सत्य के विपरीत वैज्ञानिक सत्य अनन्तिम होते हैं, परिवर्तनशील होते हैं। विज्ञान का अर्थ भी साधारण लेना चाहिए : जगत का ऐसा अध्ययन जिसमें परिकल्पनाओं की स्वीकृति का एकमात्र आधार इंद्रियानुभवजनित प्रामाणिकता है। अनुभव से बारंबार समर्थित परिकल्पना सिद्धान्त का रूप धारण करती है, वैज्ञानिक सत्य बन जाती है। परन्तु जब कोई नवीन अनुभव सिद्धान्त के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करता है, तब या तो सिद्धान्त का परित्याग कर दिया जाता है या उसमें संशोधन करके अनुभवसंगत बना दिया जाता है। इस प्रकार विज्ञान का विकास अंतहीन लक्ष्य की ओर होता रहता है। वैज्ञानिक प्रगति का मूलमंत्र है किसी सत्य को अन्तिम न मानना। किसी बेहतर सत्य के लिए वैज्ञानिक के दरवाजे हमेशा खुले रहते हैं। जब धर्म और विज्ञान के अंतर्विरोध की बात की जाती है तो उसके मूल में उनकी सत्य से संबन्धित यही धारणा होती है। धर्म का सच अन्तिम होता है, परिवर्तन की संभावना से परे होता है जबकि विज्ञान का सच तदर्थ होता है, बेहतर सच के आने

पर इसको जाना ही होता है। और वैज्ञानिक सत्य के बेहतरी की एक ही कसौटी है अनुभव की अधिक सुसंगत व्याख्या। धार्मिक सत्य के साथ 'बेहतर' विशेषण बेमानी है, अधार्मिकता है।

धार्मिक सत्य और धार्मिक कट्टरता

स्वामी विवेकानंद ने संस्थागत धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा कि प्रत्येक धर्म के तीन पहलू होते हैं : दर्शन, आख्यान और कर्मकाण्ड। धार्मिक मूल्यों की अवधारणा दर्शन में की जाती है, इनके सुगम प्रसार और हस्तांतरण में आख्यानों का योगदान सर्वोत्तम है और धार्मिक मूल्यों या सत्यों के साक्षात्कार में कर्मकांडों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। कोई व्यक्ति किस संस्थागत धर्म से जुड़ा है, इसका निर्धारण उस व्यक्ति की इन तीन पहलुओं के प्रति धारणा और व्यवहार को देखकर किया जा सकता है। इन तीनों पहलुओं को हम धार्मिक सत्य कह सकते हैं। धार्मिक सत्य की अपरिवर्तनीयता धार्मिक पहचान के लिए आवश्यक है। इसका यह अर्थ नहीं कि धार्मिक सत्यों की व्याख्या नहीं की जा सकती है। वास्तव में, धार्मिक सत्यों की व्याख्या की संभावना ही एक धर्म के अंदर विभिन्न समूहों की रचना का कारण बनती है, जैसे ईसाइयों में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट, इस्लाम में शिया और सुन्नी, बौद्धों में हीनयान और महायान आदि। परंतु इनमें कुछ समानता अवश्य होती है जिसकी वजह से कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट, शिया-सुन्नी, हीनयान-महायान आदि होते हुये भी ये क्रमशः अपने धर्म ईसाई, मुस्लिम या बौद्ध के अनुयायी कहे जाते हैं। इसका आधार जो भी मूल्य हैं, उन्हें ही मौलिक धार्मिक सत्य कहा जाता है। सच्चे अर्थों में धार्मिक होने के लिए न केवल इन सत्यों का स्वीकरण आवश्यक है बल्कि यह भी मानना जरूरी है कि इन सत्यों का स्वीकरण किसी को भी सच्चा धार्मिक बनाने के लिए आवश्यक है। धर्म का संस्थागत रूप इन विश्वासों की प्रागपेक्षा रखता है। इस प्रकार स्वयं के धर्म में अधिष्ठित रहना समझा जा सकता है। चूंकि विश्व में अनेक संस्थागत धर्म पाये जाते हैं और सूचना और संचार क्रांति के कारण परस्पर आदान-प्रदान की स्थिति है, ऐसे में स्वयं के धर्म में अधिष्ठित रहते हुये अन्य धर्म के बारे में क्या धारणा की जाती है यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है। दूसरे धर्मों के बारे में धारणा का सीधा संबंध स्वयं के धार्मिक मूल्यों की समझ पर आधारित होता है। जैसा कि कहा गया कि धार्मिक सत्य को अंतिम मानना हमारी धार्मिक भावना की संतुष्टि के लिए आवश्यक है। अब इस धारणा के साथ यदि अन्य धर्मों को देखा जाय और यदि उनमें स्वीकृत सत्यों की हमारी समझ अपने और अन्य के धर्म में विरोध दर्शाती है, तो समस्या का उदय होता है। अपने धर्म में स्वीकृत सत्य को सार्वभौम सत्य मानना और उसके ग्रहण-अनुकरण को ही मानव-कल्याण का एकमात्र उपाय बताना ही धार्मिक कट्टरता है। यह देखना कठिन नहीं है कि धार्मिक कट्टरता का सीधा संबंध धार्मिक सत्य की अंतिमता की अवधारणा से है। परंतु पूर्व में हमने कहा कि धार्मिक सत्य की अंतिमता की अवधारणा एक सच्चे धार्मिक के लिए आवश्यक है। प्रश्न उठता है कि क्या सच्चे धार्मिक और कट्टरवादी धार्मिक में कोई भेद है या धार्मिक सत्य को अंतिम मानने की अवधारणागत समानता के कारण दोनों समान हैं। इसके उत्तर के लिए धार्मिक कट्टरवाद (religious fundamentalism) के विभिन्न स्वरूपों पर संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है।

धार्मिक कट्टरवाद को चार प्रकार का माना जा सकता है : (1) विरागी कट्टरवाद (ascetic fundamentalism), (2) प्रसारवादी कट्टरवाद (evangelical fundamentalism), (3) संत्रासवादी कट्टरवाद (terrorist fundamentalism), और राष्ट्रवादी कट्टरवाद (nationalist fundamentalism)। विरागी कट्टरवादी हम उसे कह सकते हैं जो धार्मिक सत्यों के शब्दशः अनुकरण की न केवल बात करता है बल्कि अपने जीवन को उसके अनुरूप पूरी तौर पर ढालने की कोशिश करता है। इस कोशिश में ऐसा कट्टरवादी स्वयं को कोई ढील नहीं देता है। हिन्दू परंपरा के ''हठवादी'' और ईसाई परंपरा के ''आमिश'' इसके उदाहरण

माने जा सकते हैं। शरीर को बंधन मानते हुए हठवादी अपने शरीर को अनेक तरह से कठिन परिस्थितियों में डालते हैं। आमिश ईसाइयों का विश्वास है कि ईसा की कृपादृष्टि पाने के लिए जिस परिस्थितियों में ईसा पैदा हुए और बढ़े, उसी प्रकार का जीवन जीना होगा। इस प्रकार हठवादी और आमिश आधुनिक संसाधनों से प्रायः दूर सन्यास या ग्रामीण जीवन बिताते हैं। परंतु वे ऐसा केवल स्वयं करते हैं, न दूसरों को बल या छल से ऐसा करने को विवश करते हैं न किसी अन्य के जीवन में हस्तक्षेप करते हैं। दूसरी तरफ प्रसारवादी कट्टरवादी हैं जो छल या प्रलोभन से दूसरे धर्मानुयायियों को अपने धर्म में शामिल करने का हर संभव प्रयास करते हैं। कुछ ईसाई और मुस्लिम मतानुयायी इस तरह की गतिविधि में बड़े उत्साह से भाग लेते हैं। संत्रसवादी कट्टरवाद सबसे बुरा माना जाता है जिसके तहत की गयी हर घटना क्रूरता की नयी परिभाषा बनती है। दुनिया का कोई भी संस्थागत धर्म आज इससे अछूता नहीं लगता है। धर्म के नाम पर हिंसा फैलाने वालों की उपस्थिति प्रायः हर धर्म में पायी जाती है। परंतु इस संबंध में सेमिटिक धर्मों (यहूदी, ईसाई और इस्लाम) का विश्व इतिहास में विशेष उल्लेख होता है। हिन्दू और बौद्ध धर्मों का राष्ट्रवादी भावना से संबंध माना जाता है। इनमें राष्ट्र के नाम पर उग्र विचारों की परंपरा दिखाई देती है खासतौर पर भारत और श्रीलंका में। सभी प्रकार के कट्टरवाद में एक समानता यह है कि ये धार्मिक ग्रन्थों का शब्दशः अर्थ मानते हैं और उन्हें न केवल इतिहास की तरह देखते हैं बल्कि भविष्य के बारे में उद्धृत कथनों को भी प्रामाणिक मानकर चलते हैं।

हम जानते हैं कि उपर्युक्त चारों प्रकार के कट्टरवादी धार्मिक सत्यों को अंतिम मानकर ही आचरण करते हैं। यह भी विदित है कि विश्व की अनेक महान धार्मिक विभूतियाँ ऐसे ही विश्वास की उपज हैं। नैतिकता के सर्वोत्कृष्ट मानदंड इन्हीं सत्यों के अनुकरण में विकसित हुए। परंतु यह भी सत्य है कि धार्मिक मूल्यों के नाम पर भयंकर रक्तपात भी हुआ है। धर्म के नाम पर आतंक की दुर्दांत घटनाएँ आधुनिक समाज के सामने सबसे बड़ी चुनौती हैं। धार्मिक सत्य अंतिम हैं, यह विश्वास शायद हमारी वैचारिक सीमा रेखा खींचता है। वैज्ञानिक दृष्टि किसी सत्य को अंतिम नहीं मानती क्योंकि ज्ञान के वर्तमान स्तर पर सभी प्रेक्षणों की संतोषजनक व्याख्या नहीं की जा सकी है और इसका भी कोई पता नहीं कि भविष्य के प्रेक्षण स्वीकृत सिद्धांतों के समक्ष कोई चुनौती न प्रस्तुत करें। इसके अतिरिक्त मानव ज्ञान की अनुलंघनीय प्राकृतिक सीमा है। इन सब सीमितताओं को ध्यान में रखकर किसी अंतिम सत्य का प्रतिपादन असंभव प्रतीत होता है। परंतु इन्हीं सीमितताओं के पूरक के रूप में धार्मिक सत्यों की अवधारणा की जाती है। ऐसा कहना अनुचित नहीं कि मनुष्य अपनी ज्ञान, शक्ति और स्थिति की सीमा के आधार पर ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी ईश्वर की अवधारणा करता है और इसी के आस-पास अन्य धार्मिक मूल्यों की प्रस्थापना करता है। जिन धर्मों में ईश्वर की ऐसी अवधारणा नहीं मिलती वहाँ भी अपनी सीमितता के आधार पर उच्च्य मूल्यों की प्रस्थापना की गयी है और इन्हें अंतिम माना गया है। परंतु संघर्ष का केंद्र धर्मों की बहुलता से संबन्धित है। जब विभिन्न संस्थागत धर्म ऐसी प्रस्थापना करते हैं जो न केवल विज्ञान में स्वीकृत सत्य से विसंगत होता है बल्कि अन्य संस्थागत धर्मों की प्रस्थापना से भी सुसंगत नहीं होता तब संत्रसवाद या जिसे सामान्य बातचीत में कट्टरवाद या आतंकवाद भी कहा जाता है का जन्म होता है। संत्रसवादी कट्टरवाद निम्नलिखित धारणाओं पर पलता है -

प्रतिक्रियावादी - एक संत्रसवादी कट्टरवादी प्रतिक्रियावादी होता है। उसका विश्वास होता है कि उसके धर्म को अन्य धर्मों से खतरा है, अन्य विधाओं से खतरा है, इतर समझ से खतरा है और इस खतरे से स्वयं खतरनाक होकर ही निपटा जा सकता है।

द्वैतवादी - एक कट्टरवादी द्वैत के जाल में उलझा होता है, जैसे अपने और दूसरे धर्म का द्वैत, पाप-पुण्य का द्वैत, देवता-राक्षस का द्वैत, भगवान-शैतान का द्वैत, शुभ-अशुभ का द्वैत आदि। इस द्वैत-जाल से

निकलने के लिए वह संघर्ष का मार्ग अपनाता है। इस द्विविधा को सच्चाई को समझने के लिए निर्मित बौद्धिक कोटियों की जगह वह सच समझने की दुविधा में पड़ जाता है वह भी ऐसा सच जिसे नकारा जा सकता है। और इस प्रकार वह जो वास्तविक है उसे भी नकारने की भूल कर बैठता है।

धर्म-ग्रन्थ का शाब्दिक अर्थ - कट्टरवादी अपने धर्म ग्रंथ का शाब्दिक अर्थ करता है और उसमें वर्णित घटनाओं को ऐतिहासिक मानता है। इसके साथ ही वह अन्य धर्म के ग्रन्थों को वह दर्जा नहीं देना चाहता। यह अंतर्विरोध संघर्ष का कारण बनता है।

आधुनिकता और धर्मनिरपेक्षता का विरोध - संत्रसवादी कट्टरवादी विज्ञान आधारित आधुनिकता का विरोध करता है। चूंकि विज्ञान धर्म ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं को कल्पित और अप्रामाणिक मानता है, इसलिए कट्टरवादियों द्वारा इसका विरोध स्वाभाविक है। इसी तरह वह संस्थागत धर्म को मानव अस्तित्व का सार मानता है, इसलिए धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को भी तिरस्कृत करता है।

ईश्वरेच्छा - कट्टरवादी अपने सभी कार्यों का प्रमाणीकरण यह करके करता है कि यह ईश्वर की ही इच्छा है। वह स्वयं को ईश्वर द्वारा नियुक्त एक सिपाही मानता है जिसे सबको रास्ते पर चलाने का गुरुतर दायित्व मिला है। ईश्वर ने इस कार्य के लिए उसका चुनाव किया है, ऐसा भ्रम पालता है वह।

अन्त में प्रश्न उठता है कि उपर्युक्त अवधारणाओं के पीछे कौन सी प्रस्थापना है जिससे ये सभी निस्सृत हो सकती हैं। क्या सत्य की अंतिमता की अवधारणा ही धार्मिक कट्टरता को जन्म देती है और इसी कारण से कट्टरपंथी आधुनिकता, जो वैज्ञानिक प्रगति की देन है, का विरोध करते हैं? इसका उत्तर स्वीकारात्मक और निषेधात्मक दोनों हो सकता है। दोनों मत धर्म-ग्रन्थों के अभिधात्मक और शाब्दिक अर्थ से पोषित हो सकते हैं। निषेधात्मक उत्तर में भी प्रायः बौद्धिकता का तिरस्कार नहीं देखा जाता है बल्कि उसका सुविधाजनक प्रयोग ही देखा जाता है। जहां स्वार्थसिद्धि होती है वहाँ धर्म-ग्रंथ के परे जाने में भी कुछ कट्टरवादी संकोच नहीं करते। यह बौद्धिकता का निषेधात्मक प्रयोग है। इसका क्रियात्मक प्रयोग जहां व्यक्तित्व में निखार लाता है और सामान्य समझ के लिए प्रेरणादायक होता है और स्वस्थ समाज का आधार बनता है वहीं इसका निषेधात्मक प्रयोग हिंसा और अशांति का जनक होता है। इसका अर्थ यह भी है कि धार्मिक सत्य को अंतिम मानने और करुणामय या हिंसक होने में कोई अनिवार्य संबंध नहीं देखा जाना चाहिए। आवश्यकता है उन कारकों के विश्लेषण की जो एक स्थिति में करुणा को जन्म देते हैं और दूसरी में घृणा को। यह विश्लेषण धर्म और विज्ञान के बीच एक स्वस्थ संबंध की अवधारणा में सहायक हो सकता है।

दर्शन एवं संस्कृति विभाग,
श्री माता वैष्णो देवी विश्वविद्यालय,
कटरा (जम्मू-कश्मीर)

सन्दर्भ -

1. *<http://americainclass-org/sources/becomingmodern/ divisions/teÛt5/ colcommentaryreligion-pdf> पर उपलब्ध एक पत्र में छपा है। मैंने इसे 18 जनवरी 2016 को देखा।*
2. *बर्ट्रेण्ड रसेल (1935), रेलिजन एंड साइन्स (लंदन : आक्सफोर्ड यूनिवरसिटी प्रेस), रिप्रिंट 1974, पृष्ठ 7*
3. *प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक लार्ड केल्विन ने डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धांत का ये कहते हुए विरोध किया कि डार्विन ने प्रकृति की रचना में ईश्वर की मौजूदगी के सबूतों को नजरंदाज किया है और उन्होंने ये भी मानने से इनकार कर दिया कि*

मृत पदार्थों के परमाणु कभी मिलकर जीवन बना सकते हैं. इसके विपरीत स्टीफेन हाकिन्स ने अपनी पुस्तक द ग्रैंड डिजाइन में सृष्टि को एक स्वाभाविक प्रक्रिया माना है और इसके लिए ईश्वर जैसी किसी सत्ता के हस्तक्षेप को अनावश्यक माना है। उनका विश्वास है कि विज्ञान सृष्टि की व्याख्या बिना ईश्वर किसी ईश्वर की भूमिका दिखाये कर सकता है। देखें- <http://www-bbc-com/hindi/science/2013/10/131021_kelvin_religion_science_god_an> मैंने 16 जनवरी 2016 को देखा।

4. *उद्धरण ज.न एफ. होट (1995) के साइन्स एंड रेलिजन : फ्रोम कोन्फ्लिक्ट टु कनवरजेशन (न्यूयार्क : पोलिस्ट प्रेस) से, पृष्ठ 2.*
5. *इ. एच. एकलुंड और जे. जेड. पार्क (2009) ने एक रोचक सर्वेक्षण में पाया की व्यक्ति का वातावरण उसकी धर्म और विज्ञान के संबंध के बारे में दृष्टि के लिए बहुत हद तक उत्तरदायी है। देखें उनका 'कोन्फ्लिक्ट बिट्विन रेलिजन एंड साइन्स एमंग अकैडमिक साइंटिस्ट', जर्नल फॉर द साइंटिफिक स्टडि ऑफ रेलिजन, अंक 48.2 : 276-292*
6. *रसेल (1935), पृष्ट 34.*
7. *जॉन एच. इवान्स तथा माइकेल एस. इवान्स (2008), 'रेलिजन एंड साइन्सः बियोंड द एपिस्टिमेलॉजिकल कोंफ्लिक्ट नैरेटिव', एनुयल रिव्यू ऑफ सोसिओलॉजी, अंक 34 : 87-105, पृष्ट 88.*
8. *जॉन एफ. होट (1995) द्वारा उद्धृत, पृष्ट 72.*
9. *विवेकानंद, द मेथड्स एंड परपज ऑफ रेलीजन, कंप्लीट वर्क्स अ०फ स्वामी विवेकानंद, अंक 6. <http://www holybooks-com/complete & works & of & swami & vivekananda> पर उपलब्ध है।*
10. *विभिन्न धर्मों में सत्य-विषयक विरोधात्मक दावे के बारे में संक्षिप्त चर्चा के लिए जॉन हिक (2003) की अनूदित पुस्तक धर्म दर्शन (अनुवादक राजेश कुमार सिंह, दिल्ली : प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया, पृष्ठ 119-130) देखा जा सकता है।*
11. *यहाँ पर 'कट्टरवादी' शब्द अँग्रेजी 'फंडामेंटलिस्ट' का समानार्थक है। फंडामेंटलिस्ट' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1920 में अमेरिकी विचारक कार्टिस ली लाज ने किया था। इसके प्रयोग द्वारा उन्होने ऐसे लोगों को इंगित किया जो रूढ़िवादी प्रोटेस्टंट ईसाई थे और धार्मिक मूल्यों के कट्टरतापूर्वक पालन में विश्वास रखते थे। यह शब्द रूढ़िवादियों द्वारा 'फंडामेंटल्स' शीर्षक से प्रकाशित एक पत्र के अनुकरण में बनाया गया था। देखें एम. रुथ्वेन (2005) का फंडामेंटलिस्म : ए वेरी शॉर्ट इण्ट्रोडकशन (ऑक्सफोर्ड : आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन) पृष्ठ 8.*
12. *पीटर हेरियट (2009), रेलीजियस फंडामेंटलिस्म : ग्लोबल, लोकल, पर्सनल (लंदन : रूटलेज), पृष्ठ 2-3.*

कमलेश्वर के 'काली आंधी' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

संजीव कुमार विश्वकर्मा

आपातकालीन दौर में प्रकाशित 'काली ऑंधी' कमलेश्वर का महत्वपूर्ण लघु उपन्यास है। 'काली ऑंधी' सन् 1974 में प्रकाशित राजनैतिक महत्वाकांक्षा के हाथों बली चढ़ते पारिवारिक रिश्तों की कथा है। इस कथा में कमलेश्वर ने 1962 के राजस्थान के चुनावीं दौर के अनुभव को यथार्थ रुप में उकेरा है। बकौल कमलेश्वर - 'पूरे चुनाव के दौरान जो अनुभव इकट्ठे हुए, और जो छनकर सोच की परतों पर रह गए, वे यही थे कि भ्रष्ट हो गए और भ्रष्टता से भरते जाते चुनावों के प्रति मन में कसैला और कडवा स्वाद रह गया।.... भ्रष्ट हो एक चुनाव सिस्टम के प्रति जो घृणा पैदा हुई और मन में जो लाचारी समा गई, वो मैं बारह बरस तक मिटा नहीं पाया यानी सन् 74 तक, जब मैनें उपन्यास लिखा।'[1] सन् 1962 के राजस्थान के चुनाव में राजाओं-सामंतों की नई बनी 'स्वतंत्र पार्टी- की उम्मीदवार के रुप मे जयपुर से महारानी गायत्री देवी चुनाव लड़ रही थी। गायत्री देवी अपने महल से नंगे पैर चलकर इष्ट देवता के सामने शपथ लेकर जनता के साथ एकाकार होने के भ्रम फैला रही थी। 'काली ऑंधी' में मालती के रुप में चित्रित राजस्थान की वही गायत्री हैं जो सत्तकांछी होकर रानीतिक सफलता के उच्च से उच्चतर शिखर पर पहॅुचने के लिए अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों तक का निर्वाह नहीं कर पाती।

'काली ऑंधी' में कमलेश्वर ने स्वतंत्र भारत के बाद सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत स्वार्थ लिप्सा में डूबे आदमी और उसकी मानसिक चेतना के आधार पर अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति दी है। मालती सत्ता-आकांक्षा की शिकार होकर राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी धाक जमाती है। वह अपनी योग्यता, चातुर्य, कौशल और साहस के बल पर अपनी सफलता का डंका बजाती है। उपन्यास की नायिका मालती उच्च शिक्षा प्राप्त संस्कृत, अमीर घर की लड़की है। उसके पिता बैरिस्टर प्राताप राय उसे पढ़ाई के लिए विदेश भेजने के इच्छुक हैं। लेकिन मालती की जिद के सामने हार मानकर होटल मालिक जगदीश वर्मा के साथ विवाह कर देते हैं। जगदीश वर्मा उर्फ जग्गी बाबू एक सुलझे हुए एवं संतुलित जीवन व्यतीत करने वाले स्वाभिमानी व्यक्ति हैं। उनकी राजनीति में कोई रुचि नहीं हैं। अपने पिता की मृत्यु के बाद मालती धीरे-धीरे राजनीति में आ जाती है। राजनीति में मालती के प्रवेश का स्वागत और सहयोग जग्गी बाबू स्वयं करते हैं क्योंकि वे स्त्री की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। भारतीय संविधान भी राजनीतिक क्षेत्र में महिला आरक्षण की सुविधा देता है। मालती खजुराहों म्युनिसिपल बोर्ड कमेटी के चुनाव में खड़े होकर अपना राजनैतिक अभियान प्रारम्भ करती है। एक स्त्री के चुनाव लड़ने पर समाज में तरह-तरह की अफवाह फैलने लगती हैं तब स्त्री शिक्षा और आत्मनिर्भरता के पक्षधर होने के कारण स्वयं जग्गी बाबू कहतें हैं - ''देश के

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

निर्माण में औरतों को भी आगे आना चाहिए औरतें यानि हमारी आधी जनसंख्या जब तक इस तामीर में हाथ नहीं बटाएँगी, तब तक हर काम की स्पीड़ आधी रहेगी... यह बेहद जरुरी है कि हमारे घरों की औरतें आगे आएँ और हर काम में मर्दों का हाथ बटाएँ.... ।''[2]

जग्गी बाबू के समर्थन, स्वातंय, प्रेरणा और मार्गदर्शन के आधार पर मालती इस चुनाव में जीत हासिल करती है। पति की प्रेरणा और सहयोग पाकर वह राजनीति में दिन-ब-दिन आगे ही बढ़ती गई। उसने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। जग्गी बाबू ने भी मालती के मार्ग में न तो किसी प्रकार की बाधा उपस्थित की और न ही कभी रोककर नियंत्रण किया। 'म्युनिसिपल बोर्ड कमेटी' के चुनाव में जीत के पश्चात् वह 'जिला-परिषद्' का चुनाव भी लड़ती है। अपनी सूझ'बूझ और कर्तव्य के बल पर वह यह चुनाव भी जीत जाती है। जो मालती की दूसरी रानीतिक जीत थी। इसके बाद तीसरा चुनाव विधानसभा का आता है, किन्तु यह चुनाव भी बड़ी सूझ-बूझ और राजनीतिक दॉव-पेंच से जीत जाती है। इन चुनावों की जीत ने मालती का रुप ही बदल दिया। राजनैतिक सफलताओं और व्यवस्तताओं के कारण वह अपने पति व बेटी लिली को भी पहचानने से इंकार कर देती है। अपने रानीतिक ओहदे को संभावित आक्षेपों से दूर रखने के लिए वह खजुराहों में स्थित अपने पति को होटल बंद कराने हेतु दबाव डालती है - ''मैं पब्लिक में यह नहीं सुनना चाहती कि हम लोगों ने होटल को बहाना बना रखा है कि यह होटल हमारी काली आमदानी का जरिया हैं... कि यह गंदे कामों के लिए इस्तेमाल होता है... इससे मेरी पब्लिक इमेज पर धब्बा लगता है।''[3] सफलता के मद में चूर मालती को अपने पति और बेटी से अधिक अपनी इमेज की चिंता है। वह राजनीति के चक्र में इस प्रकार धसती गई कि अपने पति तथा बेटी के प्रति उत्तरदायित्व को भी भूल गई।

जग्गी बाबू होटल के अपने काम को आमदानी का इज्जतदार जरिया मानते हैं फिर भी पति-पत्नी के बीच विवाद न हो इसलिए होटल बंद करके बेटी लिली को लेके पचमढ़ी के पब्लिक स्कूल में भरती कर स्वयं भोपाल जाकर काम तलाशतें हैं और होटल गोल्डन सन में मैनेजर की नौकरी करने लगते हैं। लेखक यहॉ स्पष्ट करना चाहता है कि पति-पत्नी के बीच आयी दरारों में लिली जैसी अनेक अबोध बच्चों को हॉस्टल में दिन निकालना पड़ता है। जिन्हें माता-पिता के प्रेम और स्नेह से वंचित रहना पड़ता है। जग्गी बाबू स्वयं को तथा अपनी बेटी को राजनीति के दल-दल से दूर रखना चाहते हैं। 'कॉली ऑधी' का चुनाव प्रसंग भारतीय राजनीति के विद्रप चेहरे को खोलता है। जहॉ अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए साधनहीन, अर्थहीन सामान्य जनों को बहकाकर उनका इस्तेमाल किया जाता है। एक प्रसंग में जग्गी बाबू कहते हैं- ''यार तुम्हारी यह राजनीति बड़ी घटिया चीज है... तुम लोगों ने इसे निहायत बेहुदा बना दिया है। तुम लोग सिर्फ चीजों का बखूबी इस्तेमाल करना जानते हों !...बाढ़ आई तो उसे इस्तेमान करो, सूखा पड़ा तो उसे इस्तेमाल करो, कहीं कोई लड़की भाग गई तो उसके भागने का इस्तेमाल करो।.... कहीं कोई मर गया तो उसकी मौत का इस्तेमाल करो... तुम लोगों ने आदमी के ऑसुओं और जज्बातों तक को नहीं छोड़ा... उसकी आशाओं और सपनों तक को नहीं बख्शा... इससे ज्यादा घटिया बात और क्या हो सकती है कि दुःखी और मुसीबत जड़े इंसानों के सपनों तक का इस्तेमाल तुमने कर लिया... खुदा के लिए उसके सपने तो उसके लिए छोड़ दिए होते... ताकि वह अपनी बदहाली और मुसीबतों के बीच सपनों के सहारे तो जी लेता...तुमने....तुमने उसके सपनों को नारे बनाकर निचोड़ लिया। अब क्या बचा है आदमी के पास ?''[4]

राजनीति का दामन पकड़ चुकी महिलॉए वास्तविक जिंदगी को छोड़कर अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु दिखावटी जिंदगी जीने लगती है जिसमें तरह-तरह के मुखौटे समयानुसार दिखाई देते है। यही बात मालती पर भी लागू होती है। सत्ता प्राप्ति और सफलता न केवल उसकी अपितु पति जग्गी बाबू और बेटी लिली की

जिन्दगी की लहुलुहान कर देती है। मालती गलत को सही और सही को गलत करने में माहिर है। वक्त, जरुरत और जीत तीनों बातों पर टिकी मालती की नीति बेहद सफल होती है। ''सफलता कितनी क्रूर होती है, कितनी जालिम होती है, इसका नशा कितना गहरा होता है और खुद अपनी सफलता में व्यक्ति कैसे कैद हो जाता है, इसका जीता-जागता उदाहरण है मालती जी। दुःख और त्याग कितना जालिम होता है और इसमें व्यक्ति कैसे बुझ जाता है इसका जलता हुआ उदाहरण है जग्गी बाबू।''[5]

मध्यवर्गीय जीवन से जुड़े जग्गी बाबू मालती से समझौता नहीं करना चाहते। क्योंकि वह राजनैतिक उच्चवर्ग की खोखली, छल कपट से भरी दिखावटी जिंदगी नहीं जीना चाहतें।

मालती का राजनीति के क्षेत्र में बहुत सम्मान होता है। चीफ मिनिस्टर मालती को राजनीतिक सफलता पर खुश होकर लोकसभा का चुनाव लड़ने के लिए भोपाल क्षेत्र देते हैं जो मालती के साहस, कार्यकुशलता, सक्षमता और आत्मविश्वास के साथ आम आदमी के प्रति चार चाँद लगा देते हैं। मालती में एक सफल नेता के सभी गुण विद्यमान हैं। वह आवश्कतानुसार सभी व्यवस्था करना भी जानती है तथा राजनीति की चालें सोझ समझकर चलती है। लोकसभा चुनाव के दौरान मालती के रहने और कार्यालय हेतु उसी होटल को चुना जाता है जहॉ जग्गी बाबू मैनेजर के पद पर पदस्थ हैं। मालती के स्वागत में जग्गी बाबू को एक नौकर की भॉति प्रस्तुत होना पड़ता है। यह पति-पत्नी की विडम्बना है कि एक दूसरे को देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। शायद इसी विडम्बना का नाम ही है 'राजनीति'। गोल्डन सन में रहते हुए मालती नहीं चाहती कि उनके पति-पत्नी के रिश्तों का किसी को पता चले इसलिए वह जग्गी बाबू को कमरे में बुलाती हैं। तब अपरिचित भाव से जग्गी बाबू कहते हैं - ''मेरा और आपका कोई रिश्ता है क्या? मैने तो लिली तक को कभी इस रिश्ते के बारे में नहीं बताया.... क्या आप समझती हैं कि जो बाप अपनी बच्ची से एक टूटे हुए रिश्ते के बारे में छुपाता रहा है, वह औरों को बताता फिरेगा ?''[6]

भोपाल के लोकसभा के चुनाव में मालती जी प्रत्येक प्रकार के दॉव-पेंच और तिकड़मबाजी खेलती है। साधारण राजनीतिक नेताओं के समान वह भी अवसरवादी है। वह तमाम कार्यकर्ताओं और भोपाल के प्रभावी लोगों के सहारे जोड़-तोड़, गुण्डा-गर्दी और दहशत आदि से चुनाव की पृष्ठभूमि तैयार करवाती है। कार्यकर्ताओं की अंतरंग बैठक बुलाकर चुनाव नीति को समझाती हुई बताती है - ''देखिए हमें विरोधी दलों के हथकण्डे नही अपनो है। चुनाव एक पवित्र कार्यक्रम है। हम जनता के पास अपना असली कार्यक्रम लेकर जायेंगे और जनता की समझ पर ही निर्भर करेंगे। पैतरेबाजी और उठा-पटक का सवाल नहीं है। हम जातियों के आधार पर भी चुनाव नही लड़ेगें क्योंकि हमारी नीति किसी खास जाति के लिए नहीं है, पूरी जनता के लिए हैं।''[7] चूकि मालती वक्त की नब्ज को अच्छे से पहचानती हैं। जिसकी नीति पहले किसी खास जाति के लिए नहीं वरन् सबके लिए है वहीं मालती जाति के नाम पर लाला दीनानाथ को अपने नेतृत्व में लेकर अपने विरोध में खड़ा करती है और चुनाव का पूरा खर्चा खुद करती है। लाला दीनानाथ समस्त बनियों को एक झण्डे के नीचे लाता है। और बाद में मालती को समर्थन देकर खुद पीछे हट जाते है यह राजनीति में मालती जी की चाल थी जो लाला दीनानाथ नहीं समझ सके। वह अपने कार्यकर्ताओं को समझाती है - ''हम जातिवाद के सहारे चुनाव नहीं लड़ेगें यह बात साफ है पर सच्चाई को भी देखिए। चुनाव मैदान में इत्तफाक से बनियों का कोई अपना कैंडीडेट नहीं है। लाला दीनानाथ के खड़े होते ही सारे बनियॉ उनके इर्द-गिर्द जमा हो जायेंगे...यह शर्तिया होगा, क्योंकि लोगों के मन में अपनी जाति के लिए लगाव होना लाजिमी है। लाला दीनानाथ के खड़े होते ही सब बनिये एकजुट हो जायेंगे और उनका समर्थन करेंगे...। जब सारे बनिये लाला दीनानाथ के झण्ड़े के नीचे जमा हो जायेंगे, उस वक्त लाला दीनानाथ चुनाव मैदान से मेरे फेवर में विड्रा करेंगे।''[8]

आजादी के बाद भी राजनीतिक क्षेत्र में धर्म और साम्प्रदायिकता के विविध रंग दिखाई देते हैं। समकालीन राजनीति एक घिनौनी राजनीति है जिसमें साम-दाम, दण्ड-भेद से चुनाव जीतने की प्रवृत्ति है। कॉली ऑधी में भी मालती दीनानाथ के द्वारा साम्प्रदायिकता का प्रचार-प्रसार करवाकर विरोधी की छवि धूमिल कर देती है। वहीं हिन्दू-मुस्लिमों के बीच साम्प्रदायिकता के नाम पर घटित होने वाली घटनाओं का वास्तविक चित्रण कमलेश्वर जी ने किया है। क्योंकि हिन्दू-मुस्लिम समस्या आजादी के पहले से लेकर आज भी हावी है, खासतौर पर राजनीति में। विरोधी दल के नेता गुलशेर अहमद भी जातिवाद का फायदा लेकर वोटों में नकसीस कर लेता है। धार्मिक अनुष्ठानों में भी राजनीति शक्कर नमक की भॉति घुल-मिल गई है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण इसी उपन्यास में दिखाई देता है जहॉ ''लल्लू बाबू की अक्ल की दाद देनी ही पड़ी। वे गंगाजली में तुलसीदल डाले आचमनी लिए सबको चरणामृत बॉट रहे थे और कहते जाते थे भगवान का चरणामृत साक्षी है.. हमारा साथ देना ! सौगंध है राम जी की ! भूलना मत !''[9] अतः स्पष्ट है कि आज चुनावों को जीतने के लिए जाति, धर्म, प्रांत, सम्प्रदाय के आधार पर लोगों को गुमराह किया जाता है।

स्वतंत्र भारत की राजनीति का यथार्थ चित्रण 'कॉली ऑधी' में कमलेश्वर न किया है जो उपन्यास की श्रेष्ठता है। वोटिंग की पहली रात शानदार पार्टियों, सार्वजनिक कार्यक्रमों, मुशायरा के साथ नाच-गानों का आयोजन किया जाता है। चुनावों में दलाल नियुक्त किये जाते है। दंगे-फसाद, बेइमानी तिकड़मबाजी के माध्यम से चुनाव जीता जाता है। लोकसभा चुनाव में मालती जी भी सात हजार वोटों से जीत हासिल करती है। वहीं गुलशेर की जमानत जब्त हो जाती है तब बवह चीख-चीखकर कहता है-''हमारी जमानत कैसे जब्त हो सकती है ! मैं पूँछता हूँ कैसे जब्त हो सकती है। जब पूरा इलेक्शन जात और मजहब के नाम पर लड़ा गया है तो मेरे साठ हजार मुसलमान कहॉ गए? मैं पूछता हूँ मेरे साठ हजार मुसलमान कहॉ गए? या तो मेरे वो साठ हजार मुसलमान मुझे दिए जाएँ नहीं तो जमानत का पैसा वापिस किया जाए।''[10] लेकिन उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं देता। जीत की खुशी में मालती जी का जुलूस बड़ी धूम धाम से कलेक्टरी से शुरु होकर बीच बाजार से निकाला जाता है। रास्तों पर भीड़ लगी थी। लोग नारे लगा रहे थे उसी भीड़ में जग्गी बाबू और लिली भी खड़े थे। लिली छोटे-छोटे हाथों से तालियॉ बजा रही थी।

महत्वाकांक्षाओं एवं सफलताओं का नशा व्यक्ति की संवेदनाओं को ध्वस्त कर उसे मशीन में तब्दील कर देता हैं। यही स्थिति मालती की भी होती जहॉ उसे अपनी बेरफ्तार जिंदगी में दौड़ते हुए सोचने का समय भी नहीं मिलता और वो सफलता की मशीन बनकर रह जाती है। मालती के पास सफलता की मशीन बनने के अलावा अब कोई रास्ता नहीं है। वह सफलता की अंधी दौड़ में भूल जाती है कि उसका अपना घर है, पति है, बेटी है अपना कर्तव्य है और दायित्व भी है। मालती सफलता के चरम तक पहुँचती है लेकिन ऊपर से फलती फूलती मालती अंदर ही अंदर अपने पारिवारिक विफलताओं के दल--दल में धसती चली जाती है वह पति और बेटी से वंचित हो जाती है। ''जनता से वाहवाही मिलती है, अधिकार का बोध मिलता है, पूजा भी मिलती है किन्तु वह प्यार नही मिलता जो सर्वप्रथम परिवार में ही मूर्त होता है। और प्यार के बिना राजनेता की सारी विजय, सारी सफलता का क्या सुख है? यह एक प्रश्न भी है और स्थिति भी।''[11] इस प्रकार यह उपन्यास दाम्पत्य जीवन की त्रासदी एवं कुरुप होते जा रहे राजनीतिक चेहरे का मिश्रण है। जिसमें लेखक ने स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न उठाकर मालती के माध्यम से भारतीय राजनीति की जो प्रतिमा स्थापित की है वो आगे तक राजनीतिज्ञों का पथ प्रदर्शित करेगी। 'काली ऑधी' में केवल राजनीति में चरित्रहीनता और भ्रष्टाचार का चित्रण नहीं है। इस उपन्यास के कथ्य में खासतौर पर दो तरह की वैचारिकता एक ही साथ गुंथी हुई है।

भ्रष्टाचार के अतिरिक्त दूसरी वैचारिकता है - महत्वाकांक्षा के विस्तार की सफलता और सफलता के नशे की।''[12] इस कारण इसका कथ्य सीमित युग से संबंधित न होकर सार्वकालिक बन जाता है।

अतिथि व्याख्याता
हिन्दी विभाग
शासकीय महाविद्यालय, पथरिया, दमोह (म.प्र.)

सन्दर्भ -

1. *कमलेश्वर- 'काली आँधी : अनुभव से अर्थ की खोज तक, आधुनिक हिन्दी उपन्यास, खण्ड-1 पृ. 413*
2. *कमलेश्वर- काली आँधी, समग्र उपन्यास पृ. 366*
3. *वही पृ. 368*
4. *वही पृ. 366*
5. *वही पृ. 371*
6. *वही पृ. 394*
7. *वही पृ. 373*
8. *वही पृ. 375*
9. *वही पृ. 403*
10. *वही पृ. 432*
11. *डॉ. रामदाश मिश्र- कॉली आधी' समीक्षा (लेख) आधुनिक हिन्दी उपन्यास, खण्ड-1 पृ. 416*
12. *कमलेश्वर - 'काली आँधी' समग्र उपन्यास (भूमिका से)*

शास्त्रीय संगीत में लोक संगीत के तत्व

बृजेश मिश्रा

विषय में प्रवेश करते ही हमें यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि शास्त्रीय संगीत से हमारा तात्पर्य शास्त्रोक्त राग-विद्या के अनुसार बरते जाने वाले संगीत है जिसे शास्त्र परंपरा में प्रायः विद्वान मार्ग-संगीत की संज्ञा से उल्लेखित करते हैं।

शास्त्रीय संगीत के उद्‌भव एवं विकास की चर्चा करते समय दो सिद्धान्तों का उल्लेख किया जाता है। प्रथम श्रेणी में समस्त पौराणिक कथाओं एवं ग्रंथों को रख दें और दूसरी श्रेणी है वैज्ञानिक सिद्धान्त जिसके अनुसार शास्त्रीय संगीत का उद्‌भव एवं विकास सारी अन्य कलाओं और विज्ञानों की तरह मनुष्य के क्रमिक विकास के तहत ही अन्तरनिहित है। आदिम युग के मनुष्य का संगीत भी आदिम था। इसे जानना सहज और सरल है। आधुनिक सभ्यता से अनभिज्ञ, अविचलित तथा नष्ट हुये बिना हमारे ग्रह पर बहुत थोड़ी सी जो जनजातियाँ बची हुई हैं उनके संगीत पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि किसी समय में हमारे पूर्वजों का संगीत भी ऐसा ही हुआ करता होगा।

हमारा वर्तमान शास्त्रीय संगीत इस वैज्ञानिक धारणा तथा नृतत्वशास्त्रीय दृष्टिकोण से मनुष्य के विकास से ओतप्रोत रूप से जुड़ा है। हम क्रमशः जनजाति एवं आदिवासी कलाओं से लोककलाओं तथा लोककलाओं से शास्त्रीय कलाओं की ओर विकसित हुये। विकास के एक निश्चित स्तर पर पहुँचने के बाद शास्त्रीय कलाओं गायन, वादन एवं नृत्य की कई खासियतों की आवाजाही लोक से शास्त्रीय तथा शास्त्रीय से लोक में बढ़ गई एवं इन लोककलाओं की मनभावन धुनों को, ताल की लयकारियों को शास्त्रीय संगीत में भी लिया जाने लगा। महान तबला नवाजों के बीच अपने को बहुत कम उम्र में ही बतौर उस्ताद साबित करने वाले उ. जाकिर हुसैन ने कई अत्यन्त क्लिष्ट लयकारियों को अमेरिकी, अफ्रीकी लोक संगीतकारों के विभिन्न तालवाद्यों (जिन्हें वे ड्रम्स कहते हैं) से प्राप्त किया तथा बाद में उन्हें पंजाब घराने तथा फरूखाबाद घराने की अपनी खुद की तालीम से, उन चीजों का भारतीयकरण किया। यह तथ्य लय-सम्राट पद्‌मविभूषण पं. किशन महाराज ने उल्लेखित किया है। तात्पर्य यह है कि लोकसंगीत चाहे वह भारतीय हो, अफगानी हो, चाहे फारसी या यूनानी, इस विधा ने हमेशा ही शास्त्रीय संगीतज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया तथा बड़े-बड़े व्याकरणाचार्यों ने लोकसंगीत के तत्वों से शास्त्रीय संगीत को समृद्ध किया है।

इसी प्रकार अत्यंत क्लिष्ट माना जाने वाला सरोद वाद्य किसी जमाने में अफगानी और फारसी रबाव से उत्पन्न हुआ है तथा रबाब के लगभग विलुप्त हो जाने के इस दौर में रबाब की बंदिशें सरोद एवं सितार पर बज रही हैं।

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

आदिम मनुष्य की मुख्य क्रिया थी चलना, तैरना, लकड़ी काटना, चमड़ा छीलना, उसे घिसना इत्यादि। इन सारी क्रियाओं में एक लयबद्धता अनिवार्य रूप से निहित रहती है। हृदयगति ही स्वयं अपने आप में लयबद्ध है। अप्राकृतिक रूप से हृदयगति का विचलन हृदय रोग का लक्षण माना जाता है। इस हृदयगति को नापकर ही शुरुआती दौर में तालविद्या के व्याकरणाचार्यों ने स्थाई और बराबर की लय स्थापित की थी।

द्वितीय सिद्धांत के अनुसार पौराणिक कथाओं एवं प्राचीन ग्रंथों के आधार पर संगीत को हम तीन सम्प्रदायों में क्रमशः विकसित होते पाते हैं। पहले ऋषि संस्कृति में, फिर राजाश्रय संस्कृति में और फिर देवालय संस्कृति में। ऋषियों के पास संगीत वैदिक ऋचाओं के उच्चार रूप में था - साम गान और मार्ग संगीत के रूप में। साम गान में वैदिक ऋचाओं का पाठ भर होता था उसमें सृजनात्मक जैसा कुछ भी नहीं होता था सिर्फ पवित्र और ईश्वरीय आस्वाद के मंत्रों के गान थे लेकिन मार्ग संगीत ईश्वर तक पहुँचने का सांगीतिक मार्ग हुआ करता था। यह सृजनात्मक था। मार्ग की खोज में मार्ग बनता था। यह ऋषि संगीतज्ञों पर था कि वे अपने लिये ऐसे संगीत के जरिये ईश्वर अनुभूति के मार्ग का सृजन करें। उसी आधार पर जब ऐसे संगीत को शास्त्रबद्ध किया गया तो मार्ग संगीत के लक्षण भी निर्धारित कर लिये गये।[1]

मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते।
यो मार्गितो विरिच्याधैः प्रयुक्तो भरतादिभिः।।

- संगीत रत्नाकर (1/22)

तेरहवीं शताब्दी उत्तरार्ध में दौलताबाद (देवगिरी) के यादव वंशीय राजा के दरबारी संगीतज्ञ पंडित शारर्ङ्गदेव ने ''संगीत रत्नाकर'' ग्रंथ की रचना की। उपर्युक्त श्लोक के अनुसार मार्ग संगीत वह है जिसका प्रयोग ब्रह्मा के बाद भरत मुनि ने किया। यह संगीत अत्यन्त प्राचीन तथा कठोर सांस्कृतिक व धार्मिक नियमों से जकड़ा हुआ था।[2]

वैदिक गान सदैव अवरोही क्रम में और लौकिक गान या देशी गीत आरोहीक्रम में गाये जाते हैं। 250 सं. विमर्श साम, गान और गांधर्व ये तीनों गायन प्रकार मार्ग संगीत थे क्योंकि इन्हें इस प्रकार गाया जाता था कि वह मार्ग उद्धारित हो सके जो साधक को ईश्वर तक ले जा सके। आवश्यक नहीं था कि इसमें लोकरूचि हो। यह लोकप्रिय संगीत नहीं था। लोकप्रिय संगीत ही प्राचीन काल में मार्ग के बाद देशी संगीत कहलाया। देशी संगीत का शास्त्रगत परिचय हमें आठवीं शती के आचार्य मतंग के ग्रंथ से मिलता है।[3]

देशी संगीत याने उस काल का लोक में मान्य और रसरंजन हेतु प्रचलित संगीत। 'देशी' राग का वर्णन और निरूपण पहली बार आठवीं शताब्दी में लिखित आचार्य मतंग मुनि कृत वृहद् ग्रंथ 'वृहद्देशी' में मिलता है। 'देशी' के अंगों का वर्णन तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखे गये जैन आचार्य पार्श्वदेव कृत ग्रंथ ''संगीत समयसार'' में मिलता है।[4]

महर्षि मतंग के समय में रागों का प्रचार अच्छी तरह से समाज में हो चुका था। महर्षि मतंग ने उन्हीं प्रचलित अर्थात् देशी रागों के सिद्धांतों को स्पष्ट करने के लिये इस ग्रंथ को लिखा। ग्रंथ के नाम ''वृहद्देशी'' से ही स्पष्ट होता है कि इस ग्रंथ में 'वृहद्' रूप से 'देशी' रागों की व्याख्या की गई है। देशी शब्द का अर्थ है - देशी संगीत। साधारण लोगों, स्त्रियों, बच्चों तथा समाज के सब व्यक्तियों को यह संगीत प्रिय था। 'मतंग' के मतानुसार जातियों से ही ग्राम रागों की उत्पत्ति हुई। राग-जाति की परिभाषा देते समय मतंग लिखते है स्वरों का ऐसा आकर्षक मेल जो चित्त को प्रसन्नता दे राग कहलाता है।[5]

आंजनेय का कथन है कि जिन रागों में श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति इत्यादि का नियम नहीं होता और जिन पर विभिन्न लोकरूचियों का प्रभाव प्रधान होता है, वे 'देशी' राग हैं।

येषां श्रुति स्वर ग्राम जात्यादि नियमो न हि।
नानादेश गतिच्छाया देशिरागास्तु ते स्मृतः।।[6]

इन्हीं देशी राग से ही गीतों की उत्पत्ति हुई। वीणावादक ब्राह्मण किसी युग में यज्ञों में वीणावादन करते थे, गाते थे। याजकों के धर्म की और गायक-वादक ब्राह्मणों के अर्थ की सिद्धी 'गीत' से होती थी। काव्य 'गीत' का अंग है।

काव्य के लिये संगीत शास्त्र में 'पद' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह पद निबद्ध और अनिबद्ध दो रूपों में विभाजित है। ये शब्द क्रमशः पद्य और गद्य के नामांतर है।

लोक की भिन्नरूचिता को दृष्टि में रखते हुये विचारकों ने गीतों का वर्गीकरण किया। पंचमवेद 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ के प्रणेता (ई.पूर्व 200 वर्ष) आचार्य भरत मुनि का कथन है कि आचार्य (संगीत के मर्मज्ञ) 'सम' गीत को (वह गीत जिसकी गति न द्रुत हो, न विलंबित, जो ऊँचे-नीचे स्वरों से युक्त हो, साथ ही जिसमें पद और ताल योजना हो) पसंद करते हैं। पंडितों के लिये 'व्यक्त' गीत (जिसमें क्रिया-कारक से युक्त, संधि दोष हीन और स्वरों के व्यक्त रूप से युक्त गीत) रूचिकर होता है। नारियां 'मधुर' गीत (ललित अक्षरों से युक्त श्रृंगाररसपूर्ण और श्राव्य नाद एवं समता (काव्य और संगीत का संतुलन) से संवलित रूप) पर रीझती हैं और अन्य लोग 'विक्रृष्ट' गीत (तालस्वर युक्त और प्रयोगबहुल गीत) की कामना करते हैं।[7]

देशी संगीत - देश के विभिन्न भागों में छोटे-बड़े सभी लोग जिसे प्रेमपूर्वक गा-बजाकर अपना मन प्रसन्न करते हैं, वह 'देशी संगीत' है। शाङ्र्गदेव के समय में भी सभी जगह देशी संगीत ही प्रचलित था, किंतु वर्तमान हिंदुस्तानी संगीत से वह बिल्कुल भिन्न था। इसका कारण यही है कि देशी संगीत सर्वदा ही शास्त्रीय संगीत की तुलना में परिवर्तनशील रहा है, लोक-रूचि के अनुसार उसके स्वरूप में भी परिवर्तन होते रहते है। देशी संगीत के नियमों में उतनी शास्त्रोक्त बंधनशीलता नजर नहीं आती। इसलिए यह सुलभ और सरल है तथा लोक-रुचि पर आलंबित रहता है।

देशे-देश जनानां यद्रूच्या हृदयरंजकम्।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते।।

- संगीत रत्नाकर में आचार्य शारंगदेव

अर्थात् - भिन्न-भिन्न देशों के जन (मनुष्य) अपनी-अपनी रूचि के अनुसार जिसे गा-बजाकर और नाचकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं अथवा हृदय का रंजन करते हैं, वह 'देशी संगीत' है।

तत्तदेशस्थया रीत्या यत्सात् लोकानुरंजनम्।
देशे-देशे तु संगीतं तद्देशीत्यभिधीयते।।

- संगीत-दर्पण में पंडित दामोदर

अर्थात् - जो संगीत देश के भिन्न-भिन्न भागों में वहां के रीति-रिवाजों के अनुसार जनता को मनोरंजन करता है, वह 'देशी संगीत' कहलाता है।

लोकसंगीत अर्थात् देशी संगीत में आंचलिकता प्रमुख तत्व है तथा लोक संगीत तात्कालिक महत्वपूर्ण घटनाओं को अपनी विषयवस्तु की परिधि में ले लेता है। वह अपने दैहित स्वरूप में मूर्त और अभिप्राय जन्य है। इसलिये लोक संगीत के सरोकार वृहद् सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक हैं। परन्तु तुलनात्मक रूप से शास्त्रीय संगीत की विधायें अपने आप में अमूर्तन तत्व को बल देते हुये रचती हैं।

लोक संगीत में रस की उत्पत्ति पर बल है परंतु शास्त्रीय कलाएँ विशेषकर संगीत तात्कालिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ऐतिहासिक घटनाओं को अपने आगोश में सहज ही नहीं लेता इसलिये शास्त्रीय

नियमों से बंधा शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य बहुत ही धीमी गति से परिवर्तित होता है। शास्त्रीय कलाओं का यह रूप एक विशेष शालीन और सहृदयी वर्ग को संबोधित है जबकि शास्त्रीय के बरक्स ज्यादातर लोककलाएँ अपनी प्रवृत्ति से लगभग सबके लिये, सबके द्वारा की श्रेणी में आती हैं।

राग विद्या के दृष्टिकोण से देखते हुये सबसे पहले हम ध्रुपद गायन से प्रारंभ करें तब उसके ऐतिहासिक विवेचन में हम राग पर पहुंचेगें। रागों के पहले जाति गायन ही हुआ करता था और ये जाति गायन वस्तुतः गाँधर्व गान ही था। जाति गायन से और पहले के काल में गीत शैलियाँ प्रचलित थीं। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में गीत शैलियों को जातियों में विभक्त किया और यही जातियाँ राग का पूर्ण रूप हुईं। इन जातियों का मुख्य आधार प्रचलित लोक गीत और धुनें हैं। इन्हीं को परिष्कृत तथा व्याकरणबद्ध करते हुये जातियाँ विकसित की गईं। इस तरह पंचमवेद नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि (ईसा पूर्व 200 वर्ष), आचार्य मतंग मुनि (8वीं शताब्दी) 'वृहद्देशी' ग्रंथ के रचियता तथा 13वीं शती में 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ के ग्रंथकार पं. शारंगदेव आदि सभी शास्त्रकारों ने मोटे तौर पर इस विकासक्रम को माना है। अतएव संक्षिप्त में कहें तो लोकगीतों एवं लोकधुन से गीति-गायन, गीति गायन से जाति गायन तथा जाति गायन से राग गायन विकसित हुआ। प्राचीन काल में 'राग-गायन' के स्थान पर जाति गायन प्रचलित था। अतः रागों के प्रकार या वर्ग को ही ''राग-गायन'' कहा जाता था।[8] लोक संगीत के इस ऐतिहासिक अवदान को राग संगीत के सभी विशेषज्ञों ने मान्यता प्रदान की। महान ध्रुपदिये उस्ताद जिया मोहिउद्दीन डागर गीत के पाँचों भेद गाकर सुनाते थे और वे भी उपरोक्त सिद्धान्त को मानते थे।

मध्ययुग याने 15वीं शताब्दी से अब तक ध्रुवपद गायनशैली चली आ रही है। ध्रुपद गायन का आधिकारिक उल्लेख एवं वर्णन सबसे पहले पंद्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा हुआ था। उन्होंने स्वयं भी कुछ ध्रुवपदों की रचना की। ध्रुवपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू एवं बृजभाषा में मिलते हैं। बीकानेर राजस्थान के राजा अनूपसिंह राठौर के दरबारी संगीतज्ञ पं. भावभट्ट (1562 ई.) लिखित वृहद्-संगीत ग्रंथ 'अनूप संगीत रत्नाकर' में ध्रुवपद की व्याख्या इस प्रकार की गई है -

गीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम्।।
श्रृंगाररसभावाद्यं रागालापपदात्मकम्।
पादांतानुप्रायुक्तं पादानयुगकं च वा।
प्रतिपादं यत्र वद्धमेवं पादचतुष्टयम्।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगांतरं ध्रुवपदं स्मृतम्।।

- अनूप संगीत रत्नाकर[9]

आगरा, मथुरा, ग्वालियर, उन्नाव आदि जगहों में इस ध्रुपद शैली का विशेष प्रचलन रहा। अष्टछाप संगीतज्ञों याने सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, चतुर्भुज दास, गोविन्द स्वामी एवं छीतस्वामी कीर्तनकारों ने जो कि अच्छे साहित्यकार भी थे, ने तत्कालीन राधाकृष्ण के मंदिरों में कीर्तन पद्धति को मुखर किया। मंदिरों में इन संगीतज्ञों द्वारा ध्रुवपदों का और विकास हुआ।

स्वामी हरिदास के पद बहुत प्रचलित थे। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर का धुव्रपद के उत्थान में विशेष सहयोग रहा। बैजू, बक्शू, तानसेन उस समय के ध्रुवपद के सर्वोच्च गायक रहे। इसके बाद के काल में तानसेन के वंशजों द्वारा इस गान शैली को आगे बढ़ाया गया। ध्रुवपद की विभिन्न शैलियाँ 'बानी'' कहीं जाती हैं। ये चार बानियाँ प्रमुख हैं - गोबरहार बानी, डागुर बानी, खंडारबानी और नौहारबानी। इन बानियों का

सर्वमान्य तथ्य यह है कि इन बानियों में गाये जाने वाले ध्रुपद ब्रजभाषा में ही गाये जाते थे।

धमार - ध्रुपद गायन के साथ ही जुड़ा है धमार। देश के अनेक भागों में विद्वान धमार को 'पक्की होरी' भी कहते हैं। इनमें अधिकांश ध्रुपदों में धमार भी गाया जाता है। धमार की बंदिश में होरी इत्यादि का वर्णन होता है जो कि अपने आपमें आज भी लोकगायन की खुशबू लिये स्वतः ही प्रतीत होता है। मलिक घराने के महान ध्रुपदिया पं. सियाराम तिवारी के धमार और ठुमरी गायन में एक ओर जहाँ शास्त्रीय शुद्धता का अधिपत्य था वहीं दूसरी ओर लोक तथा उप-शास्त्रीय गायन का श्रृंगारिक वैभव। वस्तुतः होरी गायन भी लोकजीवन का शास्त्रीयकृत गायन स्वरूप है। उदाहरण के तौर पर महान गायक उस्ताद फैयाज खाँ साहब की यह प्रसिद्ध होरी देखिये जो राग देश में निबद्ध है -

आज होरी खेलत ऽ ऽ ऽ नंदलाल।

इसी तरह महान गज़ल गायिका बेगम अख्तर की राग खमाज में यह होरी बहुत प्रसिद्ध हुई -

कौन तरह से तुम खेलत होरी रे ऽ ऽ ऽ

चौहदवीं शताब्दी में अमीर खुसरो के काल में धमार का अर्थ होली था। उनकी प्रसिद्ध रचना (धमार) 'हजरत ख्वाजा संग खेलिये धमार' से भी धमार का अर्थ होरी ही प्रतीत होता है।

पूर्ववर्ती काल में लोक संगीत के रूप में धमार एक सामूहिक गान होता था जिसे लोग टोलियों में होली खेलते हुये गाते थे। धमार की भाषा ब्रज मिश्रित हिन्दी होती है। लोक जीवन एवं मंदिरों के अलावा धमार मुगल बादशाहों के दरबारों में भी गाया जाता रहा है। बाद के काल में धमार को शास्त्रीय संगीतकारों ने विशेषतः ध्रुपदियों ने अपनाया तथा इसे परिष्कृत कर पखावज के साथ उन्नत लयकारियों जैसे दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़, बिआड़, कुआड़ से परिपूर्ण किया तथा ध्रुपद गायन की अन्य विशेषताओं से उन्नत करते हुये परिष्कृत स्वरूप में शास्त्रीय गायन की विधा के तौर पर धमार को स्थापित किया।

आज भी देश के कई मंदिरों में इस प्राचीन परंपरा के तहत सामूहिक रूप से कीर्तनकार झाँझ बजाते हुये धमार या होरी गाते हैं। आइने अकबरी में भी धमार को संगीतजीवी ब्राह्मणों द्वारा गाये जाना वाला एक सामूहिक लोक गायन का प्रकार माना गया है जिसमें झाँझ के अलावा पखावज एवं तत्कालीन रबाब भी प्रमुख वाद्य के रूप में हुआ करता था।

यहाँ यह कहना भी आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि इस विशेष काल में रबाब उन्नत होकर शास्त्रीय संगीत को प्रस्तुत करने के वाद्य के रूप में पूर्णतः विकसित नहीं हुआ था। अर्थात उस काल में रबाब लोकसंगीत का ही वाद्य था जो बाद के काल में शास्त्रीय संगीत में वाद्य के रूप में विकसित हुआ। करीब 150 वर्षों से शनैःशनैः ख्याल गायकी का प्रचलन बढ़ा। मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले (1719 ई.) के दरबार में गायक सदारंग (न्यामत खाँ, तानसेन के वंशज) एवं अदारंग ने हजारों खयाल रचे एवं गाये। इन दोनों गायकों के वंशज ध्रुपद गायक थे।[10]

ख्याल गायन के इतिहास को जब हम देखते हैं तो उस्ताद गुलाम रसूल व उनके प्रपौत्र नत्थन पीरबख्श से कव्वाल बच्चों के घराने का जिक्र मिलता है। ख्याल के विकास में कव्वाली के अवदान का यह बड़ा प्रमाण है। कव्वाली में एक खयाल को अन्य कई वैचारिक खयालों से भरा जाता है, शास्त्रीय संगीत के खयाल गायन में मूल खयाल को राग के सुर विस्तार तथा राग विस्तार करते हुये बंदिश को विभिन्न प्रकार की तानों,गमकों, मींड़,मुर्कियों तथा गले की रसउत्पादक हरकतों से भरा जाता है। इस तरह कव्वाली और वर्तमान खयाल गायकी में जो साम्य दिख पड़ता है वह उसके उद्‌गम के साझा इतिहास में निहित है। मराठी नाट्य संगीत व मराठी भजन, अभंग गाने वालों ने भजन, लावणी आदि नाट्य संगीत जो गाया उसका खयाल गायकी

पर असर हुआ और खयाल गायन सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से समृद्ध हुआ है। इसी तरह पं. कुमार गंधर्व ने मालवी लोक गीत तथा अन्य भजनीकों की प्रेरणा से स्वयं अपनी भजन गायकी की शैली को निर्मित किया जिसके चलते वे पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के बाद संभवतः ग्वालियर घराने के भजनों के सबसे बड़े प्रस्तोता हुये। कुमार जी की भजन गायकी की शैली का स्वयं उनके खयाल गायन पर भी काफी असर पड़ा। उनके द्वारा निर्मित राग सहेली तोड़ी, 'राग गांधी मल्हार, राग लगन गांधार आदि में इस असर को भली-भांति महसूस किया जा सकता है। लोकगायन की रसमयता और उत्सवधर्मिता से उत्पन्न अल्हड़पन को कुमार गंधर्व ने कबीरी परंपरा के भजनों को गाते हुये महान उस्ताद फैयाज खाँ की करूण पुकार के करीब पहुँचा दिया। यह लोक कला का शास्त्रीयता में अत्यन्त बारीकी से प्रवेश का उदाहरण है।

टप्पा - खयाल गायन के बाद टप्पा गायकी का प्रचार हुआ। खयाल के अलावा शास्त्रीय गायन में टप्पा गायन भी ग्वालियर एवं बनारस घराने के आज के खास अस्त्र हैं। टप्पा गायन का सर्वप्रथम प्रमाणिक उल्लेख लखनऊ नबाव आसिफुद्दौला के दरबारी संगीतज्ञ पंजाब के शौरी मियाँ द्वारा प्रचारित गायकी के रूप में किया जाता है। टप्पे में प्रयुक्त होने वाली तान आज भी वही प्राचीन तान है। ऊँट पर बैठे हुये राजस्थान और पंजाब के लोक गायक हिचकोले के साथ लोक गायन करते थे। हिचकोले के कारण गायकी में तान सहित कुछ अलग ही वैचित्र्य उत्पन्न होता है। इस गायकी को शास्त्रीय में मिलाकर उस्ताद शौरी मियाँ ने टप्पा गाया और इस प्रकार यह टप्पा गायन शैली लखनऊ दरबार से चलकर प्रसिद्ध हुई। यह टप्पा गायन आज की शास्त्रीय गायकी विधा में शामिल है। उसकी भाषा आज भी पंजाबी लोकभाषा ही है। टप्पा गायन में तबले पर पंजाबी ठेका ही प्रयुक्त होता है। राग काफी, झिंझोंटी, बरवा, भैरवी, खमाज इत्यादि रागों में गाई जाने वाली यह टप्पा शैली भी लोकगायन का ही विकसित रूप है।

टप्पा का उदाहरण -

1. स्थाई - वारी जांदी मैं तेरे पोना आ मैं।
   अंतरा - आखड़ी खटकन्दी रहेंदीं,दिलबी भटकन्दा
   हमदम आ, लखलख बारी बारी फिरी फिरी।।
2. राग खमाज में निबद्ध यह टप्पा -
   स्थाई - चाल पहचानी मियाँ
   जो बिन दारक जानी
   अंतरा - सुन पाया न दासु
   थारा दुश्मान हूँ तमाम,
   या हिमसे अपना तो,
   हुआ काम तमाम
3. राग भैरवी में शैरी मियाँ रचित यह टप्पा भी देखिए -
   स्थाई - नजर बिन बहार बेनियाँ
   गुलफा गुलान में पाकू
   जो तुम जानब जानु
   अंतरा - बाग में छाके शौरी फिरे,
   गुलान में ताके।
   आड़ा गुनवा दर्शन को जाके।

नजर बिन ...

टप्पे के अलावा ठुमरी, होरी, कजरी, सावन, झूला, चैती इत्यादि शास्त्रीय संगीत में उपशास्त्रीय नाम से प्रवेश पा चुके हैं। परन्तु इनकी शृंगारिकता और रसउत्पादकता का उत्स लोकसंगीत एवं लोक जीवन से है। ये गान-प्रकार भारतीय लोक-जीवन के कई पहलुओं को बड़ी भावप्रवणता से छूते हैं। इन्हें शिद्दत के साथ प्रस्तुत करने वाले श्रेष्ठ कलाकार महफिलों को रसरंजित कर यशोपार्जन करते हैं।

कजरी - शृंगाररस प्रधान इस गीत प्रकार का प्रचलन बनारस मिर्जापुर में अधिक है।[11] हालांकि अब कजरी गीत प्रकार को देश के अन्य हिंदी भाषी प्रदेशों में भी गाया जाने लगा है। कजरी गीतों में वर्षा ऋतु वर्णन, विरह वर्णन, राधा-कृष्ण लीलाओं का वर्णन अधिक मिलता है।

चैती - होली के बाद चैत के महिने में चैती गायन का आरंभ होता है। इन गीतों में श्रीराम की लीलाओं का वर्णन रहता है। बिहार में इस गायकी का अधिक प्रचलन है। चैती-गायन में पूर्वी भाषा का प्रयोग ज्यादातर होता है। ठुमरी गायक चैती भी अच्छे से गाते हैं।

सावनी - वर्षा ऋतु में सावन के महिने में यह गीत प्रकार अधिकतर गाया जाता है।

माँड - राजस्थान और मालवा प्रदेश का यह लोकगीत प्रकार अब शास्त्रीय गायन के बाद गाया जाने लगा है और उपशास्त्रीय संगीत में काफी प्रचलित हो रहा है। माँड वस्तुतः उस विशेष अंचल की एक धुन है। इस धुन के आसपास चलते हुये अनेक प्रकार की स्थितियों का साहित्यिक वर्णन किया जाता है। राजस्थान में इस माँड गायकी के अनेक प्रकार होते हैं। माँड गायकी की सर्वाधिक मान्यता प्राप्त धुन ''केसरिया बालमा.. पधारो म्यारे ऽऽ देस ऽऽ'' अब शास्त्रीय राग रूप की गरिमा हासिल कर चुकी है।

ठुमरी - खयाल घरानों के प्रायः सभी ख्याल गायक खयाल के पश्चात अधिकतर ठुमरी गाकर ही अपनी प्रस्तुति समाप्त करते है। कुछ कलाकार तो केवल ठुमरी गायन के ही विशेषज्ञ हैं तथा शास्त्रीय व उप शास्त्रीय के श्रोताओं में उनकी पर्याप्त ख्याति भी है।

कालांतर में ठुमरी के प्रति श्रोताओं का आग्रह इतना बढ़ा कि लगभग सभी गायकों ने अपने गायन का समापन ठुमरी-गायन से करने की प्रथा सी बना ली। उ. फैयाज खाँ, रामपुर के उ. मुश्ताक हुसैन खां, उ. अब्दुल करीम खाँ, उ. बड़े गुलाम अली खाँ जैसे नामी घरानेदार शास्त्रीय गायकों ने ठुमरी को बहुत सद्भाव, आदर व प्रेम से अपनाया और गायन का समापन प्रायः ठुमरी से किया।[12]

ठुमरी विधा में मूलतः ब्रज भाषा का उपयोग किया जाता है। पाँच से दस प्रतिशत ठुमरियाँ ही अवधी, भोजपुरी तथा खड़ी बोली में गाई जाती हैं परंतु ज्यादातर श्रेष्ठ वाग्गयेकारों ने ब्रज भाषा में ही ठुमरियों को बाँधा है। ठुमरी की भाषा ज्यादातर ब्रज है और इसकी विषयवस्तु कृष्ण और राधा, कृष्ण और गोपियाँ, प्रेमिका, विरह, मिलन, विवाह तथा अन्य उत्सव वर्णन आदि हैं। लोकजीवन के अनुभवों से सराबोर जनपदीय बोली और भाषाओं में लिखी गई ठुमरी शास्त्रीय मंच पर पहुँच कर अपने स्वर गंभीर्य तथा उच्चकोटि के बोलबनाव, सुरमयता और तालमयता के साथ शास्त्रीय संगीत के दर्जे को प्राप्त करती हैं। ठुमरी में प्रयुक्त शब्द का उच्चारण तथा नादोच्चार इस भावप्रणता से होता है कि ध्रुपद तथा खयाल के बनिस्बत ठुमरी में प्रयुक्त शब्दों का साहित्यिक अर्थ भी श्रोताओं तक अपने मायने को प्रेषित करता है। एक ठुमरी की पंक्ति देखें -

वीरन को दीन्हा बाबुल, महल दो महले,
और हमको दिया परदेस,
मोरो अपनो बेगानों छूटो जाय
बाबुल मोरा नैहर छूटो हे जाय।

हम तोरे बाबुल,
खूंटे की बछिया जहाँ कहो बँध जाय
बाबुल मोरा मैहर छूटो जाय।

उत्तरप्रदेश के इस अत्यन्त प्राचीन लोकगीत को नबाब वाजिद अली शाह ने ठुमरी का स्वरूप दिया। बाद में स्व. कुंदनलाल सहगल ने इसे राग सिंध भैरवी में गाकर एक अमरत्व प्रदान किया।

एक दूसरी ठुमरी में देखिए -

बदरा ढक दे मोरो अंगना
पावन मोरे घर आये।

इन पंक्तियों में प्रतीक्षारत नायिका अपने आँगन की धूप को अपने सीमित आर्थिक साधनों के कारण ढकने में असमर्थ है इसलिये वह बादल से निवेदन कर रही है कि वह थोड़ी देर के लिये आँगन को ढक कर धूप की क्षिप्रता से उसके पिया की रक्षा करें। इसी प्रकार

मौरे सैया जी उतरेंगे पार
नदिया धीरे बहो''

इस ठुमरी में नायिका नदी से निवेदन कर रही है कि मेरे पिया नदी पार करना चाहते हैं, थोड़ा धीरे-धीरे बहो। इन सारी छबियों से अंततः हमारे लोकजीवन का एक रसरंजित रागमय चित्र उभरता है जिसे हम ठुमरी कहते हैं। हमारे शास्त्रीय संगीत को सुनने वाले गुणीजन श्रोता भले ही अभिजात्य वर्ग के हों परंतु ठुमरी के मार्फत वे जिस करूणा, श्रृंगार तथा उत्सवधर्मिता को अनुभूत कर रहे हैं, वह हमारे समाज के लोकजीवन से उपजी है। यह कहना अतिशयोक्ति ना होगा कि खयाल गायन की तकनीक तथा रागविद्या को इस्तेमाल कर हमारे संगीतकारों ने पिछली तीन-एक शताब्दियों में लोकगीतों को ही परिष्कृत और उन्नत करके ठुमरी विधा के तौर पर विकसित किया।

महाराज बिंदादीन, उस्ताद सादिक अली खाँ, उ. मौजुद्दीन खाँ एवं इनके शिष्य-शिष्याओं द्वारा बनारस में ठुमरी गान का प्रचलन हुआ और ''बनारसी ठुमरी'' की नींव पड़ी। इस बनारसी-ठुमरी पर उत्तर भारत के पूर्वी प्रदेशों की बोलियों, लोकगीतों, लोकधुनों का बहुत प्रभाव पड़ा। इस बनारस ठुमरी में ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी, भोजपुरी, मगही आदि बोलियों का भी प्रभाव था। साथ ही बिहार में प्रचलित चैती, घाटों, कजरी, सावन, झूला, पूरबी आदि लोकगीतों और धुनों का भी प्रभाव पड़ा।

बनारस तथा लखनऊ में तो होरी कजरी एवं ठुमरी के बिना कोई गायक वादक कलाकार अपना स्थान बना ही नहीं सकता। ये दोनों विधाएँ अपने आपमें आंचलिकता से तथा लोकतत्त्व से सराबोर हैं।

इस तरह ध्रुपद, खयाल, टप्पा और ठुमरी में लोक के कई अंग समाहित हैं।

वाद्य संगीत - शास्त्रीय वाद्य संगीत में प्रयुक्त होने वाले सारे वाद्य भी किसी ना किसी एक या एक से अधिक लोक-वाद्य का परिष्कृत स्वरूप हैं। उदाहरण के लिये हम रबाब को ही लें तो अफगानी रबाब, लोक संगीत में प्रयोग होने वाला भारतीय रबाब तथा तानसेनी रबाब इन तीन रबाबों के प्रकारों से रबाब विकसित होकर शास्त्रीय संगीत बजाने वाले वाद्य के तौर पर माना गया और इस रबाब को लगातार उन्नत किया गया।[13]

गुलाम अली सरोदिया के घराने, शाहजहाँपुर घराने तथा बाबा अलाउद्दीन खाँ के मैहर घराने ने रबाब को आधार बना कर सरोद वाद्य को बहुत ही उन्नत वाद्य बना लिया। सरोद के उन्नत वाद्य के स्थापित होने के बाद उसको जन्म देने वाले रबाब की प्रासंगिकता शनैः शनैः समाप्त हो गई। यह वही रबाव है जिसे समस्त संगीतशास्त्री लोक संगीत का ही वाद्य मानते हैं। सरोद के पश्चात् हम शहनाई को देखें तो इसे भी लोक वाद्य ही

माना जाता था। मामूली परिवर्तन के पश्चात इसे महान कलाकार उस्ताद विसमिल्ला खाँ ने शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत करने में समर्थ वाद्य के तौर पर स्थापित कर सम्मान दिलाया तथा स्वयं भी भारत रत्न से सम्मानित हुये। बाबा अलाउद्दीन खाँ और उनके शिष्य स्व. पन्नालाल घोष ने बांसुरी को शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत करने योग्य वाद्य बनाकर बाँसुरी को लोकवाद्य से शास्त्रीय संगीत के वाद्य का दर्जा दिलाया। बाबा अलाउद्दीन खाँ की विदुषी पुत्री श्रीमती अन्नपूर्णा देवी ने अपने शिष्यों पं. हरिप्रसाद चौरसिया तथा पं. शिवकुमार शर्मा के मार्फत लोकसंगीत के वाद्य समझे जाने वाले बाँसुरी तथा संतूर को शास्त्रीय संगीत में भलीभाँति स्थापित किया। आज ये वाद्य वीणा, सितार और सरोद की ही तरह शास्त्रीय वाद्य संगीत के क्षेत्र में स्थापित हैं।

मूलतः लोक संगीत से शास्त्रीय संगीत में आये इन वाद्यों को बजाते हुये हमारे कलाकार राग प्रस्तुतिकरण हेतु रूद्रवीणा,सितार तथा सरोद की बंदिशों का इस्तेमाल करते है तथा इन्हें बीनकार अंग (तंत्रकारी) अंग से तथा खयाल गायकी के अंग से भी बजाते हैं।

सितारवादिका प्रो. सुनीरा कासलीवाल अपने संस्मरण में अपने सितार गुरू पं. उमाशंकर मिश्र के बारे में लिखती हैं- ठुमरी व लोकधुनों में तो आपकी कल्पनाशीलता की पराकाष्ठा हो जाती थी जिसे सुनकर श्रोता स्तब्ध और जड़वत् हो जाते थे।[14]

इस तरह आधुनिक काल के अधिकांश वाद्य संगीत में लोक वाद्य तथा उनकी वादन शैली का कमोबेश योगदान सहज ही प्रमाणित होता है।

निश्चित ही लोक के वृहद्द निरीक्षण से ही भरत आदि विद्वानों ने शास्त्रीय संगीत और वाद्यों का वर्णन किया। इन सारे सांगीतिक कार्य व्यापार में लोक से शास्त्र और शास्त्र से लोक में आवागमन होता रहा।

इस देश में शास्त्रीय और लोक का, देशी और मार्ग संगीत का रिश्ता बहुत घना है। उनका लेन-देन जगजाहिर है। यह भी कि हमारे देश में जो संगीत लोकप्रिय हुआ है उसका 'बेस' प्रायः शास्त्रीय ही रहा है। इसे याद रखने की जरूरत है।[15]

लोक और शास्त्रीय के साथ नए प्रयोगों से जनप्रियता को संबोधित हमारे देश का जो बहुविध संगीत है, उसकी आधारभूत संरचनाओं की ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। चाहे माँझी गीत हो, भटियाली हो, बाउल हो, मणिपुरी संकीर्तन हो या लोक-आदिवासी गीत वाद्य लहरियाँ हों, सबमें एक सुर-संगति हमें विन्यस्त मिलती है। उनका अपना एक स्ट्रक्चर है और राग-रागिनियों में निबद्ध शास्त्रीय तो शास्त्रीय ही है। संगीत की यही विपुलता, संगीत के यही स्त्रोत, संगीत के यही आधार, भारतीय जन-मानस को ''ओतप्रोत'' किए रहते हैं।[16]

गायन, वादन एवं नृत्य की शास्त्रीय विधाओं में ऐतिहासिक तौर पर लोक ने किस तरह शनैः शनैः प्रवेश पाया तथा अपने अनेक लोक-तत्वों को शास्त्रीय संगीत के सुगठित अंगों में रूपातंरित किया इसे दर्शाने की हमने चेष्टा की है। इस चेष्टा में वाद्यों के प्रकार, धुन और राग, देशी (लोक) और मार्ग संगीत का इतिहास, पौराणिक कथाएँ और ग्रंथों के ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर इस विषय का अनन्त विस्तार संभव है।

निष्कर्ष में यह प्रतिपादित करते हुये कि अपनी सारी अनगढ़ता के बावजूद आदिवासी संगीत, लोक संगीत का और लोक संगीत, शास्त्रीय सांगीतिक प्रकारों का पूर्वज है हम अपनी विवेचना को यहीं विराम देते हैं।

बृजेश मिश्रा
पद- गायक विभाग- रंग मंडल
कथक केन्द्र, सान मार्टिन मार्ग, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-21

सन्दर्भ -

1. *गौतम चटर्जी, संगीत विमर्श, अभिनव गुप्त अकादमी, वाराणसी, प्रथम संस्करण-2009, ISBN 978.81.9098.45.0.0 पृष्ठ-225*
2. *डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग-संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस उ.प्र., 18वाँ संस्करण, 1989, ISBN 81.85057.00.1 पृष्ठ-149*
3. *गौतम चटर्जी - वही, पृष्ठ 246*
4. *गौतम चटर्जी - वही, पृष्ठ 225*
5. *डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग - वही, पृष्ठ 324*
6. *आचार्य वृहस्पति, संगीत चिंतामणि, प्रथम खंड, द्वितीय संस्करण, संगीत कार्यालय हाथरस उ.प्र. 1976 पृष्ठ-16*
7. *आचार्य वृहस्पति, वही-पृष्ठ-48*
8. *डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग - वही, पृष्ठ 178*
9. *वही, पृष्ठ-331*
10. *वही, पृष्ठ-159*
11. *वही, पृष्ठ-163*
12. *शत्रुघ्न शुक्ल-ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ-158*
13. *संगना-त्रैमासिक पत्रिका, लेख मुन्ना शुक्ला, वाद्यों के घराने वर्ष 1 : अंक 3-4 (जुलाई-दिसम्बर, 2011) संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ 38*
14. *संगना- लेख-सुनीरा कासलीवाल-वही, पृष्ठ-213*
15. *संगना- लेख-प्रयाग शुक्ल-वही, पृष्ठ-192*
16. *संगना- लेख-प्रयाग शुक्ल-वही, पृष्ठ-193*

गाँधी के राष्ट्रवाद की अवधारणा

पंकज सिंह

राष्ट्रवाद एक जटिल बहुआयामी अवधारणा है एवं आधुनिक विचार है, जिसमें अपने राष्ट्र से एक साझी सांप्रदायिक पहचान समावेशित है। यह एक राजनीतिक विचारधारा के रुप में अभिव्यक्त होता है, जो किसी समूह के लिए ऐतिहासिक महत्व वाले किसी क्षेत्र पर सांप्रदायिक स्वायत्तता और कभी-कभी संप्रभुता हासिल करने और बनाए रखने की ओर उन्मुख है। एक व्यक्ति की राष्ट्र के भीतर सदस्यता और संबंधित राष्ट्रवाद का उसका समर्थन, उसके सहगामी राष्ट्रीय पहचान द्वारा चित्रित होता है।

राष्ट्रवाद को समझने के लिये दो बड़े आयामों को समझना जरूरी है। इसी समय राज्य नाम की आवधारणा का विकास हुआ तथा राजनीतिक रूप से अपनी एक अलग पहचान स्थापित की। राष्ट्रवाद के उदय के फलस्वरूप राजनीतिक सरोकारों का केन्द्र बिंदु राष्ट्र-राज्य (Nation-state) में निहित हो गया। धीरे-धीरे एक विचार ने अपनी एक व्यापक पहचान स्थापित की। विश्व स्तर पर राष्ट्रवाद के प्रचार-प्रसार से गैर आधुनिक समाजों का यूरोपीयकरण तथा आधुनिकीकरण हुआ। राष्ट्रवाद के उदय के साथ अनेक नये सिद्धांतों का उदय हुआ जैसे-संप्रभुता की उत्पति, शासितों के सक्रिय सहयोग से शासन का सिद्धांत, धर्मनिरपेक्षता, धार्मिक या जातीय सामाजिक मानसिकता का विघटन। साथ-साथ शहरीकरण,औद्योगिकीकरण तथा संचार सेवाओं का प्रचार-प्रसार।[1]

राष्ट्रवाद एक राजनीतिक विचार है जो आधुनिक विचारों के साथ आधुनिक समाज की स्थापना करता है। यह बहुसंख्यक लोगों असीम श्रद्धा, विश्वास व राष्ट्र के प्रति भक्ति है। यह राज्य को केवल राजनीतिक संगठन के रूप भी प्रदान करता है। यूरोपीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में सामान्य रूप से यह विचार दिया जाता है कि यह जैविक एकता, एक खास क्षेत्रफल एक समान अर्थव्यवस्था, समाज भाषा, राष्ट्र के प्रति समान सोच, सांस्कृतिक समानता जैसे तत्वों को समाहित करने वाला है।

राष्ट्रवाद की विवेचना प्रसिद्ध इतिहासकार ई.एच.कार के अनुसार[2] - एक सार्वभौम एवं सर्वमान्य सरकार की व्यवस्था जो वर्तमान या भूत की वास्तविकता हो, एक निश्चित क्षेत्रफल तथा इसके सभी व्यक्तिगत सदस्यों के बीच आपसी तालमेल हो। एक निश्चित सीमा हो। दूसरे राष्ट्रो व गैर राष्ट्रीय समूहों से भिन्न कुछ ऐसे मौलिक तत्व हो, एक राष्ट्र को अलग पहचान दे। व्यक्तिगत सदस्यों के हित सामूहिक हो। जन समूह में राष्ट्र के प्रति भावनात्मक झुकाव हो।

यह सत्य है कि राष्ट्रवाद के ये सारे तत्व तीसरे विश्व के देशों (Third World Countries) के राष्ट्रवाद के रूप में अपनी जगह नहीं बना सके इसके अतिरिक्त राष्ट्रवाद को उन राज्यों के साथ जोड़कर देखा

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

जाता है जिनकी पहचान राजनीतिक इकाई के रूप में हो चुकी है। 18 वीं शताब्दी के आरंभ से लेकर वर्तमान तक राष्ट्रवाद ने विभिन्न रूपों में अपनी मंजिल तय की 18 वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा 19 शताब्दी पूर्वार्द्ध शैशवकाल माना जाता है। इस काल में राष्ट्रवाद चारित्रिक रूप में अधिक उदार तथा अंतर्राष्ट्रीय था। इस दौर में इसने राष्ट्रीय भिन्निताओं को बना किसी भेदभाव के स्वीकारा, जिससे इस बात को बल मिला कि यह एक साझे संघर्ष के सहभागी है। लेकिन इस समय यूरोप के कुछ भाग में राष्ट्रवाद को अलग पहचान के साथ उभारा जा रहा है। इसका दूसरा काल 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्ति तक माना जाता है।

इस दौर में राष्ट्रवादी आंदोलनो ने व्यापक अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप को छोड़कर रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी का रूप अपना लिया। इस प्रवृत्ति का सबसे ज्यादा विकास दो विश्वयुद्धों के बीच के काल में हुआ। यहां तक कि गैर राष्ट्रवादी साम्यवादी आंदोलनों ने भी राष्ट्रवाद का चोला पहन लिया इसके अंतिक काल की शुरूआत द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्वार्द्ध में एशिया, अफ्रीका तथ लैटिन अमेरिका के राज्यों की स्वतंत्रता के साथ शुरू हुई अब राष्ट्रवादी आंदोलनो का केन्द्र यूरोप से तीसरे विश्व के देशों में आ गया इसका उदय मूल रूप से औपनिवेशिक साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष के परिणामस्वरूप हुआ। स्वतंत्रता के बाद भी इन देशों में यह प्रवृत्ति कायम रही और दूसरे विश्वयुद्ध के बाद भाईचारे के रूप में सामने आई गुटनिरपेक्ष आंदोलनों के द्वारा जो विश्वस्तर पर शक्तिशाली गुटों के विरोध स्वरूप थी।

शीतयुद्ध की समाप्ति और भूमंडलीकरण ने एक बार राष्ट्रवाद को उदार राष्ट्रवाद के रूप में मांग प्रशस्त किया है, जिसमें राजनीतिक सरोकारों को दरकिनार कर आर्थिक सम्बंधों को केन्द्र में रखा गया है। लेकिन यह सब निर्भर करेगा राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर होने वाली गतिविधियों से। इसकी रूपरेखा तथा भविष्य इनके बीच के संबधो और समायोजन क्षमता ही तय करेगी। उदारवाद, निजीकरण तथा वैश्विकरण, राष्ट्रवाद की परिकल्पना को एक नये रूप में ढाल रहा है।

भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा

अधिकांश यूरोपीय एवं भारतीय इतिहासकारों का मानना है कि भारतीय राष्ट्रवाद का उदय 19 वीं शताब्दी में हुआ है। सन् 1857 की क्रांति के बाद ही भारतीय राष्ट्रवाद का उदय सही मायनों में समझा जाता है। भारतीय राष्ट्रवाद की अपनी कुछ विशेषताएं है। भारतीय राष्ट्रवाद का उदय यूरोपीय सांचे में नहीं हुआ। भारतीय राष्ट्रवाद की प्रकृति व स्वरूप यूरोपीय राष्ट्रवाद से विल्कुल अलग रही है। अतः इसके दायरे में यूरोपीय राष्ट्रवाद के प्रकृति स्वरूप नहीं आते हैं यूरोपीय राष्ट्रवाद जैविक एकता, विशिष्ट क्षेत्रफल, एक समान अर्थव्यवस्था भाषाई समानता, राष्ट्र के प्रति एक सोच तथा सांस्कृतिक समानता तक ही सीमित है।[3] वहीं भारतीय राष्ट्रवाद का विकास सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि के साये में हुआ हैं, इसलिए इसकी प्रकृति और परंपरा यूरोपीय राष्ट्रवाद से अलग है।

भारतीय राष्ट्रवाद कुछ क्रांतिकारी विचारों या आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर होने वाले विकास या फिर सामाजिक परिवर्तनों का उत्पादन भी नहीं है। यह किसी भी तरीके से एक निश्चित दिशा में सामाजिक विकास भर नहीं था। बिपनचंद्र का मानना है कि ‘‘भारतीय राष्ट्रवाद उपनिवेशी भारत के केंद्रीय और मुख्य अंतर्विरोध (भारतीयों के हितों और उपनिवेशवाद के मध्य अंतर्विरोध) का उत्पाद था। यही इसका भौतिक आधार था। राष्ट्रीय आंदोलन को दीर्घकालिक गतिशीलता इस तथ्य से प्राप्त हुई कि इसने मुख्य अंतर्विरोध को पहचाना और उसे अपना आधार बनाया इस आधार पर और भारतीयों के समान हितों के प्रत्यक्ष ज्ञान तथा एक उपनिवेश में बसे व्यक्तियों के सामाजिक अनुभव के आधार पर आंदोलन ने भारतीय वास्तविकता का गहन अध्ययन किया और धीरे-धीरे एक सुस्पष्ट उपनिवेशवाद विरोधी विचार धारा तैयार

की।''[4] औपनिवेशिक ताकतों के फलस्वरूप उपजी पीड़ाओं ने यहाँ के नेताओं को ने एक ठोस राजनीति पर काम करने के लिए प्रेरित किया। जिसके कारण संघर्ष का मुख्य उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता हो गई।

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद आजादी के लिए संघर्ष का परिणाम था। औपनिवेशिक दासता के मकड़जाल से निकलने के लिए अपनाये जाने वाले तौर तरीकों ने भारतीय राष्ट्रवाद के स्वरूप को प्रभावित करता रहा। ये सारे तर्क भारतीय राष्ट्रवाद को उन आरोपों से मुक्त करते है कि भारतीय राष्ट्रवाद[5] बिना राष्ट्र के राष्ट्रवाद है और साथ ही साथ कैम्ब्रिज इतिहासकारों के उस दृष्टिकोण को नकारती है कि यहां राष्ट्रवाद का उदय आदर्शो विचारों तथा वैचारिक धाराओं को महत्व देने के बजाय नाम, पद, स्वार्थ तथा एक-दूसरे से आगे निकलने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप हुआ इसके बजाय भारतीय राष्ट्रवाद को राजनीतिक के स्वरूप में जिसकी जड़ औपनिवेश्कि सत्ता के विरूद्ध संघर्ष में निहित है समझा जाना अधिक प्रासंगिक और व्यापक होगा।

गाँधी एवं राष्ट्रवाद

भारतीय राष्ट्रवादियों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण नेता के रुप में गाँधी का आविर्भाव 1920 में हो गया था। 1945 तक वह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में छाये रहे। 1920 से 1945 तक के युग को, गाँधी युग, कहें तो गलत नहीं होगा।[6] प्रसिद्ध इतिहासकार विपन चंद्र का मानना है कि ''गाँधीजी का अध्ययन एक ऐसे राजनीतिक नेता के रुप में होना चाहिए जिसकी राजनीतिक रणनीति, दांव-पेंचों और संघर्ष की तकनीको ने करोड़ो व्यक्तियो को राजनीतिक रुप से सक्रिय बनाया। यही उनका भारतीय और संभवतः संसार के इतिहास में मूल योगदान है। हालांकि वे एक प्रतिभाशाली बुद्धिजीवी, विचारक तथा बहुसर्जक लेखक थे, परंतु वे अपने दो प्रमुख समकालीनों- लेनिन तथा माओ-की भांति कोरे सिद्धांतो में ही विश्वास नही रखते थे। इसलिए, उनकी रणनीति और उनके नेतृत्व में चलाए गए आंदोलन की रणनीति को उनके लेखन से नहीं बल्कि आंदोलन का अध्ययन करके समझना चाहिए-यद्यपि कभी-कभी उनके द्वारा कहे और लिखे गए शब्द भी हमारा मार्गदर्शन करते हैं।'' विपन चंद्र आगे लिखते हैं ''यह बड़े आश्चर्य की बात है कि गाँधी के समकलीन अथवा बाद के वामपंथी आलोचकों ने गाँधी के रणनीति को समझने का प्रयास नहीं किया और न ही एक वैकल्पिक रणनीति के दृष्टिकोण से उन्होंने गंभीरतापूर्वक इसकी समीक्षा की।''[7]

गाँधी जी ने राष्ट्रवाद को अलग ढंग से प्रस्तुत किया। गाँधीजी ने राष्ट्र को प्रजा (जनता) से जोड़ा। गाँधीजीके राष्ट्रवाद को उनके चिंतन से अलग नहीं किया जा सकता। यह सत्य है कि गाँधी जी ने कभी भी सीधे तौर पर राष्ट्रवाद पर अलग से अपना कोई विचार प्रस्तुत नहीं किया। इसलिये गाँधीजी के विचारों में राष्ट्रवाद को समझने के लिए उनकी विचारधारा सम्पूर्ण दर्शन का अध्ययन करना जरूरी है। उनके लिए राष्ट्रवाद भारत की आजादी हेतु निहित संघर्षो में समाहित था उनके विचारों को इस विषय को लेकर समझने के लिए इन दो चीजों पर गौर करना होगा कि गाँधी जी के मस्तिष्क में राष्ट्रवाद का उदय भारत में नहीं बल्कि दक्षिण अफ्रीका में हुआ। यह तथ्य गाँधीजी को अन्य भारतीय राष्ट्रवादियों से अलग करती है।

दूसरा, चम्पारण, खेड़ा या बारदोली के बजाय दक्षिण अफ्रीका की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर गाँधीजी ने अपने अद्भुत व अनुपम राजनीतिक दर्शन, तौर-तरीकों का विकास किया।[8] गाँधीजी ने की कभी भी एक जगह राष्ट्रवाद के बारे में कोई ठोस विचार व्यक्त नहीं किया है, इसलिए गाँधीजी के दृष्टिकोण में राष्ट्रवाद को समझने के लिए सम्पूर्ण गाँधी लेखन तथा साहित्य का अध्ययन करना जरूरी है। गाँधी जी के लेखन तथा साहित्य के अध्ययन के परिणामस्वरूप कुछ तथ्य निकलकर आये हैं।

गांधीजी के राष्ट्रवाद मूलतः अहिंसा और सत्याग्रह पर आधारित है। गाँधी जी के सम्पूर्ण चिन्तन प्रक्रिया और कर्म की केन्द्रीय विषयवस्तु है 'सत्य का आग्रह'। गाँधी जी के लिए 'सत्य' कोई दार्शनिक अवधारणा नहीं है- क्योंकि गाँधी जी शास्त्रीय दार्शनिक पद्धतियों की अधिक चिन्ता नहीं करते थे- बल्कि एक सीधी-साधी व्यावहारिक बात है - इसी सीधी-साधी व्यावहारिक शर्त पर गाँधी जी अपने चिन्तन और कर्म को संचालन करते थे। गांधीजी ने इसका सर्वप्रथम सफल प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों के लिए किया था। भारत आने के पश्चात् गांधीजी ने अपने सभी आंदोलनों का प्रमुख सिद्धांत सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह पर आधारित था। गांधीजी ने अपने जीवनकाल में इसकी उपयोगिता एवं क्षमता का प्रदर्शन न केवल राजनीतिक आजादी प्राप्त करने के लिए किया बल्कि शोषण, अत्याचार एवं अन्य बुराईयों के खिलाफ भी सफलतापूर्वक किया। गांधीजी का मानना था कि अहिंसा कायरों का हथियार नहीं बल्कि यह हथियार है उन साहसी और सबल मानवों का जो मानवता के नए संस्कृति को गढ़ना चाहते हैं। गाँधी जी साधन और साध्य की बात करते हुए दिखते हैं। साधन और साध्य की एकरूपता उनका ध्येय है। गाँधी जी कहते हैं कि ''साधन बीज है और साध्य-हासिल करने की चीज पेड़ है। इसलिए जितना सम्बन्ध बीज और पेड़ में है, उतना ही साधन और साध्य के बीच है।''[9] गाँधी जी का स्पष्ट मत है कि ''अगर यह दुनिया आज भी बची हुई- बनी हुई है, तो निश्चित ही इसकी शुरूआत दया और आत्मबल के आधार पर हुई है। दया और आत्मबल 'अहिंसा' के गुण हैं।'' गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका में किए गए आंदोलनों का आधार भी सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह ही था। गांधीजी के भारत में किए गए सभी आंदोलनों का आधार भी सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह ही था।

गाँधीजी का राष्ट्रवाद यूरोपीय देशों से कई मायनों में अलग था, उन्होंने वैसे राष्ट्रवाद को दरकिनार कर दिया जो हिंसा पर आधारित हो, जैसा कि यूरोपीय देशों में देखने को मिलता है। वे अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अहिंसा का उपयोग करना चाहते थे उनका मानना था ''प्रेम या आत्मा की ताकत के आगे हथियारों की ताकत निरीह व निष्प्रभावी है।''[10] गाँधीजी की नजरों में राष्ट्र की मुक्ति के लिए हिंसा का कोई स्थान न था। गाँधीजी के द्वारा संघर्ष के अहिंसक रुपों को अपनाए जाने के कारण ही लोगो ने सामूहिक रुप से आंदोलन में भाग लिया। यदि हिंसक रुपों को अपनाया जाता तो न ही इतनी बड़ी संख्या में लोग भाग लेते और न ही उसके प्रति तल्लीनता गहरी होती। एक हिंसक आंदोलन में भाग लेने की कीमत (दमन के अर्थों में) आवश्यक रुप से अधिक होती है और अपेक्षाकृत बहुत कम लोग आंदोलन से जुड़ पातें हैं। गांधीजी का मानना था कि हिंसा से आपसी संवाद खत्म होते है और समाज में हिंसक प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। उनका विचार था कि भारतीयों को ब्रिटिश सरकार की गलतियों का एहसास दिलाना चाहिए तथा सत्याग्रह द्वारा अपने आप को बदलने का प्रयास करना चाहिए। गांधीजी का मानना था कि अहिंसक जन-आंदोलन नैतिक रुप से शत्रु को गलत स्थिति में पहुंचा देते थे और जब पुलिस अधिकारी शांतिप्रिय सत्याग्रहियों के विरुद्ध सशस्त्र बलों का प्रयोग करते थे तब उनके दमनकारी शासन का भंडाफोड़ करते थे। वास्तव में एक अहिंसक जन-आंदोलन ब्रिटिश शासकों को दुविधाजनक स्थिति में पहुंचा देता था। एक ऐसे जन-आंदोलन का, जो अहिंसक था और जिसे अपार जन-समर्थन प्राप्त था, ब्रिटिश शासकों के पास इसका कोई जवाब नहीं था। गाँधीजी शुरु से ही यह अच्छी तरह जानते थे कि शक्तिशाली राज्य के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उनके पास भौतिक साधन नहीं हैं। दूसरी ओर अहिंसक संघर्ष में नैतिक शक्ति और जन-समर्थन का महत्व होता है और ऐसी स्थिति में निःशस्त्र व्यक्तियों को हानि नहीं होती।

गाँधीजी का मानना था कि ''सच्चा लोकतंत्र अथवा स्वराज झूठे और हिंसक साधनों का आश्रय लेकर कभी स्थापित नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनके प्रयोग का स्वाभाविक उप परिणाम यह होगा कि

आपकों अपने हर प्रकार के विरोध को समाप्त करने के लिए दमनचक्र चलाना होगा या विरोधियों को देश निकाला दे देना होगा इसे हम व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं कह सकते है व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल विशुद्ध अहिंसा के वातावरण में पल्लवित हो सकती है ।''[11]

गाँधीवादी लेखक एवं चिंतक अनिल दत्त मिश्र का मानना है कि ''एक नेता व विचारक के रुप में गाँधीजी की महानता इस बात में निहित थी कि उन्होंने अहिंसा के व्यक्तिपरक संदेश को जन-आंदोलन के सफल तकनीक में परिवर्तित कर दिया। महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी ने अहिंसा को व्यक्तिगत क्रिया और प्रेरणा से जोड़ा है, लेकिन गाँधीजी ने इसे सामाजिक व राजनीतिक तकनीकि में तब्दिल कर दिया। इस प्रकार प्राचीन भारतीय विचारकों और संतो के द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धांत को सामाजिक और राजनीतिक लक्ष्य पाने का एवं एक जरिया बनाने का प्रयास किया।''[12]

गांधीजी के राष्ट्रवाद का सिद्धांत जन आधारित था यही कारण रहा कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गाँधीजी के आगमन के बाद एक नवीन किस्म के राष्ट्रवाद का जन्म हुआ । प्रसिद्ध इतिहासकार बिपनचंद्र का भी मानना है कि ''गांधीवादी राष्ट्रवाद का मूलतत्व जनसाधारण और आंदोलन के संवर्ग में जागरुकता लाना और उनकी ऊर्जा और सर्जनात्मकता पर भरोसा करना था।''[13] बिपनचंद्र का भी मानना है कि ''गांधीवादी युग में, राष्ट्रीय आंदोलन ने अपनी संपूर्ण शक्ति जनसाधारण की उग्रता तथा आत्मबलिदान की भावना से प्राप्त की। गांधीवादी अथवा परिवर्तनवादी राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों की गतिविधि के रुप में प्रारंभ हो कर, बाद में राष्ट्रीय आंदोलन- युवकों, स्त्रियों, शहरी तुच्छ बुर्जुआ वर्ग, शहर तथा देहात के गरीबों, खेतिहर मजदूरों के बड़े वर्गों और छोटे जमींदारों को अपने साथ शामिल करने में सफल रहा।''[14]

प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री यशदेव शल्य का मानना है कि ''वे (गाँधीजी) भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के केवल अनेक में से एक नायक नहीं थे बल्कि एक तरह से एकमात्र नायक थे, अन्य लोग उनके सहयोगी मात्र थे। ऐसा सम्भवतः इसलिए संभव हो सका क्योंकि उन्होंने अपने को वास्तविक भारतीय जन की आदर्श प्रतिमा में ढाला, भारत के दीन, दुःखी, दरिद्र जन ने उनमें अपने नारायणीय अवतार को पाया। यदि वे भारतीय राजनीतिक मंच पर नहीं उतरे होते तो भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का रुप केवल मध्य वर्ग के असंगठित विद्रोह का ही रहा होता, एक व्यापक और जनक्रांति का रुप उसका नहीं होता।''[15] यशदेव शल्य आगे कहते हैं कि ''वे (गाँधीजी) ऐसे एकमात्र राजनीतिक नेता थे जो भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के नायक थे और अन्य सब उनके पीछे चलने को विवश थे।''[16]

गांधीजी के आगमन ने राष्ट्रवाद आंदोलन को एक नई दिशा व दृष्टि दी इससे आंदोलन का स्वरूप बहुजन व बहुवर्ग आधारित हो गया अपने देशी गतिविधियों के कारण इसने एक अलग पहचान बनाई। गांधीजी ने ही सर्वप्रथम राजनीतिक गतिविधियों का आधार जनसाधारण को बनाया तथा उन्होंने यह पहचाना कि एक जन-आंदोलन तब ही विकसित हो सकता है और सफलता की ओर बढ़ सकता है जब जनसाधारण राजनीति का उद्देश्य ही नहीं बल्कि विषय हों। गांधीजी ने जनसाधारण की उपनिवेश विरोधी जागरुकता को अपना आधार बनाया और वैज्ञानिक समझ के आधार पर जागरुकता को और अधिक शिक्षित और विकसित किया। गांधीजी जानते थे कि एक जन-आंदोलन को लोगों की सक्रिय भागीदारी पर आधारित होना होता है और जन-आंदोलन कभी भी चंद कार्यकर्ताओं अथवा पार्टी के द्वारा अधिक समय तक नहीं चलाया जा सकता है। 'करोड़ो गूंगे व्यक्तियों की शक्ति के साथ ही' गांधीजी ने 1942 में ''ब्रिटीश साम्राज्य की ताकत का प्रतिरोध करने की योजना बनाई।[17]

गाँधीजी ने सर्वप्रथम बिहार के चंपारण में किसानों के हित के लिए अहिंसक आंदोलन शुरु किया, जिसमें उनका प्रयास सफल रहा। इसी प्रकार गुजरात के खेड़ा के किसानों के लगान माफी के लिए अहिंसक आंदोलन प्रारंभ किया तथा सन् 1918 में अहमदाबाद के मिल मजदूरों के हक के लिए आंदोलन एवं बारदोली जैसे दूर दराज क्षेत्रों में अपना प्रयोग कर आंदोलन से लोगों को जोड़ा। देशव्यापी जन आंदोलन जैसे असहयोग, खिलाफत, सविनय अवज्ञा आंदोलन को लोगों से जोड़ा भारत छोड़ो जैसे अत्यंत प्रभावी आंदोलनों के द्वारा देश के कोने कोने में हर वर्ग और समुदायों के बीच अपनी बात पहुँचाई तथा साझे लक्ष्य से प्रेरित कर राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की और इस तरह प्रथम विश्वयुद्ध के समय तक जो आंदोलन कुछ खास लोगों तक सीमित था उसने हिंदुस्तान के जनमानस को आंदोलित स्पंदित व सक्रिय कर दिया।[18] गांधीजी का स्पष्ट मानना था कि नेतागण आंदोलनों को तैयार नहीं कर सकते, उन्हें जनता ही तैयार करती है। नेतागण आंदोलन को तब ही शुरु कर सकते हैं जब वे सही रुप से लोगों की मनोदशा को भांप लें। परंतु साथ ही साथ उनका मानना था कि किसी भी जन-आंदोलन के लिए नेतृत्व अनिवार्य होता है जो उसे दिशा प्रदान कर सके। यह वही समय था जब कांग्रेस पर गाँधीजी की पकड़ मजबूत थी इसलिए इस समय कांग्रेस के सभी प्रयासों में गांधावादी विचारधारा की प्रमुख व निर्णायक भूमिका थी। कांग्रेस के सभी कार्यक्रम 'व्यावहारिकता व अध्यात्मिकता' पर आधारित थे। इस परिपेक्ष्य में विपिन चन्द्र का यह कथन उल्लेखनीय है कि उपनिवेश विरोधी विचारधारा के साथ-साथ स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिकता, आर्थिक विकास, स्वतंत्र व संयुक्त राजनीति तथा गरीबोन्मुखी विचारों की प्रेरणा ने कांग्रेस को दशा व दिशा बदल दी तथा वह इस बात में सक्षम व समर्थ हुई कि वह राष्ट्रीय आंदोलन को लोकप्रिय जन आंदोलन का रूप प्रदान कर सके।

यद्यपि गाँधीजी इस बात को भलीभांति जानते थे कि इस तरह के आंदोलन का भविष्य लंबा नहीं तथा उसे लंबे समय तक जारी नहीं रखा जा सकता इसलिये बीच बीच में उन्होंने विराम की नीति अपनाई जों आगे के आंदोलनों में इस नीति ने उर्जा भरने का काम किया इस तरह गाँधीजीने संघर्ष विराम संघर्ष की नीति को अपना हथियार बनाया[19] ताकि आंदोलन को लंबे समय तक कायम रखा जा सके।

गाँधीजी के राष्ट्रवाद का सबसे महत्वपूर्ण पहलू रचनात्मक कार्यक्रम था। इसमें आंदोलन को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए गाँधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से तेरह विंदुओं को तय किया इन कार्यक्रमों में मुख्य रुप से शामिल थे खादी को बढ़ावा, बुनाई, ग्रामीण उद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा, साम्प्रदायिक एकता, छुआछूत उन्मूलन, मद्यनिषेध, महिला सशक्तीकरण, स्वास्थ्य व सफाई, राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम तथा ट्रस्टीशिप के द्वारा आर्थिक समानता का प्रचार-प्रसार था। सबसे अधिक इसका अर्थ गांवों में जाना और ग्रामीणों के साथ अपनी पहचान बनाना था। सैकड़ो आश्रम, जो सारे देश में फैल गए और विशेष रुप से गांवों में स्थापित किए गए, रचनात्मक कार्य का प्रतीक बन गए। इन आश्रमों में सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओ को खादी और सूत उत्पादन और निम्न जातियों और आदिवासियों के मध्य कार्य करने का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाने लगा।[20]

रचनात्मक कार्य का एक लाभ यह भी था कि इसमें बड़ी संख्या में लोग सम्मिलित हो जाते थे। इसकी तुलना में संसदीय तथा बौद्धिक कार्य तो कुछ ही लोग कर सकते थे जबकि रचनात्मक कार्य में लाखो लोग शामिल हो सकते थे। इसके अतिरिक्त बहुत से कारणों से सभी लोग जेल नहीं जा सकते थे। परंतु जो व्यक्ति भी अपनी सामर्थ्य अनुसार देश की आजादी में अपना योगदान देना चाहता था वह सरलता से रचनात्मक कार्य में भाग ले सकता था।[21]

रचनात्मक कार्यकर्ता पक्के तौर पर धर्मनिरपेक्ष थे और उनके द्वारा हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए

किए गए कार्य ने जनसाधारण को एकताबद्ध किया-इसे किसी भी रुप में एक प्रमुख कार्य कहा जा सकता है। हरिजनों तथा आदिवासियों-जो कि कृषि मजदूरों के एक बहुत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करते थे-के उत्थान का कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण था, क्योंकि उनके समर्थन के बिना उपनिवेशवाद के विरुद्ध किसी भी प्रकार का, सक्रिय अथवा निष्क्रिय, एकताबद्ध संघर्ष संभव नहीं हो सकता था। यह भी संभव हो सकता था कि संघर्ष के दौरान उपनिवेशी अधिकारी उनका प्रयोग करके ग्रामीण जनता में विभाजन कर देते। खादी और हरिजन कार्य का एक दूसरा महत्व भी था। उनके सामाजिक और आर्थिक उत्थान के बिना वे व्यक्ति जिनका सदियों से दमन होरहा था किसी भी प्रकार के संघर्षो में भाग लेने की सोच भी नहीं सकते थे। कुछ वर्तमान मिथकों के विपरीत, अत्यंत गरीब और उत्साहहीन व्यक्तियों के लिए लड़ना आसान नहीं होता। रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने इन वर्गों के दिलों में आशा की नई चिंगारी फूंकी, उनके भय को समाप्त करने में उनकी सहायता की, उन्हें प्रशिक्षित किया, स्वावलंबी बनाया और कुछ व्यक्तियों को आजादी के संघर्ष से जुड़ने और अपना सामाजिक तथा आर्थिक विकास करने योग्य भी बना दिया।[22]

गाँधीवादी राष्ट्रवाद एक व्यापक फलक का राष्ट्रवाद था जो संकुचित वा सांप्रदायिक दृष्टि से परे और सभी जातियों दबे कुचले व समाज के पिछड़े तबको को एक समान धरातल पर लाने की बात करता है यह राष्ट्रवाद सामाजिक और आर्थिक खाईयों को पाटना चाहता था। धर्म निरपेक्षता के प्रति उनके विचार पर विवाद की संभावना है फिर भी धर्म आधारित संकुचित विचारों से वे परे रहे है उन्होंने धर्म को न केवल व्यक्तिगत दृष्टि से देखा बल्कि सांगठनिक स्तर पर भी गहरी पड़ताल की ओर साथ ही धर्म को काल्पनिक व वास्तविक तत्वों के बीच स्पष्ट सीमा रेखा निर्धारित की यह सर्वविदित है कि वे हिन्दू धर्म से काफी प्रभावित थे पर किसी भी मायने में उनमें हठधर्मिता नाम की चीज देखने को नहीं मिलती वे हिन्दू मुस्लिम दोनों समतामूलक दृष्टि से देखते थे गाँधीजी रूढ़िवादी राष्ट्रवादी नहीं बल्कि उनकी विचारधारा अंतर्राष्ट्रीयवाद से अधिक प्रेरित थी। उनका राष्ट्रवाद मानवता पर आधारित था।

गांधीजी का राष्ट्रवाद समाज के सभी तबकों के साथ बिना किसी भेदभाव के सामूहिक सोच व लक्ष्य की अभिव्यक्ति थी वे जाति या वर्ग के आधार पर पृथकतावादी दृष्टिकोण के खिलाफ थे उन्होंने जातीय ऊँच नीच के खिलाफ हमेशा आवाज उठायी और भारत से छुआछूत मिटाने का अथक व गंभीर प्रयास किया वे हमेशा से एक ऐसे राष्ट्रवाद के पक्षधर थे जो विभिन्न वर्गो समुदायों तथा बहुलतावादी संस्कृति पर आधारित हो भारत से छुआछूत को हटाने के लिए उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में काफी परिवर्तन किये दक्षिण अफ्रीका में गाँधीजी के सहयोगकियों में सभी जातियों व समुदाय के लोग शामिल थे। उन्होंने अछूतों को 'हरिजन' नाम दिया और फिर इसी नाम ऐसे उन्होंने साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया। यह पत्रिका समाज में निचले तबकों की समस्याओं पर केन्द्रित थी। गाँधी जी का मानना था कि ब्रिटिश सरकार इसी जात पात के आधार पर लोगों बांटकर शोषण कर रही है। जैसा कि 1909 के एक्ट के हिंदु-मुस्लिम के बीच खाई पैदा की थी अतः भारत की एकता और अंखंडता को रखने के लिए गाँधीजी ने ब्रिटिश सरकार के सारे कपटपूर्ण नीतियों को कमजोर करने की कोशिश की जिससे भारतीय राष्ट्रवाद कमजोर हो सकता था। उन्होने पूना पैक्ट के द्वारा दलितों के पृथक निर्वाचन को अस्वीकार करते हुए दलितों के आरक्षण को स्वीकार किया। 1932 में जेल से छूटने के बाद छुआछूत को मिटाने के लिए उन्होंने 12500 मील की पैदल यात्रा की उन्होंने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए 'हरजिन' कोष की स्थापना की।[23]

गाँधीजी का राष्ट्रवाद धर्म से प्रेरित होने के बावजूद पंथनिरपेक्ष प्रकृति वाला था। भीखू पारेख अपने ग्रंथ 'गांधीजी पॉलिटिकल फिलॉसफी : ए क्रिटिकल एग्जामिनेशन' लिखते है कि 'यद्यपि गाँधीजी की नजरों में

भारत विभिन्न धर्मो भाषाओं, पंथों तथा जातियों का देश था, फिर भी जब कभी संश्लेषण विश्लेषण व पारस्परिक अस्तित्व की बात आयी तो अनजाने ही वे हिंदुत्व की तरफ झुके नजर आये।' गाँधीजी द्वारा बार-बार धर्म की बात करने के उनके विचारों में थोड़ी अस्पष्टता और उलझन दिखाई देती है। धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक था, वे धर्म में मिले तमाम रूढ़ियों रिवाजों और अंधविश्वासों को तोड़ना चाहते थे।[24] राष्ट्र के संदर्भ में भी गाँधी की प्रवृति धर्मनिरपेक्ष थी। गाँधीजी के धार्मिक विचारों के संदर्भ में विद्वानों ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये एम.एन. राय प्रारंभ में गाँधीजी द्वारा 'राजनीतिक व धर्म के तालमेल के कट्टर आलोचक थे लेकिन बाद में उन्होंने समझा कि गाँधीजी के धार्मिक विचारों की जड़ नैतिक मानवतावादी तथा वैश्विक थी तथा उनमें किसी व्यक्तिपंथ, धर्म, समाज या राष्ट्र के प्रति उनके मन में लेशमात्र भी दुराग्रह नहीं था। इसमें शक नहीं कि गाँधीजी धर्म-निरपेक्ष तथा धार्मिक आदर्शो के प्रति समर्पित ही नहीं बल्कि इसको अपनाने में अग्रदूत की भूमिका निभाई वे साम्प्रदायिक मतभेदो को आपसी मेल जोल के साथ हल करना चाहते थे जिसमें समुदायों की भागीदारी अनिवार्य थी वे एक ऐसे राष्ट्रवाद का निर्माण करना चाहते थे जिसकी बुनियाद सद्‌भावना सहअस्तितत्व तथा समन्वय पर आधारित थी न कि समावेशीकरण, सम्मिश्रण तथा संयोजन पर कुछ विद्वानों का मत यहाँ तक है कि अंतिम दिनों में उनका धार्मिक बहुलतावाद की सीमा 'बहुल' हिदुत्व से आगे जाकर बहुधर्मी तानों बानों गुंथ गई थी तथा उनके धार्मिक विचारों व दर्शन का स्वरूप पूर्णतः वैश्विक हो गया था।

डेविड हार्डिमैन ने अपनी पुस्तक ''गाँधी इन हिज टाइम एंड आवर्स'' में लिखतें हैं कि ''गांधीजी का राष्ट्रवाद 'समायोजन' पर आधारित था, जिसमें भारत के विभिन्न समुदायों का राष्ट्रीय समरसता कायम करना शामिल था।''[25] उनकी राष्ट्रवादी अवधारणा में न केवल धार्मिक समूह बल्कि जातियां और प्रजातियां भी शामिल थी। रविन्द्र कुमार अपने लेख ''कास्ट, कम्यूनिटी और नेशन? गाँधीजी क्वेस्ट फॉर ए पॉपुलर कन्सेन्सश इन इंडिया'' में कहते हैं ''चूंकि गांधीजी के मानस में भारत की वास्तविक तस्वीर वर्गो, जातियों, समुदायों तथा धार्मिक समूह के एक स्वच्छंद घनीभूत के रूप में थी, जो वे इस उपमहाद्वीप के जनमानस में राष्ट्रीय भावना भरने में जितना समर्थ थे उतना इनके पूर्व न कोई था और न बाद में हुआ।''[26] ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के अपने कार्यक्रम में वे सभी जातियों, वर्गो, समुदायों, धर्मावलंबियों को एक मंच पर लाये तथा अपने साझे राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित कर लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया।[27]

गाँधीजी के राष्ट्रवाद में अंतर्राष्ट्रीयतावाद का समावेशित था। गाँधीजी कहते थे कि ''मैं अपने देश की स्वतंत्रता इसलिए चाहता हूं ताकि दूसरे देश मेरे स्वतंत्र देश से कुछ सीख सकें और मेरे देश के संसाधनों का उपयोग मानव जाति के हित के लिए किया जा सके। जिस प्रकार राष्ट्रप्रेम का मार्ग आज हमें सिखाता है कि व्यक्ति को परिवार के लिए प्राणोत्सर्ग कर देना चाहिए, परिवार को गांव के लिए मिट जाना चाहिए, गांव को जिले, जिले को प्रांत और प्रांत को देश के लिए अपनी बली दे देनी चाहिए, उसी प्रकार देश के लिए स्वतंत्र होना इसलिए आवश्यक है कि यदि आवश्यकता हो तो वह विश्व के हित के लिए स्वयं को न्यौछावर कर सके। अतः राष्ट्रीयता के प्रति मेरा प्रेम अथवा राष्ट्रीयता की मेरी धारणा यह है कि मेरा देश स्वतंत्र हो ताकि अगर आवश्यकता पड़े तो मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए वह स्वयं को होम कर सके। इस धारणा में प्रजातीय घृणा का कोई स्थान नहीं है। यही हमारी राष्ट्रीयता की भावना होनी चाहिए।''[28]

गाँधीजी कहते थे कि ''हमारी राष्ट्रीयता किसी अन्य देशों के लिए संकट का कारण नहीं बन सकती, क्योंकि हम न किसी का शोषण करेंगे, न किसी को अपना शोषण करने देंगें। हम स्वराज्य के माध्यम से सारी दुनिया की सेवा करेंगे।''[29] गाँधीजी का कहना था कि जो व्यक्ति राष्ट्रवादी नहीं है, वह अंतर्राष्ट्रवादी नहीं हो

सकता। अंतर्राष्ट्रीयवाद तभी संभव जब राष्ट्रवाद अस्तित्व में आ जाए अर्थात जब भिन्न-भिन्न देशों के लोग संगठित हो चुके हों और वे एक व्यक्ति की तरह काम करने योग्य बन जाए।[30]

गाँधीजी का मानना था कि ''राष्ट्रवाद बुरी बात नहीं है; बुरी बात तो है संकीर्णता, स्वार्थपरता और अलगाव का भाव, जो वर्तमान राष्ट्रों को तबाह करके अपने को आबाद करना चाहता है। मेरा ख्याल है कि भारत के राष्ट्रधर्म ने एक जुदा ही रास्ता दिखाया है। वह सारी मनुष्य-जाति की हित-साधना और सेवा के लिए अपने को सुसंगठित या पूर्ण विकसित करना चाहता है। मुझे अपनी देशभक्ति या अपने राष्ट्रवाद के विषय में कोई संदेह नहीं है। ईश्वर ने मुझे भारतवर्ष के लोगों में जन्म दिया है, इसलिए यदि मैं उनकी सेवा में गफलत करुं तो मै अपने सिरजनहार का अपराधी बनूंगा। यदि मैं उनकी सेवा करना नहीं जानता तो मुझे मानव-जाति की सेवा करना कभी नहीं आएगा; और जब तक मैं अपने देश की सेवा करता हुआ किसी दूसरे राष्ट्र को नुकसान नहीं पहुंचाता तब तक मैं पथभ्रष्ट नहीं हो सकता।''[31]

आलोचना

सर्वप्रथम गाँधीजी की सर्वाधिक आलोचना राजनीति के साथ धर्म के घाल-मेल के कारण हुई है। राष्ट्रवाद के मुख्य एजेंडे की शुरूआत खिलाफत आंदोलन के साथ हुई जब गाँधीजी ने इस आंदोलन का पूर्ण समर्थन किया लेकिन ऐसा विचार किया जाता है कि खिलाफत और असहयोग आंदोलन हिन्दू मुस्लिम एकता से प्रेंरित था, परंतु सम्पूर्ण रूप से देखा जाये तो इस आंदोलन ने राजनीति के संदर्भ में जनमानस को परिपक्व होने से रोका।[32] गाँधीजी पर यह आरोप लगाया जातात है कि उन्होंने राजनीतिक विकास को गलत दिशा में खींचा क्योंकि गाँधीजी कि हिन्दू मुस्लिम एकता की खोज राजनीति से धर्म व सम्प्रदाय आधारित मुद्दों पर केंद्रित थी इस कारण कुछ विद्वान गाँधीवादी सोच को धर्मनिरपेक्ष नहीं मानते क्योंकि उन्होनें किसी न किसी रूप में राजनीति के साथ धर्म का तालमेल किया। गाँधीजी भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच संबधो का मूल्यांकन करने में असमर्थ थे। गाँधीजी अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक विश्वास करते रहे कि दोनों कौमों का की साझा संस्कृति है अतः इनके बीच खाई पैदा होने की कोई संभावना ही नहीं हैं, ब्रिटिश शासकों ने इन परिस्थितियों का फायदा उठाया और बांटो और राज करों की नीति का उपयोग कर अपना काम निकालते रहे। गाँधीजी हिंदु मुस्लिम मतभेद में गहरी आर्थिक व ऐतिहासिक जड़ो को समझने में असमर्थ रहे।[33]

दूसरी आलोचना इस कारण होती है कि गाँधीजी जन-आंदोलनों का उपयोग सिर्फ प्रदर्शनकारी के रूप में करते थे। वे जन-आंदोलनों का मतलब सिर्फ मात्र में देखना चाहते थे।[34] औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ जन-आंदोलनों का कोई ठोस एजेन्डा न था। लोगों की भागीदारी का मतलब सिर्फ प्रदर्शन भर था प्रदर्शनकारियों को भूमिका सिर्फ पीछे-पीछे चलना मात्र था। उनकी भूमिका नाममात्र की होती थी।[35]

आलोचना का तीसरा कारण यह है कि छुआछूत उन्मूलन तथा हरिजन उत्थान भी गाँधीवादी कार्यक्रम में पूर्णतः शामिल नहीं था हालांकि गाँधीजी ने इसे पूरे जोश के साथ उठाया पर स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य में इसकी गति धीमी हो चुकी थी। कुछ आलोचकों का यह भी मत है कि हरिजन सेवक संघ की स्थापना समाज में हरिजनों के उत्थान के लिये नहीं बल्कि एक एजेंसी के रूप में की गई थी।[36] मंदिरों में प्रवेश के मुद्दे पर अम्बेडकर ने यह महसूस किया था कि गाँधीजी का रूप बेहद अनिच्छा भरा और आधे अधूरे वाला था।[37] इसी दोहरे रूख के कारण दलितों में पृथक राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग शुरू हो गई थी साइमन कमीशन तथा गोलमेज कांफ्रेस में उठाई गई मांग इस सोच की ओर संकेत करती है यहॉ पर भी गाँधीजी ने इस मांग को रोकने के लिए आमरण अनशन शुरू कर दिया पर इस मुद्दे पर गाँधीजी द्वारा की गई कार्यवाही को स्वतंत्रता प्राप्ति के दृष्टिकोण से उचित ठहराया जा सकता है। लेकिन इसने समाज में उच्च्व व निम्न वर्गो के बीच मनमुटाव का

बीज बो दिया राष्ट्रीय एकता कायम करने के बजाय गांधीवादी कार्यक्रमों ने बहुत हद तक जातीय मनमुटाव स्थापित किया।

गाँधीजी की उपयुक्त सारी आलोचनाए कई स्तरों पर विसंगतिपूर्ण और अतिश्योक्तिपूर्ण हो सकती है क्योंकि गाँधीजी के विचारों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे उनके संघर्ष को स्वतंत्रता प्राप्ति के ढांचे में रखकर व्यापक दृष्टिकोण के साथ देखने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य ने कभी-कभी बहुत सारे मुद्दे को मुख्य धारा में रखा तो बहुत सारे को गौण यदि व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाए जो धर्म के मामले में गाँधीजी का विचार बहुत ही उदार व्यापक और धर्मनिरपेक्ष था। देश की आजादी ही उनके सारे लक्ष्यों में एक सर्वोच्च लक्ष्य था और इसी को पाने के लिए वे कई मुद्दो पर समझौते करते रहे यह मानना विद्वानों की सर्वथा भूल है। गाँधीजी कभी भी अपने सार्वजनिक जीवन सार्वभौमिक मूल्यों एवं सिद्धांतो से कभी समझौता नहीं किया। गाँधीजी ने तो स्वयं यह कहा कि 'जब कभी मेरे विचारों में द्वन्द्व लगे या अंतर विरोध लगे तो मेरे द्वारा बाद में कहे हुए को आप स्वीकार करें'। गाँधीजी सत्य के साथ प्रयोग कर रहे थे और सत्य के प्रयोग में अंतिम कोई पड़ाव नहीं होता गाँधीजी का राष्ट्रवाद प्रजा के हिंतों की रक्षा करता है गाँधीजी के राष्ट्र का अर्थ ही था प्रजा गाँधीजी का राष्ट्रवाद प्रजा उन्मुखी था। गाँधीजी का राष्ट्रवाद एक स्पष्ट रूपरेखा हमारे सामने प्रस्तुत करता है। गाँधीजी का राष्ट्रवाद समुदाय, जाति और अन्य कुंठित विचारधाराओं से ऊपर था राष्ट्र के संदर्भ में भी व एक विशेष क्षेत्र से बंधे हुए नहीं थे बल्कि उनका राष्ट्रवाद अंर्तराष्ट्रीयतावाद का समर्थक था और इस संदर्भ में एक में एक दूसरे के पूरक मानते है धर्मनिरपेक्षता के संदर्भ में उनकी सोच व्यापक थी वे मुस्लिम को भारतीय सभ्यता से अलग स्वतंत्र समुदाय के रूप में मानने से इनकार करत थे। कुछ विद्वानों यह माना कि यह गाँधीजी इसके लिए वे व्यापक जन आंदोलनों में उनकी सफलता मिली उनके विचारों में जो विरोधाभास हो पर इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने भारत जैसी विविधपूर्ण सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों वाले देश को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया।

इतिहास विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रिय विश्वविद्यालय
सागर (म.प्र.) 470003

सन्दर्भ -

1. *मिश्र, अनिल दत्त, गांधी एक अध्ययन, पियरसन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 186*
2. *कार., ई.एच., नेशनलिज्म, 1939, पृ. 20*
3. *वही*
4. *चंद्र, बिपन (अनु.), भारत का राष्ट्रीय आंदोलन, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटरर्स(प्रा.लि.), 2014, नईदिल्ली, पृ. 14*
5. *अलयोसिस, नेशनलिज्म विदउट ए नेशन इन इंडिया ऑक्सपोर्ड, दिल्ली, 1997 से उद्धृत।*
6. *राय, एम. सत्या, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2016, पृ. 314*
7. *चंद्र, बिपन(अनु.), पूर्वोक्त, पृ. 25*
8. *एंथोनी जे. परेल, से गाँधी हिंद स्वराज एंड अदर राईटिंग, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1997, पृष्ठ XXIA*
9. *गाँधी, मोहनदास, हिन्द स्वराज्य, नवजीवन, अहमदाबाद, 1909, पृ. 53-54*
10. *गांधी, एम.के, हिन्द स्वराज, सी डब्लूयू एस जी, खण्ड 10, पृ. 290*
11. *मिश्र, अनिल दत्त, पूर्वोक्त, पृ. 174*

12. वही, पृ. 178
13. चंद्र, बिपन (अनु.), पूर्वोक्त, पृ.11
14. वही, पृ. 9
15. शल्य, यशदेव, भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम और मूल्य विमर्श, शर्मा, अम्बिकादत्त (संपादक), उन्मीलन, वर्ष 31, अंक 1, जनवरी-जून, 2017, पृ. 8
16. वही, पृ. 8-9
17. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खण्ड 76, पृ. 397
18. सिन्हा, मनोज(सं), गांधी अध्ययन, ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2010, पृ.103
19. चंद्र, बिपन(अनु.), पूर्वोक्त, पृ. 39
20. वही, पृ. 42
21. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खण्ड 55, पृ. 429
22. चंद्र, बिपन(अनु.), पूर्वोक्त, पृ. 43-44
23. मिश्र, अनिल दत्त, पूर्वोक्त, पृ. 189
24. पारिख, भीखू, गांधीज पॉलिटिकल फिलॉसफी : ए क्रिटिकल एग्जामिनेशन, दिल्ली, अजंता, 1995, पृ. 189
25. हार्डिमैन, डेविड,'गाँधी इन हिज टाइम एंड आवर्स', परमानेन्ट ब्लैक, नई दिल्ली, 2003, पृ.12 से उद्धृत।
26. कुमार, रविन्द्र,'कास्ट, कम्यूनिटी और नेशन ? गाँधीज क्वेस्ट फॅार ए पॉपुलर कन्सेन्सश इन इंडिया', (सं) एसेंज इन द सोशल हिस्ट्री ऑफ मार्डन इंडिया, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 51 से उद्धृत।
27. सिन्हा, मनोज(सं), गांधी अध्ययन, ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2010, पृ.103
28. प्रभु, आर. के., एवं राव, यू. आर.(सं.), महात्मा गाँधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, नौंवा संस्करण, 2012, पृ. 420
29. वही
30. वही
31. यंगइंडिया, 18-06-1925
32. अलयोसिस, जी., नेशनलिज्म विदाउट ए नेशन इन इंडिया, दिल्ली, ऑक्सपोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.184 से उद्धृत।
33. मिश्र, अनिल दत्त, पूर्वोक्त, पृ. 192
34. ब्राउन, जूडिथ, गांधीज राइज टू पॉवर, लंदन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972, पृ. 345
35 घोष, सुनिति कुमार, इंण्डिया एण्ड दी राज, प्राची, कलकत्ता, 1989, पृ. 23
36. अम्बेडकर, बी.आर, ब्हाट कांग्रेस एण्ड गाँधी हैव इन टू अनटचेबल्स, बाम्बे ठक्कर एंड कं, 1945, पृ. 143
37. वही, पृ.107

भरहुत की कला में प्रतिबिम्बित लोक जीवन

कृष्ण देव पाण्डेय

बौद्ध स्तूप और बौद्ध कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध पुरास्थल भरहुत विंध्य पहाड़ियों के बीच मध्य प्रदेश के सतना जिले की नागोद तहसील में टोंस नदी के किनारे स्थित है। सतना रेलवे स्टेशन से भरहुत की दूरी सत्रह किलोमीटर के आस-पास है। मध्य रेलवे के ऊँचेहरा स्टेशन से भरहुत की दूरी सात किलोमीटर है। कनिंघम के अनुसार भरहुत का प्राचीन नाम 'बगुद' था।

भारत की प्राचीन बौद्ध कला में भरहुत का अग्रणी स्थान है। इसकी अनुपम एवं सौन्दर्यपूर्ण कलाकृतियां इसे महत्वपूर्ण स्थान दिलाती हैं। भरहुत स्तूप की कला में तत्कालीन लोकजीवन, धार्मिक विश्वास, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन, उत्सव आदि का अंकन बड़ी ही कुशलता के साथ किया गया है।

भरहुत के ध्वंशावशेष 12 मील की परिधि में बिखरे पड़े हैं। माना जाता है कि भरहुत प्राचीन समय में उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम जाने वाले राजमार्ग से जुड़ा था। श्रावस्ती और कौशाम्बी को चेदि जनपद और दक्षिण कोसल से मिलाने वाले पूर्वी पथ के मध्य भाग में यह स्थित था।

मगध से सोनघाटी तक का स्थल तथा कलिंग के समुद्र तट से गोंडवाना के वन-प्रदेश का भूखण्ड इस राजमार्ग पर स्थित थे। भरहुत स्तूप का निर्माण तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया गया। इन महामार्गों से गुजरते हुए छोटे-बड़े व्यापारी यहाँ पर रूकते थे तथा धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत होकर यहां पर श्रद्धानुसार भेंट अर्पित करते और दान दिया करते थे। इस तरह से यह एक प्रमुख धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र था। व्यापारिक मार्ग पर स्थित होने के कारण इसका महत्व और भी बढ़ गया।

भरहुत स्तूप को प्रकाश में लाने का श्रेय अलेक्जेंडर कनिंघम महोदय को है। नवम्बर 1873 में जब कनिंघम ने इस स्तूप को खोजा उस समय यह ध्वस्त अवस्था में एक ऊँचे टीले में दबा था। 1874 में कनिंघम ने भरहुत के ध्वस्त स्तूप का पुनरुद्धार कराया। पकी ईटों से बने भरहुत स्तूप की गोलाकार वेदिका पूर्णतया पाषाण निर्मित थी जिसमें संभवतः चार तोरणद्वार लगे थे। कनिंघम महोदय को भरहुत वेदिका के 80 स्तम्भों में से 48 स्तम्भ और 40 उष्णीष में से 16 उष्णीष ही प्राप्त हुआ था। वेदिका का सम्पूर्ण गोल घेरा 380 फुट के आकार में था। भरहुत स्तूप का व्यास 67 फुट 8.5 इंच था। इसमें स्तम्भ सूची तथा उष्णीष से युक्त वेदिकाएं थी। (चित्र संख्या 1, 2)

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

(चित्र 1) वेदिका उष्णीष पट्ट

(चित्र 2) तोरण द्वार

भरहुत स्तूप के अवशेष वर्तमान में अपने मूल स्थान पर नहीं है, परन्तु उसकी वेष्टिनी का एक भाग तथा एक तोरण भारतीय संग्रहालय कलकत्ता तथा प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित है। स्तूप की कुछ सामग्री रामवन-संग्रहालय, सतना, भारतकला भवन, वाराणसी, पुरातत्त्व संग्रहालय, सागर विश्वविद्यालय, प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, मुम्बई में है।

कनिंघम के अनुसार ईटों से निर्मित मूल स्तूप का निर्माण मौर्यकाल में हुआ था। डॉ. बेनी माधव बरूआ के अनुसार स्तूप का निर्माण तीन बार में हुआ। पहली बार प्राक् शुंग युग में और दो बार शुंग युग में। इन तीनों कालों की तिथियां उन्होंने मौर्य अथवा मौर्योत्तर काल से लेकर लगभग ई.पू. सौ वर्ष के समय तक निर्धारित की।[1] स्तूप के पूर्वी तोरणद्वार के बाएं स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख का इस संदर्भ में उल्लेख करना आवश्यक है- ''सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस पौतेण गोतीपुतस आगरजुस पुतेन वाछिपुतेन धनभूतिन कारितं तोरनं सिलाकंमतो च उपंण।''[2] अर्थात् इस तोरण की स्थापना शुंगों के शासनकाल में विश्वदेव के पौत्र, आगरजु के पुत्र राजा धनभूति द्वारा की गयी। बुल्हर और कनिंघम ने इस तोरण के निर्माण की तिथि 150 ई.पू. बतायी है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भरहुत स्तूप की वेदिका तथा तोरण का निर्माण शुंग राजाओं के शासनकाल में द्वितीय शताब्दी ई.पू. में किया गया होगा। इन सभी आधारों पर ऐसा माना जा सकता है कि भरहुत के स्तूप का निर्माण लगभग ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक अपने सम्पूर्ण रूप में हो चुका होगा। संभवतः स्तूप का आकार अर्द्धगोलाकार था।[3]

कला की दृष्टि से भरहुत कला का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। यह पूर्णरूपेण भारतीय कला शैली है। इसमें विभिन्न स्तर के निम्न अथवा उच्च उभार वाले अंकन है, जो गोल, चौकोर अथवा आयताकार खण्डों में संयोजित है। मध्यगत स्तूप का ठोस, अर्द्धवृत्ताकार, विशाल किन्तु सादा स्वरूप वास्तु की दर्शनीय एवं अद्भुत शोभा का प्रतीक है। वेदिका और तोरणों के भागों में चाक्षुष रोचकता एवं आलंकारिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। कला के चित्रण में संकेतात्मकता का अभाव दिखायी देता है। कलाकारों ने प्रतिमाओं का निर्माण करते समय राजा, सामान्य व्यक्ति, सभी की सामाजिक-धार्मिक स्थिति को ध्यान रखने का पूरा प्रयास किया है। भरहुत कला की एक विशेषता यह है कि लगभग सभी प्रतिमाओं पर ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में लेख खुदे है।

भरहुत कला बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा से सम्बन्धित है जिसमें बुद्ध की प्रतिमा नहीं बनती थी। वेदिका-स्तम्भ और तोरण पट्टों को बौद्ध प्रतीकों और आख्यानों से सजाया गया है। बुद्ध के जीवन से संबंधित विविध दृश्यों को छत्र, बोधिवृक्ष, पादुका, पदचिन्ह, भिक्षापात्र और स्तूप आदि प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

भरहुत कला की सबसे बड़ी विशेषता लोक जीवन का निरूपण है। इसमें मानव, पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति, बाजार, विभिन्न प्रकार के महोत्सवों, वस्त्र, आभूषण, वाद्य-यंत्रों, भवनों, यक्ष-यक्षिणियों का अंकन बड़ी ही कुशलता से किया गया है। इस तरह से भरहुत कला में बौद्ध धर्म के निरूपण के साथ लोक जीवन के विविध रूपों का कलाकारों ने बड़ी ही कुशलता तथा सूक्ष्मता के साथ अंकन किया है।

भरहुत कला में लोक जीवन संबंधी रूपों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है -

भरहुत के दृश्यों में अनेक जातकों और अवदानों का अंकन प्राप्त होता है। जातक ग्रन्थों में बुद्ध के पूर्वजन्मों का कथात्मक वर्णन है। जातक कथाओं में धार्मिक परम्पराओं के अतिरिक्त लोक जीवन की विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं की भी झलक देखने को मिलती है।

बोधिसत्व के अवतरित रूपों के अनुसार जातक दृश्य मानव, पशु-पक्षी आदि रूपों में प्राप्त होते है। भरहुत कला में इन तीनों रूपों के जातकों का अंकन प्राप्त होता है। मानवीय रूप से संबंधित जातकों में मघादेव, मूगपक्ख, कण्डरी, अंडभूत, महाजन, मिगपोतक, सूची, छम्मसाटक, सुजात, भिस, वेस्सन्तर, मिग महाबेधि, महाउम्मग, अलम्बुसा जातक; पशुयोनि से संबंधित जातकों में गज, कक्कट, छदंत, रूरु, निग्रोधमिग, दम्मपुफ्फ, लटुकिक, महाकपि, आराम सूदक जातक, पक्षियों से संबंधित जातकों में नच्छ, कुक्कुट, सम्मोदमान, गूथपण्ण जातक का अंकन किया गया है।[4] भरहुत कला में ज्यादातर जातकों के नाम ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है। कुछ ऐसे जातक भी है जिनके नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। प्रो. के.डी. वाजपेयी ने यहां पर नाग और चम्पेय जातकों का भी अभिज्ञान पहली बार किया है।[5]

भरहुत कला में यक्ष-यक्षी और नाग-नागी की प्रतिमाओं का भी कलाकारों ने कुशलता के साथ अंकन किया है। यक्ष-यक्षिणी की पूजा जनसामान्य के बीच लोकधर्म के रूप में प्रचलित थी। यक्ष यदि महाकाय, महौजूस और विकट आकृति वाले जीव थे तो यक्षिणियाँ दिव्य सौन्दर्य की स्वामिनी थी। भरहुत के महास्तूप में यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियों के अंकन से ऐसा लगता है कि भरहुत के कलाकार इनके उपासक थे। वेदिका-स्तम्भों और तोरण द्वारों पर विभिन्न यक्ष-यक्षिणि मूर्तियों के अंकन उनके नाम सहित प्राप्त होते हैं, यथा कुपिरों यखों (कुबेर यक्ष), यक्षी चन्द्रा, यक्षी सुदसना (यक्षी सुदर्शना), सुचिलोमो यखो (सुचिलोम यक्ष), अजकालक यक्ष, सुप्रवास यक्ष, सिरिमा देवता, महाकोका और चूलकोका नामक दो यक्ष देवियां।[6]

यक्षिणियों को भरहुत के अभिलेखों में देवता कहा गया है। भरहुत स्तूप में कनिंघम को कुबेर की खड़ी हुई मूर्ति मिली थी। सभी यक्ष वाहन युक्त स्थानक मुद्रा में हैं। अजकालक के अतिरिक्त सभी यक्षों के हाथ नमस्कार मुद्रा में है। पुराणों से पता चलता है कि बाद में इन यक्षों का स्थान शिव ने ले लिया। (चित्र संख्या 3, 4, 5, 6)

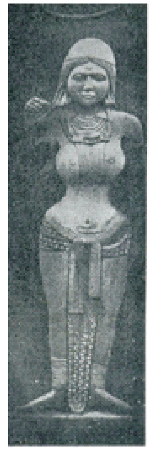

(चित्र 3) यक्षी चन्द्रा (चित्र 4) कुबेर यक्ष (चित्र 5,6) सिरिमा देवता और यक्षी सुदर्शना

यक्षों के समान नाग भी प्राचीन लोक जीवन के धार्मिक विश्वासों के एक महत्वपूर्ण अंग थे। भरहुत के अंकनों में नागों के कई दृश्य है। एक दृश्य में नागराजा वरूण, उनकी पत्नी विमला तथा कन्या इरंदती के अंकन है। नाग दम्पत्ति को राज प्रासाद में बैठे दिखाया गया है। एक दृश्य में जल से निकलते हुए एरापत नागराज को बोधिवृक्ष की पूजा करते हुए दिखाया गया है। मुचलिन्द नागराज का अंकन एक अन्य दृश्य में है इसने उरूवेला में सम्बोधि के बाद एक घोर झंझावत और वर्षा से बुद्ध की रक्षा की थी। एक अन्य नाग चक्रवाक का अंकन वेदिका स्तम्भ के दक्षिणी भाग पर है। नागों को उनके स्वाभाविक रूप में अथवा मानवीय रूप में दोनों ही प्रकार से अंकित किया गया है। मानवीय रूप में अंकित नागों को पाँच फण और नागी को एक फण से युक्त निरूपित किया गया है। (चित्र संख्या 7)

(चित्र 7) एरापत नाग द्वारा बोधि वृक्ष की पूजा

यक्ष-यक्षी तथा नागों के अतिरिक्त भरहुत कला के दृश्यों में विद्याधर, किन्नर एवं सुपर्ण आदि निम्न कोटि के देवताओं का अंकन भी प्राप्त होता है। किन्नरों का आधा भाग नर तथा आधा भाग अश्व का होता था। भरहुत के एक जातक में विद्याधर का निरूपण है, विद्याधर का नाम है विजपि। बरूआ तथा सिन्हा ने इसे सम्मुग जातक का दृश्य कहा है।[7] निम्न कोटि के देवताओं में गंधर्व का अंकन भी भरहुत के 'इन्द्रशाल गुहा' दृश्य में है, इसकी खण्डित आकृति को वीणा सहित दिखाया गया है।

भरहुत कला में शालभंजिकाओं का चित्रण भी मनोहारी ढंग से किया गया है। एक मूर्ति में क्षुद्रकोका देवता को अशोक वृक्ष की शाख पकड़े हुए दिखाया गया है, मूर्ति अनेक वस्त्राभूषणों से अलकृंत है। दूसरी मूर्ति जो महाकोका की है- इसका बांया हाथा बांयी जंघा पर आश्रित है और उठा हुआ दाहिना हाथ सिर पर है। इन मूर्तियों को कहीं-कहीं पुष्प तोड़ते हुए तथा कहीं वृक्ष की डाल पकड़े हुये दिखाया गया है। कलाकारों ने देवी तथा देवताओं के चित्रण से धार्मिक शुष्कता को दूर करने का प्रयास किया है। ऐसे चित्रण कलाकारों ने सम्भवतः इसलिए किये होंगे ताकि गृहस्थों का ध्यान धर्म की ओर आकर्षित किया जा सके और यह केवल साधु-संयासियों तक सीमित न रह जाये। इसका कारण यह था कि गृहस्थ ही उन्हें स्तूप निर्माण हेतु धन सामग्री प्रदान करते थे।[8] (चित्र संख्या 8)

(चित्र 8) शालभंजिका

भरहुत कला में वृक्षों और लताओं का अंकन मनोहारी ढंग से किया गया है। वृक्षों को विविध दृश्यों से सजाया गया है। वृक्षों से वस्त्र अलंकरण, जल, भोजन और स्त्रियां निकलती हुई दिखायी गयी है। संभवतः यह कल्पवृक्ष होगा जो सभी की इच्छाओं को पूरा करता है। महावणिज जातक और रामायण के किष्किंधा काण्ड में कल्पवृक्ष का वर्णन है।[9] भरहुत कला के अन्य वृक्षों में पीपल, आम, कटहल, केला, वट उदुम्बर, पाटलि, शाल, शिरिष का अंकन है। कमल और अंगूर जैसी लताएं मूर्तियों को मनमोहक रूप प्रदान करती है। (चित्र संख्या 9)

(चित्र 9) कमल

भरहुत के दृश्यों में अनेक पशु-पक्षियों के अंकन भी प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ तो अपने स्वाभाविक रूप में है और कुछ समन्वित। स्वाभाविक रूप में स्थलजन्तु, जलजन्तु, जलस्थल, रेंगनेवाले, आकाशचारी जन्तु एवं गिलहरी और केकड़ा आदि है। पशुओं में सिंह, गज, अश्व, वृषभ, वराह, मृग, श्रृगाल, मेष, विड़ाल, बिल्ली, बंदर, श्वान, खरगोश और पक्षियों में हंस, कुक्कुट, काक, बटेर, लट्वा, मयूर पक्षियों का अंकन किया गया है। रेंगने वाले जन्तुओं में छिपकली और सर्प तथा जलस्थल जन्तुओं में मेढ़क, उद्र तथा कच्छप जल जन्तुओं में मत्स्य का अंकन है। पशुओं का उनके स्वाभाविक रूप में अंकन प्रचुर मात्रा में मिलता है। सिंहों की आकृति ओजपूर्ण है, जिनमें इनके पुष्ट शरीर, गर्जन करते हुए मुख, तीखे दाँत, रक्त शिराएं और पंजे स्वाभाविक रूप से दर्शाये गये हैं। हाथियों को वृक्षों को उखाड़ते हुए, अपनी सूँढ़ से पीठ पर पानी उछालते हुए, बोधिवृक्ष की पूजा में झुकते हुए, माल्यार्पण करते हुए दिखाया गया है। न्योग्रोध वृक्ष के नीचे छः हाथियों को आसन पूजा करते हुए दिखाया गया है।[10]

पशुओं से संबंधित दृश्यों में वानरों का अंकन उल्लेखनीय है। एक जगह तीन पद्यकों पर कुछ ऐसे दृश्य है जिनमें एक ही कथासूत्र के तीन संदर्भों का अंकन किया गया है। प्रथम दृश्य में वानरों द्वारा एक गज को पकड़ने का अंकन है, दूसरे दृश्य में गाते बजाते हुए वानर हाथी को अंकुश के सहारे ले जाते दिखाये गये है, तीसरे दृश्य में एक मोढ़े पर बैठे यक्ष के दाँत से बँधे रज्जु को हाथी खींचता हुआ दिखाया गया है।[11] यक्ष के सम्मुख एक आसन पर विराजित वानर, यक्ष के नख काट रहा है। वासुदेवशरण अग्रवाल इसे चिकित्सा दृश्य मानते हैं।[12] भरहुत के दृश्यों में हाथियों और घोड़ों से संबंधित विभिन्न उपकरण भी मिलते हैं। हाथियों की पीठ पर आस्तरण, मस्तक पर बंधी पट्टिका, पैरों पर झूलती छुद्रघंटिका आदि का अंकन भरहुत में मिलता है।[13] घोड़ों के मुँह बंधे रहते थे और उनमें लगाम लगी रहती थी। घोड़ों की पीठ पर आस्तरक का अंकन है। (चित्र संख्या 10)

(चित्र 10) वानर-यक्ष प्रकरण

भरहुत कला में राजाओं, कुलीन व्यक्तियों, सामान्य व्यक्तियों, स्त्रियों, तपस्वियों आदि की वेशभूषा का भी बड़ा ही मनोहारी अंकन है। राजा की वेशभूषा अन्य कुलीन व्यक्तियों जैसी ही होती थी। विशेष दृश्यों में उसे गज अथवा अश्व पर आसीन दिखाया गया है। राजा तथा कुलीन लोग अन्तरवासक (धोती), उत्तरासंग (दुपट्टा) तथा उष्णीष (पगड़ी) पहनते थे। आकर्षक वस्त्रों के साथ विभिन्न प्रकार आभूषणों से शरीर को अलंकृत करने के दृश्य भरहुत कला में प्राप्त होते है। आभूषणों में वक्र-कुंडल, हार, वलय आदि स्पष्टतः अंकित है। स्त्रियों के वस्त्रों में सट्टासक तथा कंचुक प्रमुख है। तपस्वियों के वस्त्रों में वृक्षों की लाल छाल एवं त्रिचीवर अर्थात् अन्तरवासक, उत्तरासंग एवं संघाटि का अंकन किया गया है; साथ ही कंधे के लिए एक काला मृग चर्म, बैठने के लिए ऊनी अस्तर, कंधे पर विहंगिका से बने भिक्षापात्र, जलपात्र, कमण्डल, पीठिका आदि का अंकन भरहुत में प्राप्त होता है। सामान्य और निम्न वर्ग के व्यक्ति एक शाटक ही धारण करते थे। भरहुत के दो चित्रों में कोट जैसे वस्त्र दिखाये गये हैं। एक दृश्य में राजा का अनुचर एक वट वृक्ष की पूजा करते हुए कोटे पहने दिखाया गया है। एक अन्य मूर्ति में एक द्वारपाल को बाँह वाला कोट पहने दिखाया गया है। यह धोती और बूट पहने है। इसके बाँयें हाथ में खड्ग है तथा दाहिने हाथ में फूलों की एक टहनी अंकित है।[14]

अलंकारों में सिर पर मौक्तिकजाल, मस्तक पर ललाटिका, कानों में कुण्डल, बाहों पर भुजबन्ध, कटि पर अनेक लरों वाली मेंखला छुद्रघंटिका, पैरों में पाजेब आदि, नारी वेश के संदर्भ में उल्लेखनीय है। पुरुषों को कुण्डल, हार, भुजबंध और कटक पहने दिखाया गया है। शरीर पर गुदने गुदवाने की प्रथा प्रचलित थी; इसके उदाहरण भरहुत कला में दिखाई देते हैं। तपस्वियों के लिए आभूषणों का प्रयोग वर्जित था, इसका अनुमोदन भरहुत के दृश्यों में प्राप्त होता है। नारी मूर्तियों में विभिन्न वेणियों का जैसे द्विवेणी तथा चतुर्वेणी का अंकन मिलता है।[15] (चित्र संख्या 11)

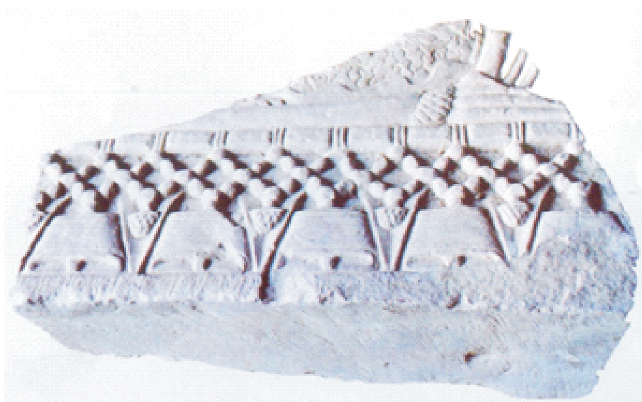

(चित्र 11) छुद्रघंटिका

उत्सव समाज के महत्वपूर्ण अंग है। उत्सवों में मनोरंजन पूर्ण कौशल होते थे। भरहुत कला में इस प्रकार दो दृश्य है। एक में दो पुष्टकाय मल्ल परस्पर युद्ध करते दिखाये गये है।[16] दूसरे दृश्य में विभिन्न व्यक्तियों को बाजीगरी (नटलीला) का खेल दिखाते प्रदर्शित किया गया है। मेलों के भी कई दृश्य हैं। एक शिल्प में सुधर्मी देवसभा अंकित है, नीचे स्त्रियां नृत्य मुद्रा में चित्रित है। इसमें वीणा का सप्ततंत्री रूप मिलता है। इसके अतिरिक्त ढोल, डमरू, शय्या, शंख, तुरही, भेरी आदि वाद्ययंत्रों का चित्रण किया गया है। वानरों के साथ वाद्ययंत्रों का बड़ा ही रोचक अंकन किया गया है।[17]

भरहुत के अंकनों में विभिन्न व्यवसायों में लगे व्यक्तियों द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुओं का भी चित्रण मिलता है। दैनिक उपयोग की वस्तुओं में फैली हुई तश्तरियाँ, कटोरे, सुराही प्रमुख थी। कमण्डल का उपयोग धार्मिक कृत्यों के साथ पानी पीने के लिए भी किया जाता था। तीन प्रकार की टोकरियां भी अंकित है। घरेलू वस्तुओं में दीपक का अंकन है। शय्या एवं आसनों का अंकन भी भरहुत में प्राप्त होता है। भारी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए बहँगी का उपयोग होता था।

यातायात के साधनों में मुख्यतः बैलगाड़ी और रथों का उपयोग होता था। इनका अंकन भरहुत में किया गया है। भरहुत में प्राप्त बैलगाड़ियां दो प्रकार की है एक खुली दूसरी पार्श्व में बंद रहती थी और उसमें जोतने के लिए बैलों को नाथा जाता था। चतुरश्व रथ का अंकन भी भरहुत की कला में हुआ है। जल यात्राओं के लिए नौकाओं का प्रयोग होता था।[18] राजकीय साज-सज्जा में सुवर्ण ध्वज का अंकन समीचीन है। ध्वजों के अतिरिक्त दण्ड एवं छत्र का अंकन भी मिलता है। अस्त्र-शस्त्रों में केवल धनुष, तीर और खंग ही अंकित किये गये है।

इसी प्रकार जन-जीवन से संबंधित अन्य दृश्यों में एक बाजार का चित्रण है जिसमें बहुत सी दुकानें है। एक दुकान में कोई ग्राहक एक बर्तन लिए खड़ा है, जिसमें दुकानदार भांड को उलटकर उसमें भरी सामग्री को खाली कर रहा है जिसे संबंधित व्यक्ति खरीदना चाहता है।[19] भोजन बनाने का दृश्य और साधारण मनुष्यों का चित्रण देखने योग्य है।

भरहुत स्तूप में विविध प्रकार के भवनों का भी अंकन किया गया है। भवनों के लिए भरहुत अभिलेखों में कोसम्बकुटी, गंधकुटी और प्रासाद तीन शब्द प्राप्त होते हैं। भवनों के विन्यास एवं स्वरूप का निरूपण भी मिलता है। इनमें वैजयन्त प्रासाद एक त्रितल प्रासाद मिला है। इसमें विभिन्न तल बने है और मेहराब युक्त गवाछ है। इसके अलावा भित्तियों पर स्थापित एक ऊपरी छत वाला भवन भी मिला है, जिस पर शिखान्त है। इसके अतिरिक्त भरहुत कला में शिखान्तहीन और सादे भवन भी अंकित हैं इनमें तल नहीं है, संभवतः ये बांस और बल्ली से बने सामान्य व्यक्तियों के भवन रहे होंगे।[20] एक स्थल पर मकान के बीच आँगन का चित्रण अंकित है। इसमें एक स्त्री दिखायी है जो एक टोकरी से दूसरी टोकरी में सामान रख रही है। एक दृश्य में एक स्त्री को अपनी झोपड़ी से झांकते दिखाया गया है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि भरहुत कला में लोक जीवन से संबंधित रोचक प्रसंग प्राप्त होते है। कलाकारों ने लोक जीवन के विविध दृश्यों को भरहुत में मनोहारी एवं सौन्दर्यपूर्ण ढंग से उकेर दिया है। भरहुत कला में एक तरफ जहां बौद्ध धर्म के विविध पक्षों का अंकन है, तो वही मगधराज अजातशत्रु के साथ-साथ साधारण मनुष्यों, पशु-पक्षियों, उत्सवों, मेलों, आभूषणों, यक्ष-यक्षिणियों, नागों, गंधर्वों, भवनों आदि अनेक लोकजीवन के दृश्यों का अंकन किया गया है। इस तरह यह कहा जा सकता है कि भरहुत की कला में विशेष रूप से शुंग कालीन लोक जीवन के विविध पक्ष सजीव रूप में प्रतिबिम्बित हुए हैं।

शोधार्थी
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003

सन्दर्भ -

1. *बरूआ, बेनीमाधव, भरहुत, कलकत्ता, 1934-37, पृ.32*
2. *अग्रवाल, पृथ्वी कुमार, प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2014, पृ.143*
3. *पाण्डेय, जयनारायण, भारतीय कला, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 2008, पृ. 55*

4. मिश्र, रमानाथ, भरहुत, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1971, पृ.13-23
5. अग्रवाल, कन्हैयालाल, 'भरहुत कला में लोक जीवन', मध्यप्रदेश संदेश, अंक-15, प्रकाशन का 68वां वर्ष, शनिवार 11 मार्च ग्वालियर, 1972, पृ.5
6. पाण्डेय, जयनारायण, पूर्वोल्लिखित, पृ. 56
7. बरूआ, बेनीमाधव और सिन्हा, कुमार गंगानंद, भरहुत इन्स्क्रिप्शन्स, कलकत्ता, 1926, पृ.89
8. अग्रवाल, कन्हैयालाल, पूर्वोल्लिखित, पृ.5
9. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1960, पृ.43
10. मिश्र, रमानाथ, पूर्वोल्लिखित, पृ.32
11. काला, सतीशन्द्र, भरहुत वेदिका, इलाहाबाद, 1951, पृ.11
12. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1965, पृ.175
13. मिश्र, रमानाथ, पूर्वोल्लिखित, पृ.59
14. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, इलाहाबाद, 1951, पृ.68
15. वही, पृ.52-53
16. कुमारस्वामी, ए.के., हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, लंदन, 1927, पृ.13-14
17. मिश्र, रमानाथ, पूर्वोल्लिखित, पृ.62
18. वही, 64
19. राय, उदयनारायण, भारतीय कला, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ.111
20. मिश्र, रमानाथ, पूर्वोल्लिखित, पृ.64

समकालीन समाज-दर्शन और स्वामी विवेकानन्द

शैल कुमारी

समस्त मानवीय विधाओं की विषय-वस्तु है मानवीय व्यवहार की जटिल प्रकृति का उद्‌घाटन, दूसरे शब्दों में यह जानने की अभिलाषा कि मानव विभिन्न मूल्यों की प्राप्ति के लिए किस-किस तरह प्रयत्न करता है। दर्शनशास्त्र का प्रेरक आधार युग-विशेष का समग्र परिवेश होता है, जिसमें किसी दार्शनिक कृति की रचना होती है। यही वह मूल कारण है, जिस वजह से दार्शनिक कृतियों की अभिव्यक्ति में विश्वविद्यालीय अथवा स्वतंत्र चिन्तक देश-काल, युग-धर्म, व्यक्ति-समाज, समाज-राष्ट्र, प्राचीन-अर्वाचीन, आधुनिक-समसामयिक और नवीन सब को समेट लेते हैं। विगत तीन शताब्दी में समस्त विश्व में समाज की अर्थव्यवस्था, राजनीति, कला और संस्कृति में द्रुतगति से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। सातत्य और परिवर्तन एक साथ होते रहे हैं, होते रहेंगे। स्वतंत्रता के 70 वर्ष बीत जाने पर भी चतुर्दिक् फैली मूल्य-शून्यता की स्थिति को हम उन शाश्वत मूल्यों या आदर्शों की दुहाई देकर कतई पाट नहीं सकते, जिन आदर्शों का वर्तमान मानव-जीवन से दूर-दूर का सम्बन्ध नहीं है।

आज जिस युग में हम जी रहे हैं, मानवीय भाव-मूल्यों के प्रति जागरुकता का युग है। पुण्य सलिला भारतभूमि के विशाल दार्शनिक वाङ्.मय से अल्प परिचित जन दावा करते हैं कि नये परिप्रेक्ष्य, नई अवधारणाओं की संरचना में भारतीय दर्शन इस वजह से अप्रतिष्ठित हो जाता है; क्योंकि यहाँ के अधिकांश सम्प्रदाय आज भी तत्त्वचिंतन में लगे हैं। लेकिन वस्तुस्थिति इससे भिन्न है, क्योंकि बहुतेरे समकालीन (उत्तर आधुनिक) मनीषी नये परिप्रेक्ष्य में अर्थनिरूपण कर नये कलेवर में दर्शनशास्त्र को प्रतिष्ठित करके इसके जीवनोन्मुख स्वरूप को उजागर करने में संलग्न रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, पी.टी. राजू जैसे दार्शनिक व्याख्याकारों ने शिक्षा, स्त्री शिक्षा, समाज-सेवा, जीव-सेवा, समानता जैसी सामाजिक समस्याओं पर चिन्तन किया है। डी.एम. दत्त दर्शन विषय को 'not a one man's game or a mere soliloquy', नहीं मानकर, 'a social affair and a conversation', मानते हैं। दत्त की उपर्युक्त मान्यता का समर्थन कालिदास भट्‌टाचार्य ने किया है। इसी तरह प्रो. देवी प्रसाद चट्‌टोपाध्याय, प्रो. दयाकृष्ण तथा प्रो. के.जे. साह जैसे रचनात्मक दार्शनिक सामाजिक संगठन, समाज सुधार और समाजविज्ञान का विवेचन करते हैं। हालांकि समकालीन चिन्तकों की विस्तृत श्रृंखला में कतिपय चिन्तकों की दार्शनिक प्रतिबद्धता आंग्ल दर्शन के साथ-साथ रूसी साम्यवाद से प्रभावित है, लेकिन महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, संत विनोबा, स्वामी सत्यभक्त जैसे असाधारण प्रतिभा तथा विशिष्ट तर्कशक्ति सम्पन्न तटस्थ मौलिक चिन्तनकर्त्ताओं ने समस्त मानव जाति के लिए जो कल्याणकारी विचारधारा हमें दी है, उन्हें हम विश्व संस्कृति

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

में इनका महत्त्वपूर्ण अवदान कह सकते हैं।

आज भी हमारा मौलिक योगदान हो सकता है चिन्तन के क्षेत्र में, बशर्ते कि हम सांस्कृतिक अधीनता से मुक्त होकर सांस्कृतिक समीकरण का प्रयत्न करें। उदाहरण के लिए दर्शनशास्त्र के अध्ययन-अध्यापन में हमें वर्तमान जीवन की अपेक्षाओं का निर्धारण करना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुसंधान आयोग में सौंपे गए विभिन्न प्रतिवेदनों में भी सार्वजनीन एवं सर्वोत्तम तत्त्वों के अनुसंधान की बात की गई है। असल में भारतीय दर्शन को न तो शिथिल विचारों में सीमित करने की आवश्यकता है और न ही तकनीकी, कठोर, परिशुद्ध एवं यथातथ्य विचारों में प्रतिबन्धित करने की। इस विषय का (दर्शनशास्त्र का) कार्य तो विचारों की समालोचना का है, मत तथा विश्वास के बौद्धिक परीक्षण और मूल्यांकन का है। जैसा कि के.सी. भट्टाचार्य ने आज के भारतीय चिन्तकों को मौलिकता बनाये रखने के प्रयत्न पर बल दिया है। यह उनके शब्दों में निर्दिष्ट हैः

" 'The most prominent contribution of ancient India to the culture of the world is in the field of philosophy and if the Modern Indian Mind is to philosophize at all to any purpose, it has to confront Eastern thought and Western thought with one another and attempt a synthesis or a reasoned rejection of either, if that were possible' ...;"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में दर्शन के जार्ज ट प्रोफेसर भट्टाचार्य ने 1875 से 1949 के बीच अपनी भावना व्यक्त की है, जबकि स्वामी विवेकानन्द इनके पूर्व व्यवहार में इसे उतार चुके हैं। इस बात का स्पष्टीकरण तब होता है, जब हम उनके निम्न वार्तालाप पर ध्यान देते हैं। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहाः

''भारत को यूरोप से बाह्य प्रकृति पर जय पाने की शिक्षा लेनी है, इसी प्रकार यूरोप को भारत से अन्तःप्रकृति पर जय पाने की शिक्षा लेनी है। ऐसा होने पर फिर हिन्दू-यूरोपियन का कुछ भेद-भाव न रहेगा, उभय-प्रकृतिजयी एक आदर्श मनुष्य-समाज का निर्माण होगा। हम मनुष्यत्व के एक पहलू का और वे लोग दूसरे पहलू का विकास कर रहे हैं। आवश्यकता है इन दोनों के मिलन की।''[2]

स्वामीजी का चिन्तन समकालीन समय में हुआ है; अतः सर्वप्रथम हमें यह समझ लेना है कि समकालीन दर्शन क्या है, तो समकालीन युग में दर्शन का अर्थ प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल की परिभाषा से किंचित रूप में भिन्न हो जाता है। इस युग के पाश्चात्य विचारक दर्शन को एक ऐसी प्रक्रिया बताते हैं, जिसमें अवधारणात्मक प्रतिमानों और प्रत्ययों के तार्किक प्रकारों का निश्चय कर उनकी वर्ग-गणना का निर्धारण किया जाता है।3 भारतीय विचारक 'एकवाद', 'जगत् की वास्तविकता', 'मानव का संगठित स्वरूप', 'मनुष्यत्व की गरिमा', 'मानव स्वतंत्रता की वास्तविकता,' 'अन्तर्दृष्टि का महत्त्व' जैसी बातों में सहमत हैं। डॉ. डी.एम. दत्ता समकालीन दर्शन का समय-निर्धारण मोटा-मोटी उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी तक करते हुए इस पद का संकेत करते हैंः

"The term 'contemporary' has an elusive denotation."[4]

इसी तरह के. सच्चिदानन्द मूर्ति ने समकालीन भारतीय दर्शन नाम न कहकर 'Modern thinking' कहा है। दर्शनशास्त्र एक 'दृष्टि' है जीवन के समग्रता की, जीवन के औचित्य या उपयुक्तता की और जीवन की सीमा की। मानविकी संकाय का प्रमुख विषय दर्शनशास्त्र किसी राष्ट्र की संस्कृति और चेतना का मेरुदण्ड होता है। किसी जीव में मेरुदण्ड (रीढ़) जिस तरह की भूमिका निबाहता है अर्थात् मेरुदण्ड की वजह से ही सिर-पैर स्थिर रहते हैं किसी जीव के; ठीक उसी तरह 'दर्शनशास्त्र' किसी राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति को अर्थवत्ता प्रदान कर उन्हें पोषित करता है, राष्ट्र को दिशा-निर्देश देता है। जीवन की दुरूहता के समक्ष एक विश्वसनीय अभिभावक की भूमिका निबाहता है। एक विषय के रूप में दर्शनशास्त्र परम सत्य तथा प्रकृति के सिद्धान्तों

और प्रकृति के कारणों की व्याख्या करता है। यह विषय न केवल मानविकी संकाय का प्रमुख विषय है, अपितु सामाजिक चेतना जागृति के कई रूपों में से एक है। विश्व के समस्त विषय द्वारा दिए जाने वाले ज्ञान-जीवन को जानने, समझने के इर्द-गिर्द घूमते हैं; दर्शनशास्त्र इन सब के सार को जानने की जिज्ञासा है।

समाज-दर्शन का प्रतिपाद्य मानव या मानव-समाज है। जब कभी जहाँ कहीं मानव है, वहीं मानव-समुदाय भी है, जो व्यक्ति-व्यक्ति से बनता है और मानव-समुदाय का उद्देश्य है परस्पर सहयोग, एक दूसरे की परवाह, सम्मान और सुरक्षा। यह तभी संभव हो पाता है जब मानव प्रकृति के विविध पदार्थों का मानवहित, मानव-कल्याण, योगक्षेम एवं सुख-साधन-हेतु प्रयोग करे। इस हेतु आवश्यकता हो जाती है- प्रकृति और प्रकृति के विविध पदार्थों के बीच सम्बन्ध का ज्ञान मानव को हो। जन्म से मृत्यु पर्यन्त मानव समाज में रहता है। जब मानव इस संसार में जन्म लेता है, वह असहाय होता है। समाज के अन्य व्यक्तियों के संरक्षण से उसका अस्तित्व कायम रहता है। सच्चाई यह भी है कि मानव अपने क्रिया-कलापों से समाज को प्रभावित करता है। जैसा कि प्रो. एन.वी. जोशी की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हैः

"Everyone will have to accept the most potent fact of his life that his entire existence is sustained at every step and in all its aspects in and through the active and willing co-operation of his fellow beings."[5]

समाज से पृथक् होकर मानव स्वयं को कायम भी नहीं रख पाता। अतः स्पष्ट है कि समाज मानव के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समाज में रहकर मनुष्य अपने लक्ष्य-प्राप्ति की ओर सतत प्रयत्नशील रहता है और प्रगति की इच्छा मानव जीवन का अनिवार्य पहलू है। इस संदर्भ में उद्भट पाश्चात्य दार्शनिक मैकेंजी ने सच ही कहा है कि मानव-जीवन की कहानी मानव की प्रगति की कहानी है।

प्रारम्भ में समाज सम्बन्धी चिन्तन अन्य विषयों जैसे- समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र इत्यादि के अन्तर्गत ही किया जाता था। समाज के बदलते रूप ने साथ ही विश्वस्तर पर चिन्तकों के चिन्तन के आधिक्य से एक ऐसे शास्त्र की विषय-वस्तु प्रचुर मात्रा में मिली; जिसने समाज-दर्शन विषय को पृथक् विषय के रूप में स्वीकार करने को बाध्य किया है। 'समाज-दर्शन' शब्द पश्चिमी चिन्तकों द्वारा प्रचलित किया गया है। प्राचीन काल में अन्य चिन्तन में समाविष्ट समाज-दर्शन की छिट-पुट अवधारणा यूनान और भारत के चिन्तन में मौजूद है। अपनी बुद्धि और अनुभव के विकास होने पर मानव के मन में प्रश्न उठते हैं- मानव का स्वभाव क्या है? समाज क्या है? मानव और समाज में किस प्रकार का सम्बन्ध है? एक सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति ने स्वयं किन-किन सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाओं को जन्म दिया? उन सब के उद्देश्य और कार्य क्या हैं? एक सामाजिक प्राणी होने के नाते मानव के उत्तरदायित्व क्या हैं? समाज के अन्य लोगों के प्रति व्यक्ति का नैतिक दायित्व (moral obligation) क्या है?[6] इन सभी प्रश्नों के उत्तर समाज-दर्शन में मिलते हैं; क्योंकि समाज-दर्शन के अध्ययन-क्षेत्र में मानव-जीवन के सभी पहलू सम्मिलित हैं।

समाज-दर्शन की व्यावहारिक उपयोगिता है- उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन जिनके द्वारा सामाजिक समस्याओं के समाधन की दिशा का निर्धारण हो। एक बौद्धिक प्राणी मानव पशुत्व से ऊपर है, लेकिन वह देवत्व के नीचे है। हमारी बुद्धि हमें अमूर्त सिद्धान्त प्रदान करती है, लेकिन मानव-प्रयासों को अमूर्त सिद्धान्त तक सीमित रखना कतई उचित नहीं है। आज के युग की माँग है- मानव-जीवन पर उसकी समग्रता में विचार करें। समग्रता में विचार करके ही हम वैज्ञानिक चेतना और दार्शनिक चेतना दोनों में समन्वय स्थापित कर सकते हैं। आज के मानव का जीवन तीव्रगति से नीति-निरपेक्ष बनता जा रहा है। हमारे जीवन में वैज्ञानिक,

तकनीकि और यान्त्रिक ज्ञान बढ़ा है, जबकि आध्यात्मिक ज्ञान बहुत पीछे छूट गया है। भारत-सहित विश्व के लगभग सब देशों में आत्म-हत्या, पागलपन, स्नायविक रोग, यौन व्यभिचार, महिला उत्पीड़न, तलाक और किशोर अपराध की संख्या दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। वैज्ञानिक खोजों का प्रयोग मानव मन के विकास में नहीं लगाया जा रहा है। यह ठीक है कि इन खोजों से हमारे रोजमर्रा जीवन में सुविधा बढ़ी है, लेकिन हमने विज्ञान पर अपनी संस्कृति को निर्भर बना दिया है। परिणाम भी हमारे समक्ष इस रूप में आया है कि विज्ञान पर आधारित वर्तमान संस्कृति में प्रेम, सहानुभूति और भाईचारे की भावना लुप्त होती जाती है। मानव-मानव के बीच सम्बन्धों में व्यावसायिकता तथा निर्वैयक्तिकता इतनी बढ़ चुकी है कि परिवार, विवाह जैसी संस्थाएँ विघटित होकर नागरिक-समुदाय को विघटन के कगार पर ले आई है। व्यवहार और विचार दोनों क्षेत्रों में उपयोगितावादी विचारधारा ने साहित्य, संगीत, कला, नीति और धर्म को अब साध्य नहीं माना है। औद्योगिक केन्द्रीयकरण ने आर्थिक और राजनैतिक स्तर को प्रभावित किया है। केन्द्रीयकरण ने नगरीकरण को पैदा किया और इस नगरीकरण ने अत्यधिक भीड़-भाड़, गन्दी बस्ती, नगर में बसने वाली जनता के स्वास्थ्य का निम्न स्तर, जनता में नैतिक पतन जैसी कई समस्याएँ उपस्थित की हैं। सत्ता और धन के केन्द्रीयकरण ने आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक भ्रष्टाचार और शोषण बढ़ाया है। कई दार्शनिकों ने इन समस्याओं की अपने ढंग से व्याख्या की है। इनमें लेनिन (Lenin) अल्बर्ट स्वाइट्ज़र (A. Schweitzer) एरिक फ्रॉम (Erich Fromm) ए बर्ट्रेन्ड रसेल (Bertrand Russell) जैसे पाश्चात्य विद्वानों के साथ भारतीय चिंतक स्वामी विवेकानन्द और श्री अरविन्द का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री और इतिहास दार्शनिकों ने वर्तमान संकट का कारण सर्वांग दर्शन की कमी माना है। इन चिन्तकों ने मानव की उपर्युक्त समस्याओं की जड़ में सामाजिक सम्बन्धों के समन्वय में कमी महसूस कर एक मत स्वीकार किया है। वर्तमान संकट का प्रमुख कारण एक वैसे सर्वांग दर्शन की कमी है, जिसके आधार पर मानव सम्बन्धों को समन्वित रूप में स्थापित किया जा सके।[7] वस्तुतः, सामाजिक सम्बन्धों के समन्वय की समस्या पर विचार ही समाज-दर्शन की विषय-वस्तु या क्षेत्र है। प्रो. मॉरिस गिन्सबर्ग समाज-दर्शन के दो पहलू स्पष्ट करते हैं - रचनात्मक या संयोगात्मक और आलोचनात्मक या समीक्षात्मक या तार्किक। इनके अनुसार समाज-दार्शनिक समाजशास्त्र द्वारा ज्ञात तथ्यों का मानव के परमशुभ के आलोक में मूल्यांकन कर सामाजिक मूल्यों की प्रामाणिकता की जाँच करते हैं और ऐसे जाँच की कसौटी नैतिक है।[8]

भारतीय समाज दार्शनिकों के अनुसार मानव के विकास में नैतिक स्तर ही सर्वोच्च स्तर नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक भी है; क्योंकि आध्यात्मिक कसौटी से ही नैतिक या नीति विपरीत मूल्यों की समीक्षा होती है। इस तरह समाज-दर्शन सामाजिक मूल्यों का दर्शन है। चूँकि समाज-दर्शन दर्शनशास्त्र की एक शाखा है; इसलिए इसके अध्ययन की विधि दर्शन की तरह ही संश्लेषण और विश्लेषण, आगमन और निगमन तथा द्वन्द्वात्मक है। प्रोफेसर हाब हाउस ने समाज-दर्शन को नियामक अनुशासन बताते हुए लिखा है कि इस अनुशासन में हम विधियों, परम्पराओं और संस्थाओं के काम पर एक समन्वित जीवन स्थापित करने तथा समन्वित जीवन का विकास करने का चिन्तन करते हैं।[9]

समाज-दर्शन दर्शनशास्त्र की एक नूतन विधा के रूप में बीसवीं शताब्दी में स्थापित हुआ है और प्राचीन यूनानी समाज-दर्शन का बीज विद्वज्जन सोफिस्टों में देखते हैं। सोफिस्ट चिन्तक प्रोटैगोरस (Protegoras) का समाज-दर्शन व्यावहारिक और मानवतावादी था। उनका सूत्र वाक्य हैः "Man is the measure of all things, of things that are that they are, and of things that are not that they are not.[10]

जो कुछ भी हो समाज-दर्शन ने हर युग में सामाजिक विज्ञानों पर प्रभाव डाला है और स्वयं समाजदर्शन पर भी दार्शनिक विकास का प्रभाव पड़ा है। दार्शनिक जैसा विश्वरूप उपस्थित करते हैं, उसी अनुरूप सामाजिक मूल्यों की व्याख्या होती है। अपने अध्ययन-क्षेत्र में समाज-दर्शन विशेष रूप से मानव के सामाजिक संगठन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। मानव-संगठन के साथ ही यह विषय उसके सामाजिक पहलुओं के महत्त्व की व्याख्या का प्रयास करता है। इसलिए इस विषय में मानव-जीवन के मूल्यों, आदर्शों और उद्देश्यों का अध्ययन होता है। चूँकि दर्शन का मूलतः भारतीय, यूरोपीय, जर्मनी, फ्रांसीसी, चीनी, जापानी अथवा ब्रितानी जैसे स्थानों में बाँटे जाने से चिन्तन में कोई परिवर्तन नहीं होता; फिर भी जो चिन्तन करता है वह स्थान-विशेष के परिवेश से अवश्य प्रभावित होता है। अतएव पौरस्त्य और पाश्चात्य दोनों चिन्तन में अपनी-अपनी परम्परा की छाप दोनों की अपनी-अपनी विशिष्टता है। समकालीन काल में पाश्चात्य जगत् में विकसित दार्शनिक चिन्तन बड़ा ही समृद्ध रहा है और उन्नीसवीं शताब्दी में चिन्तन की जो प्रवृत्तियाँ जगी थीं, वे सब-की-सब बीसवीं शताब्दी के शुरूआत में ही परिपक्व होकर स्थापित हो गईं। यह भी ध्यातव्य है कि उस परिपक्व दार्शनिक चिन्तन के विरुद्ध प्रतिक्रियाएँ भी होती रहीं।

स्वामी विवेकानन्द नव्य वेदान्ती चिन्तक हैं और वेदान्त दर्शन की परम्परा उपनिषदों से; उसके भी पूर्व कहें तो वेद से ही प्रारम्भ हो जाती है और वेद का अन्त ही वेदान्त है। पौरस्त्य धर्म, दर्शन, नीति और समाज के मूल सिद्धान्तों के उद्गम स्थल वेद माने गए हैं। साथ ही भारतीय चिन्तन-परम्परा के विशाल साहित्य-प्रासाद की नींव वैदिक काल में ही पड़ी थी। वैदिक काल से ही भारत में नैतिक और स्वच्छ सामाजिक बोध मौजूद रहा है। वैदिक 'ऋषि' समस्त विश्व में एक नैतिक व्यवस्था स्वीकार कर इसे 'ऋत' की संज्ञा देते हैं। उस काल का मनुष्य सदाचार-प्रेमी था। 'ऋग्वेद' के छठे मण्डल के दसवें सूक्त में कहा गया है कि उपास्य की प्रार्थना तथा स्वयं के पुरुषार्थ से विद्या में, सत्कार्यों में सब लोग कुशल हों, वैसी वाणी मानव को मिले जो सब का उपकार करती हो।[11] उस समय एक ही जाति के व्यक्तियों के समुदाय या गण की उच्चतम राजनैतिक संस्था थी। वंश-परम्परा और चुनाव द्वारा राजा बनाये जाते थे। साथ ही राजाओं की शक्ति सर्वोपरि तथा निरंकुश नहीं थी, अपितु जनता के मतानुसार सीमित थी। उस समय का भारत जो आर्यावर्त्त था, में न्याय, अधिकार और कानून के सम्बन्ध में बड़े उन्नत विचार प्रचलित थे।[12] शत-प्रतिशत सच्चाई यही है कि समाज-दर्शन नाम उस समय के चिन्तन में मौजूद नहीं था, फिर भी 'ऋग्वेद' में समाज के सर्वांगीण पक्षों का ज्ञान प्रस्तुत हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से वेदों के बाद 'उपनिषदों' का अध्ययन समीचीन है। उपनिषद् की अग्रलिखित वाणी न केवल विशुद्ध मानवतावादी है, बल्कि सकल विश्व मानवों हेतु सुख-शान्ति की कामना इसमें निहित है। यथा-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भागभवेत।।[13]

सब की सुख-शांति की कामना हमारे उपनिषदों में निर्देशित आत्मत्याग, संयम, सत्य, दानशीलता, दया, अहिंसा जैसे सद्गुणों के अनुरूप आचरण आज भी विश्व-स्तर पर व्याप्त व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय हिंसा, शोषण, अन्याय, स्वार्थपरता और असहनशीलता जैसे अशुभों के शमन में उपादेय हैं।

दो प्रमुख महाकाव्यों में तुलसीदासकृत 'रामचरित मानस' केवल मानवीय सम्बन्धों के ऊँचे आदर्श ही नहीं, वरन मानव-मानवेतर प्राणी सम्बन्ध का हृदयस्पर्शी और अनुकरणीय चित्रण प्रस्तुत करता है। इस महाकाव्य की अग्रलिखित दस दिशाएँ विभिन्न चेतनाओं को प्रकाशित करती हैं:

मानवीय-चेतना, सांस्कृतिक-चेतना,
नैतिक-चेतना, वैयक्तिक- चेतना,

पारिवारिक-चेतना, सामाजिक-चेतना,
राजनैतिक-चेतना, आध्यात्मिक-चेतना,
दार्शनिक-चेतना, प्राणि-कल्याण-चेतना''[14]

दूसरा महाकाव्य 'महाभारत' जिसका लघु लेकिन सबसे बड़ा दार्शनिक अंश 'श्रीमद्भगवद्गीता' स्वीकृत है। गीता में औपनिषदिक आदर्श वर्णाश्रम-धर्म, पुरुषार्थ, कर्मवाद, पुनर्जन्म और मोक्ष के साथ 'निष्काम कर्म' की स्थापना वैयक्तिक, सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं के निराकरण हेतु उपदेश श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया है। इस ग्रन्थ में व्यक्ति और समाज दोनों में अध्यात्म के द्वारा जीवन की गंभीर समस्याओं के समाधान की संभावना इसके निष्काम कर्मयोग की नीति में मौजूद है। गीता के प्रवृत्ति-मार्ग-उपदेश का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति में सामाजिकता का विकास कर उसे अध्यात्म की अनुभूति कराना है।

महाकाव्य-काल के पश्चात् सूत्र-अवधि पर अतिसंक्षिप्त अध्ययन सिलसिलेवार अध्ययन होगा। सूत्र-अवधि में नास्तिक-आस्तिक दोनों परम्पराएँ आती हैं। बृहस्पति-सूत्रों पर आधारित भौतिकवादी, नास्तिक चार्वाक-दर्शन या लोकायत देहवादी थे। नास्तिकों ने मानव-समाज में नवजीवन के सृजन में पुरुष और नारी के संयोग की प्रक्रिया को विश्व-उत्पत्ति की प्रक्रिया से साम्य दिखलाया है। वैदिक विचारधारा जहाँ पुरुष-प्रधान रही है, वहीं लोकायत-धारा में प्रकृति की प्रधानता का भौतिक आधार मातृ-अधिकार का आर्थिक सिद्धान्त है। मानव- समाज के प्रारम्भिक चरण की विशेषता, यही मातृ-अधिकार है। तात्पर्य यह है कि 'हैतुक' लोगों में सामाजिक संगठन का केन्द्रबिंदु मातृ-सत्ता थी। लोकायत- धारा में विश्वोत्पत्ति-विज्ञान तांत्रिकों का देहवाद था। इनके भौतिकवादी दर्शन से अर्थविज्ञान शुरु होता है, साथ-ही कापालिकों के कामशास्त्र से भौतिक सम्पत्ति में बढ़ोत्तरी को अर्थ-साधना का आदर्श मानकर प्राकृतिक उत्पादन में वृद्धि का प्रमाण उस समय के सामाजिक चिन्तन का प्रतीक है।

नास्तिक बौद्ध-धर्म-दर्शन के प्रणेता गौतम बुद्ध ने 'बोधि-प्राप्ति' पश्चात् अपना शेष जीवन 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का उद्देश्य अपनाकर मानव-कल्याण-हेतु अपने समय में सबसे बड़ा सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन चलाया था। बौद्धकालीन भारत में आर्थिक और सामाजिक असमानता व्याप्त थी। गौतम बुद्ध धार्मिक श्रमण थे। उन्होंने अपने धर्म का नाम 'संघ' रखा जिसका अर्थ था 'जनजातीय समाज'। यह संघ ही मौर्यकाल में 'धम्म' नाम से जाना गया। बौद्ध धर्म के विस्तार की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है 'विहारों' के स्थापना की। ये विहार उस समय के विश्वविद्यालय थे। एच. शास्त्री ने बिहार प्रान्त नामकरण के पीछे बौद्ध विहारों की स्थापना बताई है। जैसा कि शास्त्री ने कहाः

''रोचक बात है कि आधुनिक बिहार प्रान्त का यह नाम इसलिए पड़ा कि किसी समय देश के इस भाग में अनेक बौद्ध-विहार थे।''[15]

श्रमण चिन्तक जैन महावीर बुद्ध के समकालीन हैं और जैन दर्शन भी नास्तिक दर्शन है। भले ही जैन-धर्म की सफलता बुद्ध जितनी नहीं हुई, फिर भी उस समय के अनुरूप एक विभ्रम प्रतिपादित करने की इनकी क्षमता ने इनके पूर्व तक के जैन-धर्म-दर्शन को व्यापक फलक पर पहुँचा दिया। जैनकालीन समाज भी जनजातीय था, जो लोकतांत्रिक और साम्यवादी था। क्योंकि महावीर लिच्छवि जनजाति के थे और बुद्ध की भाँति रूढ़िगत ब्राह्मण-धर्म-प्रणाली से असंतुष्ट थे। निगंठ नाथपुत्त जैन-धर्म-दर्शन के अंतिम संस्थापक थे। इनके सिद्धान्त समग्र मानवीय जीवन-दर्शन या जीवन-संस्कृति से अनुगूंजित हैं। 'जिओ और जीने दो' का आदर्श रखकर वर्धमान ने दूसरों के दुःख को दूर करने की धर्म-वृत्ति को ही अहिंसा-धर्म बताया-' परस्स अदुक्खकरणं धम्मो'[16] इनके समस्त उपदेश अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की त्रयी पर आधारित हैं।

निःसंदेह उपर्युक्त त्रयी उनके द्वारा किये गये सामाजिक विकास के तत्त्वान्वेषण का युगान्तकारी परिणाम है। उन्होंने इन्हीं तत्त्वों का पालन कर पद-दलित लोगों में सामाजिक सम्मान जगाकर उनमें आत्माभिमान जगाया। इस अर्हत ने अहिंसा द्वारा सामाजिक क्रान्ति, अपरिग्रह द्वारा आर्थिक क्रान्ति तथा अनेकान्त द्वारा वैचारिक क्रान्ति करके उस समय एक सामाजिक आन्दोलन चलाया। इसके अतिरिक्त महावीर का जाति से सन्दर्भित सिद्धान्त है कि जाति जन्म से नहीं, बल्कि कर्म से निर्धारित होती है।

कौटिल्य (ईसा से 300 वर्ष पहले) मौर्य साम्राज्य के प्रधानमंत्री थे। उन्होंने विद्याओं के चार वर्ग किए- धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र (खेती और उद्योग), राजनीति या जन-प्रशासन तथा आन्वीक्षिकी। भारतीय संस्कृति के सामाजिक और प्रत्ययन की नींव का विश्लेषण 'Foundation of Indian Culture' में मिलता है। G.C. पाण्डेय की उपलब्धि इस सम्बन्ध में शानदार है। इस संदर्भ में K. Satchidananda Murty की ये पंक्तियाँ बड़े महत्त्व की हैं :

"... 'to analyse the social and ideational foundations of Indian Culture, and the social world presupposed by the intellectual and symbolic formulations of the Indian tradition'.... while the second one is concerned with the patterns of life, socio-political ideas, and the socio-historical and political orders."[17]

महर्षि कपिल 'सांख्य सूत्र' के रचयिता हैं। पुष्ट प्रमाणों के आधार पर गार्बे महोदय कहते हैं, 'प्राचीनतम भारतीय दर्शन का नाम सांख्य है'।[18] भारत के सांस्कृतिक विकास में कृषि पर आधारित आरम्भिक अर्थव्यवस्था मातृसत्तात्मक समाज की थी। प्राचीन भारतीय समाज में अन्य कार्य की अपेक्षा कृषि कार्य चमत्कारी शक्ति और चमत्कारी विधि पर निर्भर थी। उनके जीवन में देवियों का स्थान प्रथम था। भारतीय जनमानस में आदि देवी की स्मृति यहाँ के सामाजिक इतिहास के अनोखेपन से सम्बद्ध रही है, जो सांख्य दार्शनिकों के विश्वोत्पत्ति-सम्बन्धी चिन्तन में प्रतिपादित है। इस तरह समाज-दर्शन शब्द का प्रचलन न होने पर भी कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य और बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय दोनों ने प्राचीन तंत्रवाद के लिए सांख्य-दर्शन का उल्लेख किया है, जिसके द्वारा सांख्य-योग दोनों विचारधारा में हम समाज-सम्बन्धी चिन्तन स्पष्ट देख पाते हैं।[19]

गौतम या अक्षपाद के सूत्रों पर तथा महर्षि कणाद या कणभक्ष के सूत्रों पर आधारित न्याय-वैशेषिक दर्शन के मुख्य विषय हैं- तर्कशास्त्र और परमाणुवाद। कणाद और गौतम पूर्णतया धर्मनिरपेक्ष और अनुभव के आधार- सामग्री का बुद्धिसंगत विश्लेषण करने के बाद भी वेद के प्रति तथाकथित निष्ठा रखते थे। इसका मुख्य कारण उस समय का विज्ञान-विरोधी वैदिक रूढ़िवाद ही था। अतएव भारतीय परमाणुवाद और तर्कविद्या के दोनों प्रवर्तकों को बहुधा समाज के निहित स्वार्थी हितों द्वारा गढ़े गए कतिपय मिथकों को स्वीकार करने पर विवश होना पड़ता था। इन दोनों समान तंत्र विचारकों ने बौद्धों के क्षणिकवाद का खण्डन करके यांत्रिक भौतिकवाद का समर्थन किया था। न्याय-वैशेषिक दर्शन के समय में यहाँ के समाज में विज्ञान से अधिक अंधविश्वास का बोलबाला था। तत्कालीन समय के पुरोहित-वर्ग अपने सामाजिक और आर्थिक हितों में दोनों तंत्र के तर्कों से असुरक्षा महसूस कर वैसा राजनीतिक वातावरण खड़ा कर चुके थे, जिसमें तर्कविज्ञान और परमाणुवाद को धर्मनिष्ठ होने का दिखावा करना परमावश्यक हो गया था; अन्यथा दर्शन-क्षेत्र में आधिकारिक रूप से इन्हें स्थान मिलना संभव नहीं होता। इस संदर्भ में विद्वान् जन की टिप्पणी है, कि संभवतः दार्शनिक विचारों के टकराव में तीव्रता आने पर धर्मभ्रष्ट कहे जाने से बचने के ख्याल से नैयायिक वात्स्यायन दार्शनिक रुझान को वैसी रियायतें प्रदान करते हैं, जो उनके धर्मनिरपेक्ष सिद्धान्त से असंगत था।[20]

'मनुस्मृति' में महात्मा मनु ने वर्ण-धर्म की विस्तार से व्याख्या की है। मनु के विचार सर्वाधिक

लोकप्रिय रहे हैं। प्राचीन सामाजिक जन-जीवन पर उनके चिन्तन ने अमिट छाप छोड़ी है। उनके युग की सामाजिक व्यवस्था का आधार वर्ण और आश्रम-धर्म ही था। प्राचीन भारतीय समाज को सुव्यवस्थित करने में उनकी आश्रम-व्यवस्था ने विशेष सहायता की है। हालाँकि, प्रारम्भ में उनकी वर्ण-व्यवस्था का आधार गुण, कर्म एवं व्यवसाय था, जो कालान्तर में जन्म पर ही आधारित हो गया। उस समय के समाज में आश्रम-व्यवस्था प्रत्येक वर्ण के मानव के सर्वांगीण विकास हेतु पालन योग्य था।

भले ही स्वामी विवेकानन्द एक प्रत्ययवादी दार्शनिक माने गए हैं और वेदान्त पर आधारित 'एक ही धर्म' का प्रचार करते हैं, लेकिन इनका कार्यकलाप धार्मिक सुधार के चौखट तक ही सीमित हम नहीं पाते हैं। इन्होंने वेदान्त दर्शन की समयानुकूल व्यावहारिक व्याख्या कर वेदान्त दर्शन को राष्ट्रीय सामाजिक जीवनधारा से जोड़ दिया। स्वामीजी ने निर्भीकतापूर्ण घोषणा की भारत के समाज का मूल आधार है - 'धर्म', अतएव पश्चिमी देशों के समान भारत को 'धर्मनिरपेक्ष' घोषित करना भूल और नासमझी हो जाएगी। भारतीय समाज की एक मात्र शक्ति धर्म दूसरों के लिए जीने की शिक्षा देता है; क्योंकि धर्म में स्वार्थहीनता का तत्त्व निहित है। अतः धार्मिकता का सही अर्थ है- मानवीयता। अपने समय में अर्थात् गुलाम भारत के सामाजिक विकास हेतु उन्होंने एक तरफ संस्थाओं को आँख मूँदकर अपना लेना घातक बताया, तो दूसरी तरफ पूर्व स्थापित संस्थाओं का विनाश भी घातक कहा। इतना ही नहीं स्वामीजी ने भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष का आह्वान भी किया। देश की स्वाधीनता हेतु अंग्रेज शासनाधिकारियों से याचना की उदारतावादी नीति के समर्थक भारतवासियों की उन्होंने निंदा भी की। जैसाकि इस उद्धरण से संकेतित है :

'...वह 20वीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के उग्र वामपंथी विचारधारात्मक नेताओं के प्रत्यक्ष पूर्ववर्ती थे। उन्होंने राष्ट्रों के उत्पीड़न, नस्लवाद तथा सैन्यवाद की आलोचना की।'[21]

स्वामीजी प्रखर राष्ट्रीय चेतना सम्पन्न व्यक्ति थे। इस देश की आध्यात्मिकता के प्रचार-प्रसार के निमित्त देश-विदेश भ्रमण करते रहे। भारत भ्रमण या अन्यत्र-भ्रमण में मानवता-धर्म के लिए उन्होंने 'समाजवाद' में दृढ़ विश्वास बनाये रखा। उन्होंने स्पष्ट कहा 'मैं समाजवादी हूँ।' कर्मवीर, विश्वविजयी, सुप्रसिद्ध देशप्रेमी स्वामीजी के उपर्युक्त वक्तव्य को डॉ. भूपेन्द्रनाथ दत्त बड़े विश्वास के साथ उद्धृत करते हैं:

''मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ, परन्तु इसलिए कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है। अन्य सब मतवाद काम में लाए जा चुके हैं और दोषयुक्त सिद्ध हुए हैं। इसकी भी अब परीक्षा होने दो...''[22]

स्मरणीय है कि भारत का तत्कालीन समाज आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्र में अनेकानेक समस्याओं से जूझ रहा था और ब्रितानी सरकार प्रत्येक स्तर पर शोषण और अत्याचार किये जा रही थी। ऐसी विकट परिस्थिति में स्वामीजी को भारत के हरेक क्षेत्र में उपस्थित झंझावातों ने झकझोर दिया। वे गरीब, पददलित भारतीय जनता के लिए रो पड़े। उनका अटूट विश्वास था कि ईश्वर भी गरीबों की पीड़ा की अनुभूति कर बीच-बीच में अवतार लेते हैं। और वे गरज उठे, 'स्मरण रहे, राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है': ''... शूद्र ही धन के सच्चे उत्पादक हैं, फिर भी उनकी सदैव से उपेक्षा की जाती रही है और कल्पनातीत काल से चले आए इस अत्याचार और शोषण के फलस्वरूप ये शूद्र पशुवत् हो गए हैं...मानव-बुद्धि द्वारा परिचालित यंत्र की तरह एक ही भाव से काम करते आए हैं, और बुद्धिमान चतुर व्यक्ति इनके परिश्रम तथा कार्य का सार निचोड़ लेते रहे हैं।[23]

समस्त भारत भ्रमण के बाद एक प्रश्न बार-बार उनके मन में खलबली मचा देती थी कि कभी

सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक रूप से सम्पन्न और विकसित भारत का समाज उनके समय तक निहायत गरीब, वंचित और दुःखी होकर, स्वाभिमान-शून्य, दीन-हीन जीवन क्यों जी रहा था? जब स्वामीजी ने अपना नाम विवेकानंद रखा तब उन्होंने बड़े नजदीक से भारत के गाँवों, कस्बों और शहरों के जीवन का पर्यवेक्षण किया, जनता की विवशता का स्वयं अनुभव किया, पुरोहितों व पंडों के व्यभिचार देखे; भारत की पवित्र संस्कृति, संस्कार और जीवन-मूल्यों का तिरस्कार देखकर तत्कालीन समाज की दयनीय स्थिति में हर संभव कार्य करने की स्वामीजी की इच्छा प्रमाणित करती है कि वे सच्चे अर्थ में समाज सेवक थे। ऐसा उनके निम्न कथन से द्योतित होता हैः ''जो लाखों नर-नारी दिन प्रतिदिन दुःख के अंधेरे गर्त में डूबते जा रहे हैं, जिन्हें सहायता देनेवाला कोई नहीं है, उनके द्वार तक सुख सुविधा, धर्म नीति एवं शिक्षा ढोकर पहुँचा देना होगा यही मेरा व्रत है। मैं इसे पूरा करूँगा या मृत्यु को वरण करूँगा।''[24]

उपर्युक्त कथन उनके समाज-दर्शन सम्बन्धी विचार को पुष्ट करता है। इस बात में सच्चाई है कि स्वामीजी मूलतः समाजशास्त्री नहीं थे, लेकिन उनकी अभिरुचि समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निमाण में थी। अतएव यदाकदा उन्होंने भारतीय इतिहास की समाजशास्त्रीय व्याख्या का प्रयास भी किया है। उनके चिन्तन में मानव-सेवा, समाज-सेवा, और देश-सेवा को उतना ही महत्त्व मिला है, जितना आत्म-लाभ कर मुक्त हो जाने को। वे गरीब, मूर्ख, निर्धन एवं निरक्षर मानव को ही ईश्वर समझते थे और इनकी सेवा करना परम धर्म। अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस से उन्होंने दरिद्र नारायण की उपासना का दर्शन विरासत में पाया था। और 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' अपनी मुक्ति और जगत् कल्याण जैसे द्विविध आदर्श को अपनाया था। वेदान्त के उस भाव- 'एक मात्र देवता सब भूतों में छिपे हैं, सबके आधार हैं', को विराट् सामाजिक जीवन में 'क्रियाशील करने' की दृष्टि से उन्होंने 'शिव बोध' से 'जीव सेवा' का मंत्र गुरु से ग्रहण करके सर्वव्यापी विराट् की 'पूजा' करने का आह्वान भारतवासियों से किया। जन साधारण को तमोगुण त्याग कर स्वदेश की सेवा करने को कहा और संन्यासियों के सम्मुख निःस्वार्थ भाव से 'जीव' रूपी 'शिव' की सेवा को सर्वोत्तम धर्म-साधन बताया। देशवासियों के सम्मुख उन्होंने अपनी पुकार दी :

''तुम लोग किन निरर्थक देवताओं की खोज में भटक रहे हो? और अपने सम्मुख तथा चारों ओर जिस देवता को देख रहे हो, उस विराट् की उपासना क्यों नहीं करते?''[25]

उपर्युक्त कथन संकेत करता है वे मानव सेवा को श्रेष्ठ सेवा मानते थे। उनकी शिक्षा हमें कहती है कि हरेक नर-नारी को ईश्वर के समान देखो, क्योंकि ईश्वर जीव-जीव में अधिष्ठित हैं।''[26] साथ ही धर्म का व्यावहारिक पक्ष है, ''धर्म सिद्धान्त कम रोटी अधिक है।''[27] उनका आशय स्पष्ट था कि सिद्धान्त से कर्म का अधिक महत्त्व है। और तत्समय व्यावहारिक कार्य की अत्यधिक आवश्यकता थी। 1894 वे में उन्होंने अपने एक शिष्य को पत्र लिखा जिसका मजमून यों है :

" Let each one of us pray day and and night for the downtrodden millions in India who are held back by poverty, pristcraft and tyranny... so long as the millions live in hunger and ignorance, I hold every man a traitor who, having been educated at their expense, pays not the least heed to them."[28]

करोड़ों भूखे एवं अशिक्षित लोगों के रहते हुए वे हरके उस व्यक्ति को विश्वासघाती समझते थे, जो उन्हीं भूखे एवं अशिक्षित के खर्च पर शिक्षा पाकर भी उनकी ओर ध्यान नहीं देते। उन्होंने तो यहाँ कह डाला कि वे 'महात्मा' हैं, जिनका हृदय गरीबों के लिए द्रवीभूत होता है और जिनका नहीं होता वे 'दुरात्मा' हैं। स्वामीजी के चिन्तन में धर्म और अर्थ दोनों का विवेचन है, क्योंकि उनके चिन्तन में सामाजिक और राजनीतिक दोनों

प्रकार के दृष्टिकोण का समन्वय है। 'मद्रास टाइम्स' के प्रतिनिधि द्वारा पूछे गए प्रश्न-भारत के पुनरुद्धार के लिए आप क्या करना चाहते हैं?के उत्तर में उन्होंने कहाः

''मेरी समझ में देश के जनसाधारण की अवहेलना करना ही हमारा महान् राष्ट्रीय पाप है, और वह हमारी अवनति का एक कारण है। जब तक भारत की साधारण जनता उत्तम रूप से शिक्षित नहीं हो जाती, जब तक उसे खाने-पीने को अच्छी तरह नहीं मिलता, जब तक उसकी अच्छी तरह देख-भाल नहीं होती, तब तक कितना ही राजनीतिक आन्दोलन क्यों न हो, उससे कुछ फल न होगा।''[29]

स्वामीजी शिक्षा के माध्यम से गरीबी दूर करना चाहते थे। वे यह भी जानते थे कि शिक्षा ही समाज के अशुभों, बुराईयों को दूर करने में आवश्यक भूमिका निभा सकती है। सम्पूर्ण भारत भ्रमण में जब वे हर प्रान्त में घूम रहे थे; उन्होंने भारत की तत्कालीन कमी को अच्छी तरह समझा। मसलन-गरीबी, जाति-प्रथा, जनसाधारण की उपेक्षा, नारी-उत्पीड़न तथा त्रुटिपूर्ण शिक्षा-व्यवस्था इत्यादि और अपने निष्कर्ष तक पहुँचेः "We have to give back to the nation its lost individuality and raise the masses.... "[30]

जिस समय वे उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुँचे, विविदिशानंद से स्वामी विवेकानन्द में परिणत हो गए थे। अब उन्हें उनके जीवन का उद्देश्य (mission) प्राप्त हो गया था। उनके जीवन के इस प्रारम्भिक भाग के चार प्रभावकारी बिन्दु हैं और इन बिन्दुओं ने उनके व्यक्तित्व तथा दर्शन का स्वरूप खड़ा किया। वे संक्षेप में निम्नवत् हैं -

1. ब्रिटिश सरकार के अधीन होकर भारतीय लोग सांस्कृतिक जीवन में महापरिवर्तन के दौर से गुजर रहे थे। ब्रितानी हुकूमत ने भारत को विश्व-समुदाय के सामने ला तो दिया, साथ ही अंग्रेजी शिक्षा तथा आधुनिकीकरण ने एक नई आशा भी जगा दी, लेकिन उस समय तक इनका परावर्ती वास्तविक परिणाम क्या हुआ? जैसा कि स्वामी जी ने कहाः "A few hundred, modernized, half-educated, and denationalized men are all the show of modern English India-nothing else."[31]

   युवा नरेन्द्र हरबर्ट स्पेंसर की क्रान्ति के प्रभाव में आए और उनसे प्रभावित होकर उन्होंने अपने प्रकाशक गुरुदास चट्टोपाध्याय को स्पेंसर की पुस्तक 'Education' का बंगला भाषा में अनुवाद करके दे दिया।32 ऐसा कहा जाता है कि हरबर्ट स्पेंसर के साथ कुछ समय तक नरेन्द्र का नियमित पत्र- व्यवहार जारी रहा। तो भी स्पेंसर और अन्य पाश्चात्य दार्शनिकों के अध्ययन के साथ-साथ संस्कृत भाषा की धार्मिक पुस्तकों का नरेन्द्र ने गहरा अध्ययन किया।

2. श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर के संत ने उस समय के आधुनिक भारत निर्माण में मशरूफ तत्कालीन पारंगत विद्वानों पर अपनी गहरी पकड़ बनाई थी। श्रीरामकृष्ण निरक्षर थे और काली भक्तों के साथ सरल बोली में बात किया करते थे, फिर भी उनकी आध्यात्मिक गहराई और आध्यात्मिक शिक्षा ने बुद्धिजीवियों (intellectual gaints) जैसे -फ्रेडरिक मैक्स मूलर को अत्यधिक प्रभावित किया। नरेन्द्र जब स्वामी विवेकानन्द हुए तो उन्होंने अपने गुरु का आकलन कर गुरु को अपना आदर्श माना, क्योंकि गुरु श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र के भावी जीवन में मानवता, बौद्धिकता, संवेगात्मकता, नैतिकता एवं आध्यात्मिक तत्त्वों से अपने शिष्य को समरस कर दिया था।

3. स्वामीजी को मजबूत और सांस्कृतिक आधार उनके परिवार से भी मिला। उनकी संकलनवादी तथव्यापक अभिरुचि के पीछे उनका पालन-पोषण, लिखाई-पढ़ाई रहा। वस्तुतः युवावस्था में और ज्ञान की निरन्तर चाहत से उन्होंने अभीष्ट ज्ञान पाया और इसी चाहत ने भारत या पश्चिम में जहाँ कहीं भी वे गए अधिकाधिक ज्ञानार्जन में उन्हें संलग्न किया।

4. इसी तरह यह भी महत्त्वपूर्ण बिन्दु है कि भारत से सम्बन्धित जो प्रत्यक्ष ज्ञान (स्वतः ज्ञान) उन्होंने प्राप्त किया वह उनके सम्पूर्ण भारत-भ्रमण का परिणाम था। उनकी तीर्थ-यात्राओं से उनका रूपान्तरित व्यक्तित्व इतना समुन्नत हुआ कि 'सर्वभूतहिते रतः' की उत्कृष्ट भावना उनमें जगी। संयुक्त राष्ट्र, न्यूयॉर्क, इंग्लैंड, ऑक्सफोर्ड, यूरोप में अपने वक्तव्यों से वेदान्त दर्शन की ओर उन देशों के विद्वानों को प्रभावित कर अपने तीन शिष्यों के साथ स्वदेश वापसी पर उनका भव्य स्वागत हुआ। उस समय अपने मन की योजना का संकेत स्वामीजी ने एक पत्र में कियाः "My whole ambition in life is to set in motion a machinery which will bring noble ideas to the door of everybody, and then let men and women settle thir own fate."[33]

उपर्युक्त चारों बिन्दु उनके व्यक्तित्व, दर्शन और समाज-दर्शन की पृष्ठभूमि हैं। स्वामीजी भारत के शैक्षिक और सांस्कृतिक उन्नायक थे। उनका विचार था कि राष्ट्र की समस्याएँ जो नासूर बन कर चिन्तनशील समाज को परेशान कर रही थी, उनकी जड़ में शिक्षा का अभाव एक अन्य मुख्य कारण था। जन-जन के व्यक्तित्व के पुनर्गठन हेतु उनका ध्येय था कि भारत के प्राचीन ग्रन्थों में जो असीम आध्यात्मिक शक्ति का भंडार संचित है, और कुछ व्यक्तियों विशेषतः ब्राह्मणों के एकाधिकार में है, उन्हें जनसामान्य तक पहुँचा देना। उन्होंने कई बार कहा कि भारत झोपड़ियों में बसता है, जो अशिक्षित, मूर्ख और अर्द्धनग्न हैं, उनकी उपेक्षा करना हमारा राष्ट्रीय अपराध है। इसे ध्यान में रखकर राष्ट्र की आवश्यकता वे चिह्नित करते हैं :

''आज इस बात की आवश्यकता आ गई है कि मनुष्य देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण करे और गाँवों में जाकर लोगों को उनके वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराये और उन्हें समझावे कि व्यक्ति को अगर कुछ करना है तो वे अपना आलस्य त्याग दें, क्योंकि इस तरह हाथ पर हाथ धरकर बैठने से काम नहीं चलने को। उनको उनकी अवस्था का ज्ञान कराकर उन्हें अपनी अवस्था सुधारने की अनुमति देनी चाहिए। ... धर्म पर एक ब्राह्मण का जितना अधिकार है उतना ही अधिकार एक चांडाल को भी है।''[34]

इतना ही नहीं तत्कालीन समाज सुधारकों को जो विधवा विवाह द्वारा समाज सुधार के कार्य में लगे थे उनकी एक ढंग से उन्होंने भर्त्सना कर डालीः ''आज के समाज सुधारकों को यह भी पता नहीं है कि घाव कहाँ पर है। ये समाज सुधारक विधवा विवाह के द्वारा देश का उद्धार करना चाहते हैं...सारा राष्ट्र झोपड़ियों में निवास करता है। यह झोपड़ी का राष्ट्र अपना पौरूष विस्मृत कर बैठा है तथा अपना व्यक्तित्व खो चुका है।''[35]

उनका स्पष्ट कथन था कि जनता को इतिहास, भूगोल, विज्ञान और साहित्य की शिक्षा के द्वारा धर्म के पूर्ण सत्य का ज्ञान कराकर सर्वसाधारण को सुसंस्कृत बनाकर, अपनी संस्कृति से परिचित कराकर संस्कृति का पालन भी कराना होगा। स्वामीजी के शिक्षा-दर्शन में धर्म का विशेष महत्त्व है। स्वामीजी ने शिक्षा की परिभाषा में लिखा है, 'मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति', और अपनी उपर्युक्त परिभाषा के अनुरूप तत्कालीन ब्रितानी शिक्षा प्रणाली को अप्रासंगिक एवं अव्यावहारिक कहा। उन्होंने सुझाव दिया :

"Manifestation' indicates spontaneous growth, provided the impediments, if any, are removed."[36]

वेदान्त-दर्शन पर आधारित शिक्षा के अनुरूप मानव की छिपी हुई शक्तियों को उजागर करने का नाम ही शिक्षा है, यह उनकी अवधारणा थी। पूर्णता का तत्त्वमीमांसीय अर्थ है- आत्म-साक्षात्कार या आत्मा की अनुभूति जिसकी प्राप्ति हृदय से ही हो सकती है। हमारी बुद्धि इस ऊँचे स्तर तक हमें नहीं पहुँचा सकती, जहाँ तक हमारे हृदय की पहुँच है। अतः वे स्पष्ट कहते हैं कि हमारी शिक्षा का कर्त्तव्य है हृदय को प्रशिक्षित कर व्यक्ति को निःस्वार्थ बना दे। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो मानव को निर्भीक और साहसी बना दे। अतएव

शिक्षा का उद्देश्य मानव को निःस्वार्थ प्रेम और निःस्वार्थ कार्य करने हेतु तैयार करने का होना चाहिए। उन्होंने संसार के कल्याण हेतु स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने की बात पर बल दिया। उन्होंने नारी-नर की तुलना पक्षी के दोनों पंखों से करते हुए कहा कि जिस तरह कोई पक्षी एक पंख से नहीं उड़ सकता, उड़ने के लिए दोनों पंख चाहिए। उसी तरह केवल पुरूषों के शिक्षित होने से देश का कल्याण तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि स्त्रियों को भी शिक्षित न कर दिया जाए।

राष्ट्र-प्रेम का अर्थ उनके अनुसार देश की जनता के भूख की ज्वाला शांति का प्रयत्न और देश-भक्त का अर्थ हृदय से जनता का कल्याण चाहना। राष्ट्र-प्रेम, देश-भक्ति के साथ ही उन्होंने दूसरे देशों के प्रति सम्मान की भावना रखने को कहाः

> जो शिक्षा व्यक्ति में अन्तर्राट्रीयता की भावना को जागृत नहीं करती
> उसे वास्तव में शिक्षा की संज्ञा नहीं दी जा सकती।[37]

डॉ. पी.के. रॉय चौधरी स्वामीजी के प्रशंसक, अध्येता और अनुयायी हैं, इन्होंने स्वकृत पुस्तक के शीर्षक में ही स्वामी विवेकानन्द को सामाजिक अशान्ति दूर करनेवाला सर्वरोगहर औषधि की संज्ञा दी है और स्वामीजी के शिक्षा-सम्बन्धी चिन्तन की एक विवरणी तैयार करके व्याख्या का प्रयत्न किया है, जो निम्नवत् है -

(i) The theme of education and its philosophy;

(ii) The objects or aim of education;

(iii) The character building education;

(iv) The ends and means of education;

(v) The need of science and technical education for total human unfoldment.38

उपर्युक्त विवरणी के अंतिम बिन्दु द्वारा स्पष्ट होता है कि स्वामीजी ने समस्त मानवों के समक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा प्राप्त करने का आदर्श रखा था। और यह आदर्श उनके दार्शनिक, समाज-दर्शन के साथ-ही समाजशास्त्रीय चिन्तन का द्योतक है। उनके अनुसार चरित्र निर्माण का कार्य मानव के बाल्यकाल से ही प्रारम्भ हो जाता है, अतः हमें बालक के मन में निश्चित और दृढ़ विचारों को बाल्यकाल से ही प्रविष्ट कराना चाहिए। उन्होंने कहा कि सद्विचारों में लीन मानव में अच्छे कार्य के प्रति प्रबल प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। उनके दृष्टिकोण मेंः ''मनुष्य का जिन शक्तियों के साथ सम्पर्क होता है उन सब में कर्म की शक्ति सबसे अधिक प्रबल होती है जो मनुष्य के चरित्र पर प्रभाव डालती है।''[39]

स्वामीजी ने जिस शिक्षा-प्रणाली का प्रस्ताव दिया है, वे मानवीय संभावनाओं के सर्वांगीण समुचित विकास की प्रणाली है। हम यह भी कह सकते हैं कि स्वामीजी की प्रस्तावित शिक्षा-पद्धति में धर्म, नैतिकता, ब्रह्मचर्य आदि को प्रमुख स्थान मिला है। शिक्षा के उद्देश्यों में चरित्र-निर्माण को उन्होंने प्रमुख उद्देश्य बताया था। चूँकि, उनकी धारणा थी कि समस्त ज्ञान मानव के अन्दर अवस्थित है, उसे केवल जागृति और प्रबोधन की जरूरत है। और शिक्षकों का इतना ही कार्य है कि वे बच्चों में जागृति भर दें; क्योंकि बालक स्वयं अपने आपको शिक्षित करता है। उन्हीं के शब्दों मेंः ''तुम किसी बालक को शिक्षा देने में उसी प्रकार असमर्थ हो, जैसे कि किसी पौधे को बढ़ाने में। पौधा अपनी प्रकृति का विकास अपने ही कर लेता है।''[40]

किसी देश की उन्नति में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, ऐसा ही उनका विचार था।

स्वामी विवेकानन्द विलक्षण संगीतज्ञ, विशिष्ट खिलाड़ी, जन्मजात नेता और अविवादी गायक ही

नहीं, अपितु सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ने उन्हें कल्पना रंजित कंठ भी प्रदान किया था। साथ-ही उत्तम वाग्येयकार (रचनाकार) भी थे। उन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत के गायन, वादन और नर्तन पर समान अधिकार था। इतना ही नहीं, बल्कि पाश्चात्य संगीत पर भी उनकी पकड़ थी। स्वामीजी ने बड़े ध्यान से बीथोवेन की शैली सुनी थी, बड़े मनोयोग से हैंडेल का समवेत गान सुना था, पाश्चात्य सांगीतिक ग्रन्थों का अध्ययन किया था। संगीत की शास्त्रसम्मत तथा व्यावहारिक पक्ष दोनों में उनकी समान जानकारी से हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि यदि स्वामीजी 39 वर्ष की अल्प आयु में देह त्याग नहीं करते, तो संगीत-जगत् उनकी संगीत सम्बन्धी रचना पाकर अजस्र उपकृत होता। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में संस्कृत, बँगला, हिन्दी और अंग्रेजी में उन्होंने काव्यों की रचना की। अपनी अनेक सांगीतिक रचनाओं को विभिन्न शास्त्रीय रागों और तालों के साथ समायोजित किया। कुछेक विवरण निम्नवत् हैं -[41]

(1) 'खण्डन भव बन्धन' - राग -यमन ताल-चौताल यह दैनिक प्रार्थना रामकृष्ण संघ के सभी केन्द्रों में प्रतिदिन सभी साज-बाज के साथ गायी जाती है।

(2) 'एकरूप अरूप नाम वरण' - राग - बड़ा हंस सारंग ताल - चौताल

(3) 'नाहि सूर्य नाहि ज्योति' - राग - बागेश्री ताल- अड़ा या इकवी

(4) 'मुझे वारी बनवारी सैंयाँ'- राग - मुलतानी ताल - धीमा तीनताल

ऐसे महापुरूष और महामानव की ओजस्वी वाणी के पीछे जीवन के पूर्वाद्ध में इनका संगीताभ्यास ही था। आपकी मान्यता थी कि ऋतुपरिवर्तन, जलवायु या मौसम परिवर्तन का प्रभाव हर जीव-जन्तुओं के साथ-ही मानव- मस्तिष्क पर पड़ता है। अतः आपने स्पष्ट कहा कि राग-रागिनी प्रस्तुति में गायकों को ऋतु का विशेष ध्यान रखना चाहिएः "... that with the seasonal change of climate our mental disposition also changes and accordingly specific mode like malhar (for rainy season) or Basant (for spring) etc., are liked more .... For example he cited that a lyric with a sense of pathos is sung in Khambaj mode,..[42]

उपर्युक्त पंक्तियों से हम स्पष्ट समझ पाते हैं कि स्वामीजी संगीत के प्रति कितनी गहरी सूझ रखते थे। भले ही हमारी समझदारी गलत हो, लेकिन हम कहना चाहते हैं कि भारत के महान् संगीत शास्त्रज्ञों में इनका शुमार किया जाना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहाँ यह उल्लेख भी अत्यावश्यक है कि स्वामीजी ने 'संगीतकोष,'गीतिमालिका', 'विश्व-संगीत' और 'संगीत कल्पतरु' जैसे अनूठे शास्त्रों की रचना की है। यद्यपि उन्होंने माना कि भारत गणित, आयुर्वेद की प्राचीन उपलब्धियों को खो चुका है, लेकिन संगीत के क्षेत्र में इस देश ने अपनी ऊँचाई बरकरार रखी है। अपनी कृति संगीत कल्पतरु के 'संगीत ओ वाद्य' शीर्षक अध्याय में उन्होंने अपनी परिपक्वता तो उजागर की ही, साथ ही प्रस्तावना में भारत की श्रेष्ठता दर्शाते हुए कहाः "...though India has lost its glories of achievements in Mathematics & in Ayurveda, but in spite of rigorous changes and turmoil through ages, it has mantained its height in musical pursuit."[43]

उन्होंने देश-विदेश-भ्रमण-क्रम में भारत को दुःखी और निर्धन; जबकि पश्चिम को सुखी और सम्पन्न देखा था। साथ-साथ स्वयं अनुभूत किया था कि भारत शांत और संतुष्ट है; जबकि पश्चिम अशांत और असंतुष्ट। उनके मन में बात गहरे पैठी कि मानव-कल्याण, विश्व-कल्याण तभी संभव हो सकता है, जब भारत पश्चिम की तरह समृद्ध बने और पश्चिम भारत की तरह शांत और संतुष्ट हो। उन्होंने गहरा मन्थन किया और विचारा कि ऐसा आपसी लेन-देन से संभव हो सकता है।

व्यावहारिक वेदान्त के प्रतिष्ठापक, भारतीय समकालीन दार्शनिक चिन्तन में मौलिकता और नवीनता के अधिष्ठाता, मानवतावाद के पुरोधा, कर्मठता एवं आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत, भारत के अभिनव निर्माता, सन्तुलन और समन्वय के रचनात्मक धनी, सर्वधर्म समभाव के प्रयोक्ता, सार्वभौम धर्म के प्रतिष्ठाता, समग्र मानवजाति के उद्धारकर्त्ता, अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि, जीवन-पर्यन्त समाजसेवी स्वामी विवेकानन्द उन्नीसवीं शती के प्रतिष्ठा सम्पन्न मूर्धन्य विभूति थे, जिन्होंने पूर्व और पश्चिम के बीच सेतु का काम किया, विश्व संगीत की रचना की। अतएव हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि समाज-दर्शन के क्षेत्र में उनका सिद्धान्त और प्रयोग दोनों ही अनूठे, अनमोल और बेमिसाल हैं। इन्होंने मानव-कल्याण के माध्यम से विश्व-कल्याण किया है, जो इनके समाज-दर्शन की महत्ता का द्योतक है।

दर्शनशास्त्र विभाग
लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर-842001 (बिहार)

सन्दर्भ -

1. *Philosophy in India, Traditions, Teaching & Research, page, 157, Indian Council of Philosophical Research, Guru Nanak Foundation Building, Fourth Floor, New Mehrauli Road, New Delhi- 110067 in association with Motilal Banarsidass, Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi - 110007, First Published : 1985.*
2. *स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप, पृष्ठ 49, श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला, पुष्प 35, प्रकाशक- स्वामी ब्रह्मस्थानन्द अध्यक्ष, राम कृष्ण मठ रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर-440012, पन्द्रहवाँ पुनर्मुद्रणः 2014*
3. *समकालीन दर्शन, पृ0, 360, डॉ0 रामनाथ शर्मा, केदारनाथ रामनाथ कॉलिज रोड, मेरठ-250001, द्वितीय संशोधित संस्करणः 1985-86*
4. *The Chief Currents of contemporary philosophy, preface, p.,V, Calcutta University Press, Third Edition - 1970*
5. *Social Philosophy, Prof. N.V. Joshi,*
6. *समाज दर्शन एवं राजनीति दर्शन की मूल अवधारणाएँ, पृ0, 3, डॉ0 शैल कुमारी सिंह, जानकी प्रकाशन, अशोक राजपथ चौहट्टा, पटना-800004, प्रथम संस्करण, 2015*
7. *समाज दर्शन, पृ0, 6 डॉ. रामनाथ शर्मा*
8. *Sociology, p.,26 M. Ginsberg*
9. *The Elements of Social Justice, p., 27, L.T. Hobhouse.*
10. *History of Western Philosophy, p., 94, Bertrand Russell, Routledge, 11 New Fetter Lane, London EC4P4E, First Published: 2000.*
11. *ऋग्वेद, भाषाभाष्य, प्रथम भाग, पृ., 7, भाष्यकार- महर्षि दयानन्द सरस्वती*
12. *भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-1, पृ, 14, एस.एन. दासगुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्लाट नं.-1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर-302004, तृतीय अनुदित संस्करणः 2003*
13. *'सर्वेषां शान्ति मन्त्र्म्' बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/14*
14. *मानस के महत् तत्त्व, पृ0, 206, डॉ. गणेशानन्द झा, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली-110092, प्रथम संस्करणः 2003*
15. *Memories of the Archeological Survey of India, Vol. LXVI, p.,1, H.Shastri.*
16. *वसुदेव हिण्डी*
17. *Philosophy in India (Traditions, Teaching & Research), pp, 45-46*
18. *एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन ऐंड एथिक्स सम्पादक- जे. हेस्टिंग्स, एडिनबरा, 1908-18*
19. *रे,पी.सीः हिस्टरी ऑफ हिंदू केमिस्ट्री, खण्ड-1, लंदनः1907,खण्ड-2, कलकत्ता, 1925*

20. भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत, पृ., 267 की टिप्पणी से उद्धृत
21. दर्शनकोश, पृ., 596, प्रगति प्रकाशन, मास्को पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस (प्रा.) लिमिटेड 5 ई., रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-110055:1988
22. स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृ. 158, सम्पादक-स्वामी विदेहात्मानन्द, प्रकाशक - स्वामी मुमुक्षानन्द अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम मायावती, चम्पावत, हिमालय कोलकाता स्थित प्रकाशन विभाग द्वारा, प्र. सं.: 2002
23. The Master as I saw Him, pp., 49 -50. और स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृ., 159 से उद्धृत।
24. स्वामी विवेकानन्दः संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, पृ., 21, स्वामी अपूर्वानन्द, तृतीय संस्करण।
25. विवेकानन्द और राष्ट्रवाद, पृ., 136, मेजर (डॉ.) परशुराम गुप्त, प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1661 दखली राय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण : 2013
26. नया भारत गढ़ो, पृ., 46, स्वामी विवेकानन्द।
27. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड-10, पृ., 290
28. Quoted in Swami Vivekanand : An Anthology, p, xxi, Edited and with an Introduction by Bimal Prasad, Vikas Publishing House PVT LTD, 576, Masjid Road, Jangpura, New Delhi - 110014, Reprinted : 1994.
29. स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप, पृ., 73
30. My Idea of Education, p., 11, Swami Vivekananda, compiled by Dr. Kiran Walia, Swami Tattwavidananda Adhyaksha, Advaita Ashrama, Mayavati, Champawat, Uttarakhanda, Himalayas from its Publication Department 5, Dehi Entally Road, Kolkata - 700014, Ninth Reprint : 2015.
31. Complete works of Swami Vivekananda, Vol. -8, p., 476, Advaita Ashrama, Kolkata.
32. Yuganayak Vivekananda, 3 Volumes in 'Bengali, Udbodhan Karyalaya, Vol-I, p., 74, Gambhirahanda Swami, Kolkata : 1996.
33. My Idea of Education, p.,14.
34. भारतीय शिक्षा पद्धति और स्वामी विवेकानन्द, पृ., 54 - 55 डॉ. इसमलाल करहरिया, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, एन.-3/25, मोहन गार्डन, उत्तम नगर, नई दिल्ली- 110059, प्र.सं.:2014
35. वहीं, पृ0, वहीं
36. My Idea of Education, p., 17
37. भारतीय शिक्षा पद्धति और स्वामी विवेकानन्द, पृ., 53
38. Swami Vivekananda : A Panacea for Social Unrest, p.,81, Dr. P.K. Roy Choudhury, Pub.- Dr. Pradip Kumar Roy Choudhury, Lucknow, First Edition : 2011
39. शक्तिदायी विचार, पृ., 51, विवेकानन्द
40. शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, ओड एल.के., राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करणः 1973
41. संगीत नायक विवेकानन्द, निबंध लेखक-पंडित निखिल घोष, प्रधानाचार्य, अरूणसंगीत विद्यालय, खार, मुम्बई, विवेक ज्योति : 1988
42. quoted from Indian Science Cruiser, special Issue, Vol.-26, November-4, July 2012, Article-Narendranath (Swami Vivekananda)- A Maestro in the Field of Music, p., 23, By - Baidya Nath Gupta.
43. 'Sangeet Pratibhay Swami Vivekananda', p., 68

मध्यप्रदेश की संस्कृति में छतरपुर अंचल की भूमिका

विशाल विक्रम सिंह

भारत प्राचीन काल से ही विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं का देश रहा है। प्रारंभ से ही विदेशी शासकों एवं व्यापारियों के आवागमन से यहाँ भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का विकास हुआ तथा नई सभ्यताओं ने जन्म लिया। सभ्यता एवं संस्कृति मनुष्य के विकास के दो पहलू हैं। सभ्यता मनुष्य के मूल एवं अविष्कार की दिशा को प्रस्तुत करती है, एवं संस्कृति मनुष्य के विचारों के चिंतन, सूक्ष्म अवलोकन एवं उनके सुन्दर तत्व की ओर संकेत करती है। संस्कृति अत्यन्त विस्तृत रूप में प्राप्त होती है। इसमें मनुष्य के विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों जैसे-खान-पान, वस्त्र, आभूषण, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद, नृत्य, गायन, वादन, पहनावा इत्यादि को स्थान दिया जाता है। संस्कृति की परिभाषा देते हुये जवाहर लाल नेहरू रामधारी सिंह दिनकर की पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में कहते हैं। कि ''संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उत्पन्न अवस्था है।''[1] लगातार मनुष्यों के द्वारा परम्पराओं का निर्वहन करते रहने से ये संस्कृति का रूप धारण कर लेती हैं। भारत की भौगोलिक दशा ने यहाँ की संस्कृति को सदा प्रभावित किया है। इसलिए भारत के प्रत्येक क्षेत्र की एक भिन्न संस्कृति होती है, जिसे लोक संस्कृति कहा जाता है। भारत की व्याख्या करने मात्र से यहाँ की संस्कृति के विषय में सही ज्ञान नहीं दिया जा सकता है। इसके लिए क्षेत्रवार अध्ययन की नितान्त आवश्यकता होती है।

भारत विविधता से भरा देश है। यदि इसकी भौगोलिकता पर ध्यान केन्द्रित करें, तो विभिन्न प्रकार की जलवायु, मृदा, वन एवं भौगोलिक परिवेश प्राप्त होते हैं। किसी क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा होती है तो किसी क्षेत्र में अत्याधिक गर्मी पड़ती है। कोई क्षेत्र मरूस्थलीय है, तो कोई क्षेत्र वार्षिक जलवायु परिवर्तन को झेलता है। किसी क्षेत्र की मिट्टी अधिक उपजाऊ तो किसी क्षेत्र की कम उपजाऊ होती है। कहीं समतल भूमि है, तो कहीं पठार। इन भिन्नताओं के कारण यहाँ निवास करने वाले मनुष्यों के जीवन पर इसका प्रभाव पड़ता है। इसके आधार पर ये जीवन व्यतीत करने का प्रयास करते हैं। जिससे इनके खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, में परिवर्तन होता है, जो इनकी संस्कृति को प्रभावित करते है। भारत और संस्कृति का रिश्ता अत्यंत प्राचीन है। यदि आर्यों के आगमन को देखा जाये तो ये अवश्य प्रतीत होगा कि प्रारंभ में सामाजिक उत्पत्ति उत्तर भारत से ही प्रारंभ हुयी क्योंकि इसके साक्ष्य गंगा नदी के मैदानी भागों से प्राप्त होते हैं एवं धीरे-धीरे इसका विकास दक्षिण की ओर हुआ। भारत उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में हिन्द महासागर एवं पूर्व में बंगाल की खाड़ी से पश्चिम में अरब सागर तक फैला है। इसका विभाजन वर्तमान में राज्यों के रूप में है। परंतु प्राचीन काल में इसे भौगोलिकता एवं भाषा के आधार पर विभक्त किया गया था। तत्पश्चात धीरे-धीरे विभाजन को अधिक

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

विस्तृत रूप प्रदान किया गया। जैसे- जैसे समय बीतता गया। भारतवर्ष की विभाजन प्रक्रिया तीव्र होती गयी। मध्यप्रदेश का विभाजन प्रारम्भ हो गया। इसके इसके अन्तर्गत बुन्देलखण्ड, मालवा, कोशल, बघेलखण्ड, निमाड़, इत्यादि का निर्माण हुआ। मध्य देश की भाँति अन्य का विभाजन भी प्रारम्भ हो गया।

मध्यप्रदेश के इतिहास को प्रकट करने में प्रो.आर. लेडकर ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके अनुसार प्रसिद्ध जुरासिक पार्क की भूमि आज के मध्यप्रदेश में थी।[2] वैदिक एवं पौराणिक साहित्यों में इस क्षेत्र का वर्णन प्राप्त होता है। आर्यावर्त के पाँच भौगोलिक भागों को उदीचि (उत्तर), प्रदीची (पश्चिम), प्राची (पूर्व), दक्षिण और मध्य भाग के रूप में माना जाता है, इसी मध्य भाग को मध्य देश की संज्ञा दी गयी।[3] प्राचीन काल तक इस क्षेत्र को मध्यदेश के रूप में जाना गया। ऐतरेय ब्राह्मण का अध्ययन करने से ऐसा प्राप्त होता है कि मध्यप्रदेश का क्षेत्र वर्तमान कानपुर की गंगा घाटी तक फैला हुआ था। इस साहित्य के अनुसार मध्यदेश के अर्न्तगत् कुरू, पांचाल, वश और उशनीर जनपद आते थे। मनुस्मृति के अनुसार मध्य देश की पूर्वी सीमा प्रयाग थी।[4] विनयपिटक के अनुसार मध्यदेश का विस्तार पश्चिम में थानेश्वर से लेकर पूर्व में भागलपुर के निकट तक था। उत्तर में हिमालय और मध्य देश में विन्ध्य पर्वत ने इनकी सीमा का निर्धारण किया।[5] ऋग्वैदिक काल में रेवा नदी के उत्तरी भाग को मध्यप्रदेश के रूप में माना गया था।

मध्यप्रदेश के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण, मनुस्मृति, बौद्ध ग्रंथ विनय पिटक एवं जैन ग्रंथ भगवती सूत्र में वर्णन प्राप्त होता है। ये सभी इसकी सीमा का भिन्न-भिन्न वर्णन करते हैं मनुस्मृति के अनुसार, उत्तर, में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत पूर्व में प्रयाग तथा पश्चिम में सरस्वती नदी स्थित है।[6] जबकि बौद्ध ग्रंथ विनयपिटक के अनुसार इसकी सीमा आधुनिक बिहार तक फैली हुयी थी। पौराणिक ग्रंथों में इसकी राजधानी त्रिपुरी बतलायी गयी, जो जबलपुर जिले में नर्मदा नदी के तट पर स्थित एक स्थान है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने चेदि जनपद की राजधानी को शुक्तिमती के रूप में दर्शाया है।[7] इतिहासकार के.डी. बाजपेयी ने इसकी राजधानी की पहचान उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले के नजदीक स्थित सेउढ़ा नामक स्थान से की है, जो वर्तमान केन नदी के तट पर स्थित है। पार्जिटर ने भी मत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ''इन्द्र के आदेश पर कुरूवंश के राजा वसु ने पूर्व में मगध, उत्तर-पश्चिम में मत्स्य देश तक अपनी सीमा का विस्तार किया। जिससे उसका राज्य चेदि, मगध, करूष, तथा कौशाम्बी तक फैल गया। सागर जिले में 20 कि.मी. उत्तर-पश्चिम में धसान नामक नदी प्रवाहित होती है, जिससे इस पूरे क्षेत्र को इसके आधार पर दशार्ण कहा गया है।[8] इसके अतिरिक्त भी अन्य पौराणिक उल्लेख चेदि जनपद के विषय में जानकारी देते हैं। बाल्मीकि रामायण में भी मध्यप्रदेश के उन क्षेत्रों का वर्णन प्राप्त होता है जो वर्तमान में जिलों के रूप में स्थापित है। जिसके अनुसार राम अपनी यात्रा के समय चित्रकूट से सतना, शहडोल, अम्बिकापुर, बिलासपुर, रायपुर होते हुये दण्डकारण्य (वर्तमान बस्तर) पहुँचे।[9]

छठी शताब्दी ई.पू. में वर्णित 16 महाजनपदों में से अवन्ति एवं चेदि भी दो महत्वपूर्ण जनपद थे। जिसमें अवन्ति जनपद की राजधानी उज्जैनी (उज्जैन, म.प्र.) एवं चेदि जनपद की राजधानी शुक्तिमती बतायी गयी है। के.डी. बाजपेयी ने शुक्तिमती को उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले के पास केन नदी के तट पर स्थित बतलाया है। मध्यप्रदेश के इतिहास के विषय में साहित्यिक स्रोतों में रामायण, महाभारत, रघुवंश, वायुपुराण, मालविकाग्निमित्रं, शिशुपालवधं, पृथ्वीराजरासो, आल्हाखंड से ज्ञान प्राप्त होता है। भौगोलिकता के आधार पर मध्यप्रदेश को मालवा और विन्ध्य पहाड़ियों, बुन्देलखण्ड, रीवा पठार, नर्मदा नदी घाटी, सतपुड़ा पहाड़ी, ऊपरी महानदी घाटी (छत्तीसगढ़) एवं बस्तर के पठार में विभक्त किया गया है। षोडस महाजनपदों में से अन्तिम चार प्रमुख जनपदों के रूप में मगध, कोशल, वत्स एवं अवन्ति जनपद ही अपना स्थान सुदृढ़ कर सके। यादव जनजाति ने हैहय वंश की अवन्ति शाखा को अपना नाम दिया।[10] प्रद्योत के शासन काल में अवन्ति जनपद ने

महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। महावस्तु भारत के महान राज्यों में दशार्ण का नाम भी बतलाते हैं। यह पूर्वी मालवा के पुराने नामों में से एक था। इसकी राजधानी मध्यप्रदेश में स्थित है।

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में शासन करने वालों में मालवा के मालव वंश, नरसिंहपुर पर प्रार्जुन, पूर्वी मालवा पर सनकानिक एवं काकनादबोट (साँची) पर काक वंश का अधिकार था।[11] कलचुरियों ने विजय के पश्चात उज्जैनी को ही अपना प्रमुख नगर बनाया। छठी शताब्छी ई. के अंत में बादामी के चालुक्यों ने कलचुरियों पर आक्रमण किया। जिससे पश्चिमी मालवा का क्षेत्र कलचुरियों से मैत्रकों के पास चला गया। जैन ग्रंथ कुवलयमाला एवं हरिवंश पुराण तथा ग्वालियर प्रशस्ति वत्सराज के क्षेत्र (मालवा एवं राजस्थान) तक का वर्णन करते हैं। प्रतिहारों के अंत से इनके सामन्तों की स्थिति सुदृढ़ हुयी। इनमें जेजाकभुक्ति के चन्देल, डाहल के हैहय, मालवा के परमार इत्यादि शामिल थे। परमारों के काल में मालवा को अत्यंत प्राचीन नाम अवन्ति-अकरा (दशार्ण) नाम मिला। जेजाकमुक्ति के चन्देलों ने महोबा एवं कालंजर को राजधानी बनायी। इस वंश की स्थापना नन्नुक के द्वारा 9वीं शताब्दी ई. के लगभग की गयी। इनके द्वारा जिस क्षेत्र पर शासन किया गया, उसे बुन्देलखण्ड की संज्ञा दी गयी, जो पश्चिमी रीवा का क्षेत्र है। अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर शाही राजवंश खर्जुरवाहक नामक स्थान से संबंधित है, जो आधुनिक समय में छतरपुर मे स्थित खजुराहो से संबन्धित है। जो मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित है।

इन समस्त क्षेत्रों की संस्कृति स्वयं में पृथक-पृथक महत्व रखती है। मालवा, निमाड़, चंबल, बघेलखण्ड के हिस्सों को मिलाकर मध्य प्रदेश का निर्माण किया गया। अतः मध्य प्रदेश इन समस्त भू-सांस्कृतिक क्षेत्रों की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। इसका इतिहास अत्यन्त ही प्राचीन है। महाभारत में भी इसका उल्लेख किया गया है। शिशुपालवधम में चेदि जनपद के रूप में इसका उल्लेख मिलता है। मौर्य शासन काल में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों में इस क्षेत्र के होने का प्रमाण है। ''अशोक के द्वारा स्थापित करवाये गये अभिलेखों में जबलपुर से प्राप्त रूपनाथ एवं दतिया जिले में स्थित गुर्जरा नामक अभिलेख से यह सिद्ध होता है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र भी उस काल में मौर्य साम्राज्य का हिस्सा था।''[12] बौद्ध साहित्यों, प्राप्त गुहा लेखों, मृदभाण्डो, शैल-चित्रों इत्यादि से इस क्षेत्र की ऐतिहासिकता अधिक प्राचीन सिद्ध होती है। इस क्षेत्र को भारत के मध्य भाग में स्थित होने के कारण भारत की हृदय स्थली भी कहा जाता है। परंतु मात्र मध्य भाग में स्थित होने के कारण ही नहीं अपितु प्रत्येक कालों में इसकी अलग-अलग महत्ता होने के कारण भी इसकी भूमिका अधिक श्रेष्ठ रही है। शुंग काल में भी इस क्षेत्र में सांची स्थित स्तूप के तोरण द्वारा का पुनर्निमाण करवाया गया। हर्ष के समय में इस क्षेत्र की महत्ता में अधिक वृद्धि हुई। कन्नौज के अन्तर्गत होने के कारण इस क्षेत्र को राजनीतिक विस्तार प्राप्त करने में अधिक सफलता प्राप्त हुयी। हर्ष की मृत्यु के पश्चात सम्पूर्ण उत्तर भारत में अराजकता का विस्तार हो गया एवं इसे समाप्त करने में चन्देल शासकों ने अपना सम्पूर्ण योगदान दिया। हर्ष कालीन राज्य के अधिकांश क्षेत्रों की विजय करके साम्राज्य को एक सूत्र में बांधने में ये सफल हुए। इनका राज्य बुन्देलखण्ड क्षेत्र को माना गया, जिसे प्रांरभ में 'जेजाकभुक्ति' के नाम से जाना जाता था।

बुन्देलखण्ड के नाम के आधार पर इसका संबंध बुन्देला राजाओं से प्रतीत होता है। बुन्देलों के नाम पर ही इस क्षेत्र का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा। बुन्देलखण्ड शब्द का प्रयोग पहली बार मध्य काल में देखने को मिलता है। इसी समय इस क्षेत्र पर बुन्देलों का शासन था। वर्तमान में बुन्देलखंड दो राज्यों उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के कुछ जिलों का सम्मिलित रूप है। इसमें वर्तमान में मध्यपदेश के दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, दमोह, सागर, जबलपुर, सतना, शिवपुरी और गुना तथा उत्तरप्रदेश के झाँसी, ललितपुर, जालोन, उरई,

राठ, काल्पी, महोबा, कालिंजर, चित्रकूट आदि जिले आते है।[13] परंतु इनमें भी मतभेद देखने को मिलता है के.के. शाह ने बुन्देलखण्ड को उ.प्र. के पांच जिलों बाँदा, हमीरपर, जालोन, झाँसी, ललितपुर, तथा मध्यप्रदेश के छः जिलों दतिया, टीकमगढ़, पन्ना, छतरपुर, सागर, दमोह से सम्मिलित होकर बना हुआ कहा है।[14] बुन्देलखण्ड की सीमा को लेकर सभी इतिहासकार एक मत है। इसकी भौगोलिक सीमाओं का निर्धारण यहाँ की नदियाँ करती हैं।

बुन्देलखण्ड की सीमा का निर्धारण प्रसिद्ध पुरातत्वविद् कनिंघम ने भी करने का प्रयत्न किया। उनके अनुसार "बुन्देलखण्ड के अधिकतम विस्तार के समय इसमें गंगा और यमुना का समस्त दक्षिणी प्रदेश, जो पश्चिम में बेतवा नदी से, पूर्व में चंदेरी और सागर जिलों सहित विंध्यवासिनी देवी के मंदिर तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी के मुहाने के निकट बिल्लहारी तक प्रसारित रहा।[15] इस क्षेत्र की सीमा के सम्बन्ध में नर्मदा प्रसाद गुप्त जी ने अपने विचार को अत्यंत ही विस्तृित रूप से प्रस्तुत किया है। इनकी दृष्टि में उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के कुछ जिलों का संयुक्त रूप बुन्देलखण्ड है। उनके अनुसार "उत्तरप्रदेश के जालौन, झाँसी, ललितपुर, हमीरपुर एवं बाँदा, नरैनी एवं कर्वी तहसीलों का दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिमी भाग एवं मध्यप्रदेश के पन्ना छतरपुर, टीकमगढ़, दतिया, सागर, नरसिंहपुर, जबलपुर जिले के जबलपुर एवं पाटन तहसीलों का दक्षिणी एवं दक्षिणी पश्चिमी भाग, होशंगाबाद की होशंगाबाद एवं सोहागपुर तहसील, रायसेन जिले की उदयपुर सिलवानी, गैरतगंज, बेगमगंज, बरेली, तहसीले एवं रायसेन गौहरगंज, तहसीलों का पूर्वी भाग, विदिशा जिले की कुरवाई तहसील और विदिशा, बासोदा, सिरोंज, तहसीलों के पूर्वी भाग, गुना जिले की अशोक नगर और मुगावली तहसीलें, शिवपुरी ग्वालियर भिंड इत्यादि जिलों की कुछ तहसीलें बुन्देलखण्ड की सीमा में आती हैं।[16]

भौगोलिक दृष्टि से इसकी सीमा का निर्माण मात्र जिलों या तहसीलों से नहीं किया जाता है, बल्कि इस क्षेत्र में बहने वाली नदियाँ भी इसकी सीमा का निर्धारण करती हैं। जो कुछ इस प्रकार है[17]-

इत यमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टोंस।
छत्रसाल सो लरन की, रही न काहू होंस।।

इससे यह स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना एवं दक्षिण में नर्मदा नदी थी। इसके पश्चिम में चंबल तथा सिंध नदी एवं पूर्व में टोंस नदी प्रवाहित होती थी। बुन्देलखण्ड नाम का प्रयोग सर्वप्रथम 1335-40 ई. में तब हुआ, जब इस क्षेत्र पर बुन्देला सरदारों का आगमन होता है।[18] परंतु प्राचीन काल में इसके भिन्न-भिन्न नाम बतलाये गये हैं। क्योंकि किसी भी क्षेत्र का नामकरण प्राचीन काल में वहाँ के शासकों, निवासियों या वहाँ हुये किसी महत्वपूर्ण कार्य के अनुरूप किया जाता है। कभी-कभी प्राकृतिक दशाएँ भी उपयोगी हो जाती है। कुछ ऐसे ही कारण बुन्देलखड के परिवर्तित नामों के लिए भी रहे। यह प्रदेश विन्ध्यपर्वत श्रेणियों में होने के कारण विन्ध्य खण्ड अथवा बघेलखण्ड कहलाया। जो आगे चलकर बुन्देलखण्ड में परिवर्तित हो गया। इसके पहले इस क्षेत्र का नाम जेजाकभुक्ति या जेजाभुक्ति था। यह नाम चन्देलों के शासन काल में रखा गया। चंदेल वंश के तृतीय राजा जेजा अथवा जयशक्ति के नाम पर इसे जेजाकभुक्ति या जेजाभुक्ति की संज्ञा दी गयी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने चिह-चि-तो प्रान्त के भ्रमण की चर्चा की है। चिह-चि-तो वास्तव में जेजाकभुक्ति ही था।[19] यह स्पष्ट होता है कि ह्वेनसांग के द्वारा इस क्षेत्र का भी भ्रमण किया गया। इसका एक अन्य नाम भी प्राप्त होता है। इस क्षेत्र को जुझौती की संज्ञा भी दी गयी है। यहाँ निवासरत् जुझौतिया ब्राह्मणों के नाम पर इस क्षेत्र को यह नाम दिया गया।

जुझौती ही इसका प्रथम नाम था, इसमें 42,000 गाँव सम्मिलित थे और कान्तिपुर, चेदि एवं मालवा देश की सीमाएँ थी।[20] महमूद गजनबी के साथ आये यात्री अबूरीहान ने सर्वप्रथम इसका उल्लेख किया। इन्होंने

इस क्षेत्र की राजधानी खजुराहो को बताया। इब्नबतूता ने इस नगर को 'खजूर' से सम्बोधित किया था। इसका नाम दशार्ण इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदी धसान या दशार्ण से पड़ा। दशार्ण नरेश सुधर्मा तथा पाण्डूनन्दन भीम के युद्ध का वर्णन महाभारत में किया गया है।[21] इन समस्त नामों के अतिरिक्त प्रारम्भ में इस क्षेत्र का नामकरण चेदि शासकों के नाम पर किया गया। जिसके विषय में अनेकों साहित्यों से जानकारी प्राप्त होती है। ऐसा मत है कि वर्तमान बुन्देलखण्ड का क्षेत्र प्राचीन चेदि जनपद का ही क्षेत्र है। पुराणों में इसका एक अन्य नाम मध्यदेश भी प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इसे युद्धदेश के नाम से भी जाना गया है। यह अंचल महर्षि दधीचि की तपोभूमि है, पौराणिक वृत्त के अनुसार उनकी अस्थियों के कणों से हीरे (वज्र) बने थे। अतः इस देश की ख्याति वज्र देश से भी होती है।[22] जेजाकभुक्ति के विस्तार के विषय में केशव चन्द्र मिश्र का कथन है। कि इसमें हमीरपुर, जालौन, झाँसी, ललितपुर, बाँदा, सागर, और बेलारी के जिले एवं उत्तरप्रदेश के काशी के निकट से मिर्जापुर इलाहाबाद के भाग सम्मिलित थे। इसके अतिक्ति ओरछा, टेहरी, दतिया, समथर, अजयगढ़, अलीपुर, टोरी, फतेहपुर, बिजना पहाड़ी बका, बरोंद, बाजनी, पालदेव, पाढ़ा, छतरपुर, गारौली, जिगनी, लुगासी, पन्ना, सरिला, तथा अन्य अनेक छोटी-छोटी रियासतें इसके विस्तार के अंतर्गत थी।[23]

बुन्देलखण्ड का क्षेत्र पर्वतों तथा पठारों एवं नदियों से घिरा हुआ है। यदि इसके भौगोलिक स्थित पर ध्यान केन्द्रित करें, तो अनेकों नदियों के नाम हमारे मस्तिष्क में आते हैं। जैसे-विन्ध्य, धसान, बीना, बेतवा, केन, यमुना इत्यादि। ये इस क्षेत्र से संबंधित प्रमुख नदियाँ हैं। यहाँ की विन्ध्य पर्वत श्रृंखला को प्राचीन काल के सात कुल-पर्वतों में से एक माना-जाता है।[24] इस क्षेत्र का सीमांकन यहाँ की नदियाँ करती हैं। इनके प्राचीन नाम भी प्राप्त होते हैं। यमुना को कालिंदकन्या और कालिन्दतन्या भी कहा जाता है। बेतवा का प्राचीन नाम वेत्रावती एवं धसान का प्राचीन नाम दशार्ण मिलता है। जिससे इस क्षेत्र को दशार्ण क्षेत्र भी कहा गया। यह नदी झाँसी और हमीरपुर जिले के मध्य सीमा का निर्धारण करती है। सिंध यहाँ की प्रमुख नदी है, जो मालवा में सिरोंज के पास से निकलकर कुछ दूर उत्तर की ओर जाकर बुन्देखलण्ड की सीमा में प्रवेश करती है। केन नदी बुन्देलखण्ड के दक्षिण से निकलकर लगभग 130 मील उत्तर में प्रवाहित होकर यमुना नदी में गिरती है। यमुना की कुछ अन्य सहायक नदियाँ भी हैं। इनमें उर्मला और चन्द्रमाला इसके बायें किनारे से मिलती है तथा सुदूर पूर्व में बागै तथा पैसुनी नदियाँ दक्षिण पश्चिम से उत्तर की ओर बहती हुयी यमुना में मिलती है।[25]

यमुना नदी बुन्देलखण्ड की लगभग 250 मील की सीमा का निर्धारण करती हैं। इस क्षेत्र के पठारों या पहाड़ियों से घिरे होने के बाद भी यहाँ समतल मैदानी क्षेत्र भी प्राप्त होता है। जो दक्षिण से उत्तर की तरफ फैला है। झांसी-जालौन के क्षेत्र में इस मैदानी भाग की अधिकता है। इसके साथ ही यहाँ तीन पर्वत श्रेणियाँ विन्ध्य, पन्ना एवं भाण्डीर प्राप्त होती है। विन्ध्य पर्वत श्रेणी की सीमा सिंध नदी के तट पर स्थित सिहोड़ से प्रारम्भ होकर दक्षिण पश्चिम में नरवर तक जाती हे। इसके बाद यह दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ कर पुनः उत्तर-पूर्व में मुड़ती है और कालिंजर तथा अजयगढ़ तक जाती है। पूर्व दिशा में बरहद एवं विन्ध्यवसिनी देवी मंदिर होते हुये गंगा नदी के किनारे तक जाती है। समुद्र तल से इसकी उंचाई कहीं भी 200 फीट से अधिक नहीं है। इसकी औसतन चौड़ाई 12 मील है। पन्ना श्रेणी की सीमा विन्ध्यांचल के दक्षिणी भाग से प्रारंभ होकर बांदा जिले के कर्वी तहसील तक है। इसकी ऊँचाई समुद्र तल से लगभग 1200 फीट ऊँची है एवं बालू की चटट्ानों से बनी है। भाण्डीर पर्वत श्रेणी पन्ना श्रृंखला के दक्षिण-पश्चिम में लुहार गाँव से प्रारंभ होती है। यह अन्य दो पर्वत श्रेणियों से अधिक विस्तृत है। इसकी ऊँचाई समुद्र तल से लगभग 1700 फीट है। यह बालू चट्टानों एवं लोहे के जंग के रंग वाले पत्थरों से बनी श्रृंखला है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र प्राचीन काल से साम्राज्यों के अंग के रूप में विकसित हुआ। परंतु हर्ष की मृत्यु के

पश्चात् मध्यप्रदेश में राजपूत राजाओं का उदय हुआ। यह क्षेत्र चन्देल वंश के समय में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थिति को प्राप्त कर सका। आर्यावर्त के राजाओं में प्रतिहारों ने ही स्थायी आधिपत्य स्थापित किया। इनके शासन काल में प्रतिहारों का साम्राज्य पंजाब से लेकर मगध तक फैल गया एवं राजपूताना ग्वालियर, अवन्ति और सौराष्ट्र को भी अपने अधीन किया। परंतु राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय ने प्रतिहार सम्राट महिपाल को पराजित करके इनकी शक्ति को नष्ट कर दिया। प्रारंभ में चन्देल प्रतिहारों के सामन्त थे। परन्तु महिपाल के पराजित होने का लाभ उठाकर चन्देल शासकों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। एक कथानक के अनुसार काशी के गहढ़वाल शासक एवं विन्ध्यवासिनी देवी के परमभक्त हेमकर्ण पंचमवीर विन्ध्येला राजा बने। उन्हीं के वंशजों द्वारा शासित प्रदेश विन्ध्येलखण्ड कहलाया। ओरछा के शासक महाराज वीर सिंह देव प्रथम के राज्य क्षेत्र में वर्तमान बुन्देलखण्ड तथा पश्चिमी बघेलखण्ड का कुछ भाग शामिल था। भौगोलिक मापदण्डों के अनुसार जेजाकभुक्ति 22^{0} और 27^{0} उत्तरी अक्षांश तथा 75^{0} और $831/2^{0}$ पूर्वी देशांश रेखाओं के मध्य पड़ता था। एक मान्यता यह भी है कि कुछ समय के लिए जयशक्ति नरेश यहाँ का शासक बना, जिसके नाम पर इसे जैजाकभुक्ति कहा गया। जुझौतिया की राजधनी खजुराहो को बतायी गयी, जो कन्नौज से लगभग 90 मील दक्षिण-पूर्व में स्थित है। इब्नबतूता ने इस स्थान को खजूर के नाम से पुकारा, जिस कारण इसका नाम खजुराहो पड़ गया। यहाँ चन्देल कालीन अनेक मंदिर भी हैं। वर्तमान में यह छतरपुर जिले में स्थित है।

छतरपुर जिले के रूप में इसका निर्माण सन् 1707ई. में राजा छत्रसाल बुन्देला के नाम पर किया गया। परन्तु छतरपुर के रूप में स्थापित होने से ही इस क्षेत्र का इतिहास प्रारम्भ नहीं होता है। बुन्देला सरदारों के अधिकार में आने से पूर्व इस क्षेत्र पर पूर्व मध्यकाल के शासकों जैसे- कलचुरि, चन्देल, गौंड का शासन रहा। परन्तु इसकी ऐतिहासिकता वहीं समाप्त नहीं हुई, क्योंकि यहाँ से पाषाण युगीन उपकरणों का प्राप्त होना इसकी प्राचीनता को बतलाता है। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड पठार के बीच में स्थित है अर्थात जब छतरपुर के रूप में इसका कोई अस्तित्व नहीं था तो यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड के रूप में ही जाना जाता था। इस क्षेत्र को बौद्ध कालीन सोलह महाजनपदों में चेदि जनपद के रूप में स्थान प्राप्त था। परन्तु इसके भी पूर्व इस भू-भाग से मानव की उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं। जिससे इस क्षेत्र की प्राचीनता पाषाण युगीन सिद्ध होती है। यह क्षेत्र वर्तमान भौगोलिक परिदृश्य में मध्य प्रदेश के सागर संभाग का उत्तरी भाग है, जो $24^{0}6'$ और $25^{0}20'$ उत्तरी अक्षांश तथा $78^{0}59'$ और $80^{0}26'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य समान्तर में फैला हुआ है। इस प्रकार यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड के लगभग मध्य में स्थित है।[26] मध्य भाग में स्थित होने के कारण छतरपुर पुरातात्विक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः छतरपुर के अध्ययन से पूर्व बुन्देलखण्ड का अध्ययन अतिआवश्यक होगा।

बुन्देलखण्ड एवं उसकी केन्द्र स्थली के रूप में स्थित छतरपुर का उल्लेख साहित्यों में प्राप्त होता है। परन्तु किसी भी क्षेत्र के इतिहास एवं संस्कृति के विषय में अधिक उचित एवं सटीक रूप से जानने के लिए पुरातत्व एक उपयुक्त साधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। किसी भी क्षेत्र की संस्कृति एवं सभ्यता का इतिहास पुरातत्व के बिना जानना कठिन होता है। क्योंकि साहित्यिक स्रोत किसी भी क्षेत्र की सही स्थिति का बोध पूर्ण रूप से नहीं करवा सकते। अतः पुरातत्व के माध्यम से ही साक्ष्यों का संकलन करके क्षेत्रों की उचित स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है। छतरपुर जिले का आकार दक्षिण-पश्चिम में उत्तर-पूर्व की ओर आयताकार फैला हुआ है। इसकी सीमा उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले से तथा दक्षिण-पश्चिम की सीमा सागर जिले से मिलती है। कुछ स्थानों से छठी एवं सातवीं शताब्दी ईस्वी के लगभग पाषाण युगीन औजार मिले है। वर्तमान में छतरपुर जिले की पहचान वहाँ स्थित खजुराहो से की जाती है। क्योंकि यूनेस्को द्वारा खजुराहो के मंदिर समूहों को विश्व धरोहर के रूप में स्थापित किया गया है। परंतु खजुराहो स्थित इन मंदिर समूहों के अतिरिक्त

इस क्षेत्र में कई अन्य पुरास्थल भी प्राप्त हुये हैं। खजुराहो जिसका एक अन्य नाम खर्जूरवाह प्राप्त होता है। अल्बरूनी ने भी इसका वर्णन किया है। यहाँ से प्राप्त मंदिर समूहों के कारण यह विश्व विरासत के रूप में भी जाना जाता है। इन मंदिर समूहों के भित्ति चित्रण के माध्यम से उस काल के समाज को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया। मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड अंचल में स्थित छतरपुर की महत्ता अत्यंत प्राचीन रही है। यहाँ जतकारा में ग्रेनाइट, बटिकाश्म (पेबल), कुट्टवक (चॉपर) तथा चूना पत्थर पर निर्मित हस्तकुठार भी प्राप्त हुआ है। मौहारी संरक्षित वन क्षेत्र, खजुराहो के उत्तर में 5 कि.मी. दूरी पर स्थित राजनगर, खजुराहो मंदिर समूह, पुतली का दाता शैलाश्रय, जतकारा, बेनीगंज, सकेरा, मनयागढ़, मउसुहनिया, चौसठ योगिनी मंदिर एवं भीमकुण्ड के मंदिर समूह भी हैं।

जैसा कि प्रारंभ में उल्लेख किया गया है कि मध्य प्रदेश पांच भू-सांस्कृतिक क्षेत्रों का सम्मिलित प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए इसकी संस्कृति में असमानताएं प्राप्त होती है। मध्यप्रदेश के निवासियों के खान-पान, वस्त्राभूषण, सामाजिक व्यवस्था, भाषा-बोली इत्यादि इनकी क्षेत्रीयता को प्रदर्शित करते हैं। यहाँ के वस्त्राभूषण, खान-पान, भाषा-बोली लगभग समान है, परंतु क्षेत्रीय भिन्नता होने के कारण इनके नाम भिन्न-भिन्न हो जाते है। जैसे- आभूषणों के नाम चंबल क्षेत्र में लच्छे, पायल, पायजेब, झांझ, करधनी, तगड़ी, चूड़ी, गुंज, कंगने, बाली, कर्णफूल, तरकी, और पुंजनी प्राप्त होता है।[27] विन्ध्य में गोफ, गुंज, कंठा, ककु, नैया, लौंग, बाली, नथुनी या फुलिया तथा बाले, झुमकी तथा धार आभूषणों के लिए उच्चारित होते थे।[28] इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों से भी समान आभूषणों के भिन्न-भिन्न नाम सुनने को मिलते हैं। भाषा एवं बोली प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न रही है। जिसमें बुन्देलखण्ड में बुन्देली, बघेलखण्ड में बघेली का प्रयोग किया जाता है। यहाँ मात्र उपर्युक्त बोलियाँ ही नहीं अपितु निमाड़ी, मालवी, भदावरी एवं समस्त जनजातियों द्वारा प्रयोग होने वाली बोलियाँ भी है। जो अपनी-अपनी संस्कृति की संवाहक भी है। मध्यप्रदेश में अधिकांश हिन्दू आबादी है। अतः यहाँ वर्तमान में भी वर्ण व्यवस्था का पालन होता है। जहाँ समाज चार वर्णों में विभक्त है। दलितों की स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ है। महिलाओं की स्थिति शहरों में अच्छी है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महिलाओं के घर से बाहर निकलने पर पाबंदी है, एवं पर्दा प्रथा का भी प्रचलन है। चन्देल नरेश परमर्दिदेव के राज्यकाल में नारी को सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं था। उसे मात्र काम वासना का साधन मानते थे।[29] पहनावे के अन्तर्गत वर्तमान में अधिक भिन्नता प्राप्त नहीं होती है। भौगोलिक दशा ने मध्यप्रदेश के निवासियों के रहन-सहन में अधिक बदलाव किया एवं मध्यप्रदेश की सीमा से लगे अन्य राज्यों ने यहाँ की भाषा, खान-पान पर अधिक प्रभाव डाला। जैसे- राज्य के भोपाल, बुरहानपुर, सिरोंज, और कुरवाई में उर्दू भी बोली जाती है। छिंदवाड़ा और बुराहनपुर के कुछ भाग में मराठी एवं बालाघाट, अनूपपुर में छत्तीसगढ़ी भाषा का भी प्रचलन रहा है।[30]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र से सम्बन्धित जिलों का इतिहास भी अत्यन्त प्राचीन रहा है। वर्तमान में इसके अन्तर्गत आने वाले जिलों में कई ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त हुये है। जिस प्रकार छतरपुर के खजुराहो मंदिर समूह से इसे प्रसिद्धि प्राप्त हुयी। उसी प्रकार सागर जिले में एरण नामक स्थल भी इसकी प्रसिद्धि का एक कारण है। यह स्थल अत्यन्त प्राचीन है एवं इसे गुप्त शासकों की भोग नगरी भी कहा जाता था। सती प्रथा से सम्बन्धित प्रथम उदाहरण यहीं से प्राप्त हुआ। यह 512 ई. का भानुगुप्त द्वारा स्थापित कराया गया स्तम्भ है। इससे इस क्षेत्र की सामाजिक अवस्था की झलक दिखती है। जिसमें स्त्रियों के सती होने को धार्मिक स्वरूप प्रदान करके सती प्रथा को उचित ठहराने का प्रयत्न किया गया। यहां से गुप्त कालीन मंदिर के साक्ष्य भी प्राप्त हुए हैं। वर्तमान में विष्णु के वराह अवतार की प्रतिमा यहीं से प्राप्त हुयी जो डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित है। यहाँ से सूकर रूप में प्रतिमा प्राप्त हुयी जिस पर लगभग 678 देवी-देवताओं का अंकन

है एवं पृथ्वी को स्त्री के रूप में दिखलाया गया है। बुन्देलखण्ड में अनेकों प्रसिद्ध व्यक्तियों का नाम आता है। यहाँ पर चन्देल कालीन आल्हा-ऊदल तथा बुन्देला सरदार कालीन हरदौल को उनकी बहादुरी हेतु याद किया जाता है। यह स्थल केशव और पद्माकर जैसे महान कवियों की जन्म स्थली रहा है। संस्कृति के परिचायक कला के अद्वितीय उदाहरण बुन्देलखण्ड से प्राप्त होते हैं। यहां की लोक संस्कृति में व्याप्त उमंग बरेदी, राई जैसे नृत्यों में देखने को मिलती है। यहां पर देवी की उपासना तथा मात्र पूजन भी इस क्षेत्र की धार्मिक विशेषता है।

चन्देल युगीन बुन्देलखण्ड के इतिहास तथा सांस्कृतिक जानकारी के लिए समकालीन साहित्य, चारणों की गाथाएं, जनश्रुतियां, मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकारों की रचनाएं और पुरातात्त्विक सामग्री का आश्रय लेना पड़ता है। चन्देल कालीन वर्णाश्रम व्यवस्था को शासकों द्वारा मान्यता प्रदान की गयी। वर्तमान की भांति प्राचीन काल में भी विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण किये जाते थे। श्रृंगार प्रसाधन एवं केश विन्यास के प्रति समाज सजग था। यहां पर विभिन्न धर्मों के प्रति भी सम्मान प्रकट किया जाता था। चन्देलों द्वारा निर्मित कराये गये किले स्थापत्य कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कालिंजर, ओरछा के दुर्ग की विजय अत्यन्त कठिन मानी जाती थी। पूर्व मध्यकाल में छतरपुर, खजुराहो, मऊ, महोबा आदि शिक्षा के केन्द्र थे। बुन्देली समाज का प्रतिनिधित्व बुन्देलखण्ड के महोबा तथा इसके पश्चात् ओरछा तथा पन्ना ने किया। मध्यप्रदेश के पर्यटन में भी बुन्देलखण्ड की भूमिका अधिक रही है। सागर, दमोह, टीकमगढ़, छतरपुर के पर्यटन स्थल सदैव आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। दमोह का जागेश्वरनाथ मंदिर प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। यहाँ बसंत पंचमी तथा शिवरात्रि में वृहद् मेले का आयोजन किया जाता है जो लोक संस्कृति का ही एक अंग है। टीकमगढ़ जिले में कुण्डेश्वर महाराज का प्राचीन मंदिर पर्यटन हेतु प्रसिद्ध है। साथ ही ओरछा का महत्व भी बुन्देलखण्ड की संस्कृति को प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण है। यहाँ पर स्थित जहांगीर महल तीन मंजिला अष्टकोणीय है। राजमहल, शीश महल, नृत्यांगना प्रवीणराय का निवासभवन, आनंदमण्डल, मालाबाग फूलबाग दर्शनीय स्थल है। राम राजा मंदिर पर्यटन का प्रमुख आकर्षण रहा है। यहाँ के शासक जुझार सिंह के भाई हरदौल को लोक गीतों के माध्यम से याद किया जाता है। छतरपुर में स्थित खजुराहो मंदिर स्थापत्य में निर्मित प्रतिमाओं में भारतीय दर्शन का सार निहित है। पन्ना जिले में कौवासेहा प्रपात, पाण्डव प्रपात, भैरव टेक की जलधारा अत्यन्त मनोहारी है तथा यहाँ अनेकों दर्शनीय मंदिर भी है।

इस प्रदेश के निवासियों द्वारा निभायी जा रही संस्कृति अचानक ही प्रचलन में नहीं आयी, क्योंकि संस्कृति की नींव प्रारंभ से ही रखी जाती है। यहाँ के वस्त्राभूषण, भाषा-बोली, खान-पान, समाज, धर्म इत्यादि का सांस्कृतिक क्रिया-कलापों से अत्यन्त प्राचीन रिश्ता रहा है। चन्देलों के द्वारा खजुराहों का निर्माण इस बात का साक्षी है, कि कला के क्षेत्र में इन्होनें सर्वागीण कार्य करवाये। खजुराहो के मंदिर समूहों के भित्तियों पर अंकित चित्र समाज, उनके पहनावों, आभूषणों एवं उनके कार्यों को दिखलाते हैं। खजुराहो का मध्य देश से अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। चन्देल कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों को मंदिरों के भित्तियों पर उकेर कर उस काल का जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इनके काल की संस्कृति को शनै-शनै अपनाया गया। बुन्देलखण्ड की बुन्देली भाषा का प्रचार हुआ जो वर्तमान में अन्य भाषाओं के साथ सम्मिलित होकर बघेली, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं में परिवर्तित हो गयी। बुन्देलखण्ड की गहोरा बोली[31] जिले में विलीन अजयगढ़ रियासत के 11 गाँवों एवं भूतपूर्व चरखारी रियासत के 264 गाँवों में बुन्देलखण्डी के साथ-साथ बनाफरी भी प्रचलित थी। चन्देलों द्वारा निर्मित मंदिरों में भिन्न-2 धर्मों के मंदिर निर्माण से यह सिद्ध हो जाता है। कि वे समस्त सम्प्रदायों को एक जैसा सम्मान देते थे। इस काल के समाज में भी वर्ण व्यवस्था का प्रचलन था। समाज चार वर्णों में विभक्त था।

छतरपुर में स्थित खजुराहो को चन्देल काल में इसकी राजधानी बनाया गया। वर्तमान में मध्यप्रदेश की संस्कृति में सम्मिलित समाज का रूप ऐसा ही प्रतीत होता है, जैसा खजुराहो के शासकों के समय में था। अत्यधिक कर्मकाण्ड का जो उदाहरण खजुराहो से प्राप्त होता है। वैसे ही वर्तमान में मध्य प्रदेश के समाज में भी दिखलायी पड़ता है। स्त्रियों द्वारा सजने-सवरने की परम्परा में आभूषणों का प्रयोग जिस प्रकार का है, वैसा ही प्रयोग खजुराहो के मंदिरों में उत्कीर्ण मूर्तियों की साज-सज्जा में दर्शाया गया है, जो इसका साक्षात् प्रमाण है। इन समस्त उदाहरणों का अवलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है, कि वर्तमान में उपस्थित मध्य प्रदेश की संस्कृति अधिकांशतः चंदेल काल से संबंधित रही है। चूंकि किसी भी संस्कृति या सभ्यता का विकास केन्द्र से प्रारंभ माना जाता है। अतः इसके आधार पर मध्यप्रदेश की संस्कृति में छतरपुर की भूमिका को उचित ठहराया जा सकता है। इस प्रदेश में विभिन्न धर्मों के प्रति साहचर्य की भावना छतरपुर से ही देखने को मिलती है। साथ ही बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आने वाली भाषा, बोली, ऐतिहासिक स्थल, कला, चित्रकला, लोक संस्कृति, मेले, इत्यादि का अधिक योगदान रहा है। ये सभी मिलकर मध्य प्रदेश की संस्कृति को जनमानस के हृदय में वर्षो से जागृत किये हुए हैं। मध्य प्रदेश की संस्कृति तथा इतिहास को दूर-दूर तक विस्तृत करने में बुन्देली संस्कृति ने अहम भूमिका निभायी।

शोधार्थी
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003

सन्दर्भ -

1. *दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती, इलाहाबाद, 2015, पृ. VII*
2. *पटैरिया, शिव अनुराग, मध्यप्रदेश एन.बी.टी., नई दिल्ली, 2013, पृ. 02*
3. *वर्मा, धीरेन्द्र, मध्यप्रदेश : ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 2007, पृ. 09*
4. *मनुस्मृति, (2,21)*
5. *विनयपिटक, (महावग्ग 5,13,12)*
6. *उके, राज रत्न, मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड अंचल के पर्यटन स्थलों का ऐतिहासिक अध्ययन, शोध प्रबंध, सागर विश्वविद्यालय, 2009, पृ. 11*
7. *वर्मा, धीरेन्द्र, वही*
8. *सरकार, डी.सी., जियोग्राफिकल स्टडी ऑफ एनिएण्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, दिल्ली, 1960, पृ. 33-34*
9. *बाजपेयी के.डी., कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, प्रज्ञा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1985, पृ. 22*
10. *भट्टाचार्य, पी.के., हिस्टोरिकल ज्योग्राफी ऑफ मध्य प्रदेश फ्रॉम अर्ली रिकार्डस, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977, पृ 05*
11. *रायचौधरी, एच.सी., पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएन्ट इंडिया, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, 5वाँ संस्करण, 1950, पृ. 20*
12. *निगम, एम. एल., कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड (3 री सी.बी.सी. टू ए. डी. 650), सन्दीप प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 25*
13. *ढेंगुला, राम स्वरूप, बुन्देलखण्ड के परमार (राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं क्रांतिकारी इतिहास), म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2010, पृ. 01*
14. *शाह, के.के., एन्शिएन्ट बुन्देलखण्ड, ज्ञान पब्लिशिब हाउस, दिल्ली, 1988, पृ. 09*
15. *कनिंघम, ए, द एन्शिएन्ट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, 1963, पृ. 406*
16. *गुप्त, नर्मदा प्रसाद, बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 26*
17. *शाह, के. के., पूर्वोक्त, पृ. 12*

18. मिश्र, केशव चन्द्र, चन्देल एवं उनका राजत्व काल, नागरी प्रचारणी सभा, काशी संवत् 2011, पृ. 03
19. वही, पृ. 06
20. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1968, पृ. 5
21. महाभारत, उद्योग पर्व, अंक 189, श्लोक 8-10
22. मिश्र, केशव चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 04
23. वही, पृ. 06
24. ब्राह्मण पुराण, 2.16.19
25. पाण्डेय, अयोध्या प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 3
26. छतरपुर गजेटियर 1914, पृ. 1
27. पटैरिया, शिव अनुराग, पूर्वोक्त, पृ. 170
28. वही, पृ. 171
29. वही, पृ. 139
30. वही, पृ. 143
31. गुरू, शम्भूदयाल, छतरपुर गजेटियर, 1994 भोपाल, पृ. 88

एशियाई परिदृश्य और भारत-चीन संबंध

नेहा निरंजन

सारांश - पिछले कुछ दिनों में भारत चीन संबधों में हुए नाटकीय बदलाव ने समस्त विश्व का ध्यान आकृष्ट किया विश्व के समस्त राष्ट्रो के लिए यह उत्सुक्ता थी कि एशिया की दोनों उभरती शक्तियों के मध्य का तनाव क्या रुप लेगा क्योकि अब विश्व राजनीति के समीकरण भारत-चीन संबधों से प्रभावित हुए बिना संभव नही है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत-चीन संबधों में आये तनाव के कारणो को जानने और एशिया में दोनो राष्ट्रो की रणनीतिक सक्रियता को समझने का प्रयास किया गया है।

मुख्य बिन्दु -

पंचशील, सीपीईसी, डोकलाम, वन वेल्ट एण्ड वन रोड, न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप भारत चीन संबधो का महत्व दोनो देशो के हितो के लिए ही नही अपितु तृतीय विश्व के विकासशील देशो के हितो के लिए भी आवश्यक है। बदलते एशियाई परिदृश्य में आज पूरे विश्व की नजर एशिया की दो महत्वपूर्ण और उभरती हुई शक्तियों, भारत और चीन पर है। शीत युद्धोत्तर काल में अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य तेजी से बदला है। आज का युग परस्पर निर्भरता और आर्थिक सहयोग का युग है ऐसे में एशिया के दोनों शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों की गतिविधियों पर विश्व के समस्त राष्ट्रों (यूरोप, अमेरिका सहित) की दृष्टि लगी हुई है।

चीन एक ऐसा राष्ट्र है जिसने बंदूक की गोली की ताकत से साम्यवादी शासन की स्थापना की और अपनी आक्रामक नीति से विश्व व्यवस्था को हमेशा आतंकित रखा कि कहीं ड्रैगन की 'तद्रा' भंग न हो जाए। वही भारत लंबे उपनिवेशवाद को झेलकर अहिंसात्मक आंदोलन के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्र बना। चीन जहाँ एकात्मक केन्द्रीकरण पर बल देता है वहीं भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को अपनाया गया है। इन विभिन्नताओं के बावजूद 1949 में स्थापना के बाद चीनी गणराज्य को मान्यता देने वाला प्रथम गैर-साम्यवादी राष्ट्र भारत ही था। 1954 में पंचशील के माध्यम से प्रारंभिक स्नेहपूर्ण संबंधों की शुरूआत के बाद दोनों राष्ट्रों के राजनयिक संबंध कई उतार-चढ़ाव से गुजरे। 29 अप्रैल 1954 को दोनों राष्ट्रों के बीच सौहार्द्रपूर्ण माहौल में पंचशील को स्वीकार किया गया। पंचशील में (1) एक दूसरे की अखण्डता और संप्रभुता का सम्मान (2) परस्पर अनाक्रमण (3) एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना (4) समान और परस्पर लाभकारी संबंध एवं (5) शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, शामिल किए गए लेकिन जल्द ही यह सौहार्द्रपूर्णता युद्ध की कटुता में परिवर्तित हो गई। 1962 के युद्ध के बाद ये कयास लगाए जा रहे थे कि अब दोनों राष्ट्रों के संबंध कभी पहले की भांति सहयोगपूर्ण नहीं होंगे लेकिन दोनों पड़ोसी राष्ट्रों ने एक दूसरे की महत्ता को समझते हुए जल्द ही संबंधों को सहज करने पर बल दिया और अपने आर्थिक संबंधों को तेजी से प्रगाढ़ बनाया, 2008 में चीन भारत

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार बना। 2012 में चीनी राष्ट्रपति वेनजियावाओं और भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने दोनों राष्ट्रों के सामरिक व्यापार को 2015 तक 100 विलियन डॉलर करने का लक्ष्य निर्धारित किया। आज चीन भारत का सबसे बडा व्यापारिक साझेदार है जिसका भारत में कुल विदेशी निवेश 71.5 बिलियन डॉलर है जबकि भारत का चीन में कुल निवेश 10.2 बिलियन डॉलर का है।[2]

चीन व भारत दोनों ही बहुध्रुवीय विश्व की स्थापना के पक्षधर है, प्रभुत्ववादी और बल प्रयोग की राजनीति का विरोध करते है और किसी एक देश के विश्वनेता बनने का विरोध करते है यही वजह थी कि अपने आपसी विवादों को भूल दोनों ही राष्ट्र 2000 के दशक में एक दूसरे के करीब आए और 2007 में एशिया में त्रिगुट निर्माण के लिए तैयार हो गए, साथ ही शंघाई सहयोग संगठन में भारत की सदस्यता, आतंकवाद की समाप्ति, एशिया, प्रशांत महासागर जैसे मुद्दों पर सहयोग करने के लिए आगे आए। बहुधुव्रीय होती इस दुनिया में स्थाई गठजोड़ या खेमे नहीं होते बल्कि निजी हितों के आधार पर रिश्ते बदलते रहते है यही वजह है कि दोनों राष्ट्र एक दूसरे का सहयोग चाहते हुए भी साथ नहीं चल पा रहे है इसके अनेक कारण है जैसे -भारत के अमेरिका के साथ बढ़ते राजनीतिक, व्यापारिक और नाभकीय संबंध। एक ओर जहाँ अमरीका, भारत को चीन के हिन्द महासागर में बढ़ते प्रभाव के विरूद्ध खड़ा करके अपनी कूटनीति का संचालन कर रहा है वहीं तकनीकी विकास, सुरक्षा परिषद में सदस्यता, आतंकवाद जैसे मुद्दों के लिए भारत, अमरीका का साथ चाह रहा है। भारत-अमरीका के बढ़ते संबंधों ने चीन को भारतीय वर्चस्व के प्रति शंका में डाल रखा है।

अमरीका के एशिया में नये समीकरणों की तलाश और भारत के अमरीका के साथ खड़े होने से चीन परेशान है। अमरीका ने भारत को अपना सबसे बड़ा रक्षा साझेदार माना है। मेक इन इण्डिया अभियान के तहत तकनीकी सहयोग की वचनबद्धता भी अमरीका ने व्यक्त की। टाइम्स ऑफ इण्डिया के हवाले से इस बात को स्वीकार किया गया है कि ‘‘विकास के साथ भारत अपने हितों की भी रक्षा करेगा आंतरिक ही नहीं बल्कि व्यापक पैमाने पर एशिया-प्रशांत-महासागर, खासतौर पर हिन्द महासागर में भी, जब तक भारत सुरक्षा तंत्र विकसित करने में सक्षम नहीं हो जाता तब तक उसकी मदद करना अमरीका के हित में है। भारत हमारे साथ सहयोग करे या न करे हम भारत को उसके हितों की रक्षा करने लायक बनाने के प्रति वचनबद्ध है ताकि हिन्द महासागर में समुद्री परिवहन को किसी भी तरह के खतरे से मुक्त रखा जाए।’’[3]

अमरीका ने साफ कहा है कि हिन्द महासागर और एशिया-प्रशांत-महासागर के इलाके में किसी एक की दादागिरी नहीं चलेगी। अमेरिका चीन को घेरने के लिए भारत का साथ चाहता है अतः विरोध स्वरूप चीन के सरकारी अखबार ‘ग्लोबल टाइम्स’ में कहा गया है ‘‘हिन्द महासागर में चीन को घेरने के लिए वाशिंगटन भारत का साथ चाहता है इसी तरह पैसिफिक ओशन में चीन को काउंटर करने के लिए जापान भारत को अपनी तरफ करना चाहता है। भारत के लिए ये रणनीतिक मौके हो सकते है लेकिन सही मायनों में किसी जाल से ज्यादा नहीं। अगर भारत इसमें फंस गया तो वह अमरीका और जापान की महज एक कठपुतली बनकर रह जाएगा, इससे उसे और ज्यादा खतरों का सामना करना पड़ेगा।... एक देश होने के नाते खुद को एक बड़ी ताकत मानना चाहिए, अगर भारत अपनी सुरक्षा के लिए बाहरी फौजों पर भरोसा करता है तो ये उसके लिए ज्यादा अपमानजनक होगा। भारत के लिए विकास का सबसे अच्छा तरीका है कि वह अपने पड़ोसियों के लिए दरवाजे खुले रखे और डेवलपमेंट के रीजनल प्रोग्रामस् ‘बेल्ट एण्ड रोड’’ इनीशिएटिव में शामिल हो। भारत और चीन मिलकर एशिया पैसेफिक सिक्युरिटी में अहम रोल अदा कर सकते है।’’

वही हाल ही में चीन ने विभिन्न द्विपक्षीय मसलों पर पाकिस्तान के हित में जिस हद तक पक्ष लेना शुरू किया है भारत उसे लेकर चिंतित है। वैश्विक मान्यता प्राप्त आतंकवादी अजहर के संगठन

जैश-ए-मोहम्मद को चीन का निरंतर समर्थन भारत सरकार को अचंभित करने वाला है क्योकि अतीत में चीन ने अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर यद्यपि भारत के लिए अनेक अवरोध पैदा किए है लेकिन आतंकवाद की समाप्ति और आतंकवादी संगठनों को सूचीबद्ध करने के कदम का हमेशा पक्ष भी लिया है। आज पाकिस्तान के प्रति चीन का समर्थन हद से ज्यादा बढ़ गया है चीन खुलकर भारत को दोष दे रहा है कि प्रतिबंध के रास्ते वह राजनैतिक बढ़त लेने की कोशिश में है। चीन के उपविदेश मंत्री सी बाओदोंग ने कहा कि ''आतंकवाद पर दोहरी कसौटी नहीं होनी चाहिए, किसी को आतंकवाद विरोध के नाम पर राजनैतिक बढ़त नहीं लेना चाहिए।''[4] चीन के पाकिस्तान के प्रति बढ़ते झुकाव का कारण एशिया में आर्थिक प्रसार करना है। पाकिस्तान के प्रति उसके बढ़ते लगाव पर पूर्व भारतीय राजनयिक अशोक कंठ कहते है, ''हम जानते है कि चीन और पाकिस्तान का पुराना रणनीतिक निवेश है लेकिन एक बात तो हम आत्मविश्वास के साथ कह सकते है कि उनके रणनीतिक संबंध अभी कुछ ज्यादा मजबूत हो रहे है। चीन के लिए पाकिस्तान के साथ रिश्ता अहम है और लोग तो अब पाकिस्तान को चीन का इकलौता साझेदार भी बताने लगे हैं।'' पाकिस्तान को इतना प्रोत्साहन देने की चीन की बड़ी वजह दक्षिण एशिया में 'अनुकूल संतुलन' कायम करना भी है दूसरे शब्दों में चीन पाकिस्तान को इसलिए शह दे रहा है ताकि भारत अपने पड़ोस में उलझा रहे और उससे उसे चुनौती मिलती रहे बजाए इसके कि वह चीन के विरूद्ध क्षेत्रीय प्रतिस्पर्धी के तौर पर उभर सके।

भारत और चीन के बीच विवाद का एक अन्य विषय दोनों देशों के बीच की चार हजार कि.मी. लंबी सीमा है जो निर्धारित नहीं है। भारत और चीन के सैनिकों का जहाँ तक कब्जा है वहीं नियंत्रण रेखा है चीन इस नियंत्रण रेखा पर सैनिक अड्डे स्थापित कर सैन्य अभ्यास करता रहता है परिणामस्वरूप भारत ने भी वास्तविक नियंत्रण रेखा पर एल.ए.सी.टी. 72 टैंकों को तैनात किया गया है जिस पर चीन ने कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की और भारत के इस कदम को क्षेत्र में अस्थिरता लाने वाला बतलाया है। भारत-चीन सीमा विवाद को लेकर दोनों की दोस्ती के बीच बहुत अवरोध है। ऐसा लगता है कि चीन जानबूझकर भारत के साथ सीमा विवाद को सुलझाने की उपेक्षा कर रहा है जो कि संबंधों के संदर्भ में शुभ संकेत नहीं है क्योंकि यही चीन दूसरी ओर अन्य पड़ोसियों विशेषकर रूस, पाकिस्तान के साथ सीमा विवाद सौहार्द्रपूर्वक सुलझा चुका है लेकिन भारत के अरूणाचल और सिक्किम क्षेत्र में जब तब घुसपैठ की कोशिश करता रहता है। हाल ही में भारत द्वारा लद्दाख में वास्तविक नियंत्रण रेखा पर 100 टी-72 टैंकों को तैनात किया गया है। चीन लगातार भारत से अपनी सेना को पीछे हटाने को कह रहा है। भारत में चीन के राजदूत ने तो यहाँ तक कह दिया है कि - ''यह निश्चय भारत को करना होगा कि सीमा पर विवाद को लेकर वह सैन्य विकल्प को अपनाना चाहता है या शांति बनाए रखना चाहता है, यह जिम्मेदारी भारत पर है कि वह किस तरह से इस मामले को सुलझाना चाहता है।''[5]

यह सही है कि संघर्षों और तनाव से भरी एवं वर्गो, पंथो, विचारधाराओं और धर्मों से संचालित इस दुनिया में आगे का रास्ता भू-राजनीति से नहीं बल्कि भू-आर्थिकी से होकर गुजरता है। यही कारण है कि चीन ने अपने यहाँ आर्थिक विकास को महत्ता दी है। जिसमें चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग की ''वन बेल्ट, वन रोड'' योजना एक महत्वपूर्ण कदम है। जिसमें उसके 'वन बेल्ट, वन रोड' परियोजना को भारत की 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' के समकक्ष लाने और मुक्त व्यापार समझौते पर फिर से बातचीत करना शामिल है। साथ ही भारत एवं चीन के बीच ''ऑपरेशन ट्रीटी ऑफ गुड नेबरलाइनेस एण्ड फ्रेंडली कॉपरेशन'' पर वार्ता करने और दोनों देशों के बीच सीमा विवाद का हल जल्द तलाशने के लिए प्राथमिकताएँ तय करना भी शामिल है।

विश्लेषको के अनुसार भारत की विचारधारा और नीतियाँ अक्सर मौलिकता और जमीनी यथार्थ

बोध के अभाव से ग्रस्त दिखाई देती है। अक्सर वे पश्चिम की एक अंधी नकल दिखती है जबकि चीन के बारे में कहा जाता है कि उसने हजारों साल से अपनी मौलिकता, ताकत और आत्मविश्वास को कायम रखकर अपनी दिशा खुद निर्धारित की है। चीन एक महाशक्ति के रूप मे अवतरित हुआ है और अपनी राष्ट्रीय शक्तियों का सकेन्द्रण कर विश्व राजनीति में निर्णायक भूमिका निभा रहा है। 2013 में चीन मे शी जिनपिंग की सरकार आने के बाद से ही चीन ''परिधिगत कूटनीति'' पर जोर दे रहा है। जिसकी शुरूआत सिल्करूट योजना से की गई जिसमें पाकिस्तान से होते हुए समुद्री सिल्क रोड बनाई जाएगी 'वन बेल्ट एण्ड वन रोड' नाम की इस योजना में पश्चिमी चीन के शिजियांग प्रांत से बलूचिस्तान स्थित ग्वादर बंदरगाह तक चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे, सी.पी.ई.सी. (China-Pakistan Economic Coridor) का निर्माण किया जा रहा है। जिसमें चीन द्वारा 100 अरब डॉलर से ज्यादा का निवेश किया गया है। सी.पी.ई.सी. से चीन के अनेक हित जुड़े हुए है जैसे - अपने करीबी सहयोगी की बिखरती अर्थव्यवस्था में जान फूंकना, जो बदले में चीन के लिए एक स्थिर पश्चिमी परिधि बनाएगा और उसके उद्यमों के लिए एक नई जगह मुहैया कराएगा ताकि उसकी परियोजनाओं को पश्चिम से जोड़ा जा सके। चीन के नियोजकों के लिए इस परियोजना का एक रणनीतिक मूल्य भी है क्योंकि यह ऊर्जा के आयात के लिए अरब सागर तक उसकी पहुँच बनाएगा जिसके चलते मलक्का जलडमरूमध्य से उसकी जान छूटेगी क्योंकि लंबे समय से चीन को यह आशंका है कि कोई प्रतिद्वंदी ताकत मलक्का के सकरे मार्ग को बाधित करके चीन की अर्थव्यवस्था को कही बंधक न बना ले।[6]

पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर पी.ओ.के. से गुजरने वाले चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे सी.पी.ई.सी. में करीब 100 अरब डॉलर के निवेश के कारण कश्मीर मुद्दे को हल करना भी चीन के लिए आवश्यक है यही वजह है कि चीन, भारत-पाकिस्तान के बीच मध्यस्थता कराने के लिए तैयार है। चीन के अखबार ग्लोबल टाइम्स में दावा किया गया है कि यद्यपि चीन ने अन्य देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप ना करने के सिद्धांत का हमेशा पालन किया है लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि बीजिंग विदेशों में अपने निवेश की रक्षा में चीनी उद्यमों की मांगों पर ध्यान नहीं देगा, वन बेल्ट वन रोड पर चीन ने भारी निवेश किया है अतः अब भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर विवाद समेत क्षेत्रीय मुद्दे हल करने में मदद के लिए चीन के निहित स्वार्थ है। यद्यपि कश्मीर मुद्दे पर भारत और पाक के बीच मध्यस्थता करना शायद चीन के लिए विदेशों में अपने हितों की रक्षा करने के लिए क्षेत्रीय मामलों से निपटने में सामने आ रही सबसे मुश्किल चुनौती होगी लेकिन म्यांमार और बांग्लादेश के बीच हाल ही में चीन की मध्यस्यता, क्षेत्रीय स्थिरता बनाए रखने में एवं अपनी सीमाओं से बाहर संघर्ष को हल करने में चीन की बढ़ती क्षमता को दर्शाता है। अगस्त 2016 में चीनी विदेश मंत्री की भारत यात्रा का मकसद भी दक्षिण चीन सागर के मसले पर जी-20 में भारत को दूसरे देशों का साथ देने से रोकना था लेकिन हाल की घटनाओं से लगता नहीं कि ऐसा संभव है। इसके कई कारण है जैसे - न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप NSG के लिए भारत की सदस्यता के दावे को चीन का समर्थन न मिलना, हाल ही में भारत द्वारा लद्दाख में वास्तविक नियंत्रण रेखा पर 100 टी-72 टैंकों को तैनात किया जाना, साल 2016 के मालाबार नौसेनिक ड्रिल में जापान की स्थाई सदस्य के रूप में मौजूदगी। ये ड्रिल चीन के पास के समुद्र क्षेत्र में हुआ यद्यपि जापान को इस ड्रिल में शामिल करने से भारत बचता रहा है कि कही चीन नाराज न हो जाए एवम् भारतीय नौसेना के पूर्वी बेड़ो द्वारा हाल ही में मलेशिया के पोर्ट केलॉग का दौरा और वहां पहली बार रॉयल मलेशियन नेवी के साथ मानवीय सहायता और आपदा राहत पर 'टेबल टॉप' अभ्यास किया जाना।[7] चीन इससे नाराज हुआ और उसने दक्षिण चीन सागर में भारतीय नौसेना के जहाजों की मौजूदगी पर आपत्ति जताई है।

वही चीन द्वारा भूटान के डोकलाम क्षेत्र में सड़क बनाने और भूटान क्षेत्र में घुसपैठ कर उसकी

संप्रभुता पर हस्ताक्षेप करने की कोशिश की गई जिस पर भारत ने न केवल कड़ी आपत्ति व्यक्त की बल्कि भूटान से चीनी सेना को पीछे खदेड़ने के लिए भारतीय सेना ने प्रतिकार किया। जिस पर चीन बौखला उठा और उसने भारत को फिर से कड़वा पाठ पढ़ाने की प्रस्तावना करते हुए यह तक कह दिया कि इस बार भारत को 1962 के युद्ध से भी ज्यादा नुकसान उठाना पड़ सकता है। 1947 और 2007 की संधि के अनुसार भूटान की संप्रभुता की सुरक्षा की जिम्मेदारी भारत की है ऐसे में अगर चीन भूटान के किसी भाग पर दाबा करता है तो भारत के लिए विरोध करना लाजमी है। भूटान में हस्तक्षेप करने के भारत के अपने कुछ सुरक्षा कारण भी है जिन्हें चीन भी समझता है, लेकिन फिर भी भारत को डराने के लिए वह ऐसे प्रयास करता रहता है। भूटान से चीनी घुसपैठ और दबाव की रणनीति की आर्थिक और रणनीतिक वजह है दरअसल चीन की चुंबी घाटी भूटान और भारत के सिक्किम क्षेत्र में विस्तृत है। इस घाटी की गहराई में अनेक प्राकृतिक गैस और तेल के विशाल भंडार का अनुमान है। रणनीतिक रूप से चीन की चुंबी घाटी में भूटान का डोकलाम और भारत के सिक्किम का सिलीगुडी कॉरीडॉर आता है, वहाँ चीन सड़क और रेललाइन बना रहा है। सिलीगुड़ी घाटी सिक्किम का एक सकरा गलियारा है जिसे चिकेन नेक भी कहा जाता है। जो पूरे भारत को उत्तर पूर्व के राज्यों से जोड़ता है चीन इस क्षेत्र से घुसकर भारत पर कब्जा करना चाहता है इसलिए भारत, भूटान में चीन के बढ़ते हस्ताक्षेप से परेशान है।[8,9]

भारत और चीन के बीच लगातार बढ़ता तनाव, युद्ध की परिस्थितियों को उत्पन्न कर रहा है यदि तुलना की जाए तो दक्षिण चीन सागर में चीन कई मोर्चों पर घिरा हुआ है, अमरीका, जापान लगातार चीन को चेतावनी दे रहे है तो भारत का पाकिस्तान से पूर्व से ही विवाद है ऐसे में चीन के लिऐ भारत से दुश्मनी का जोखिम ठीक नहीं है। चीन की लगातार घुसपैठ से ताइवान-तिब्बत मसले पर चीन के नए दुश्मन खड़े हो जाएगें जो चीन के विस्तारवाद के लिए नुकसानदेह होंगे। वहीं भारत के लिए चीन से तनाव होने से एन.एस.जी. परमाणु आपूर्ति समूह के लिए चीन का समर्थन मिलना मुश्किल हो जाएगा। चीन की सैन्य ताकत बहुत बड़ी है, भौगोलिक दृष्टि से भी चीन शक्तिशाली है जबकि चीन की तुलना में भारत की सैन्य और हथियार क्षमता कम है। चीन के आंतरिक विवाद कम है जबकि भारत आंतरिक मामलों में ज्यादा उलझा हुआ है तनाव से चीन-भारत के व्यापार संबंध प्रभावित होंगे चीन जहाँ बड़ा बाजार खो देगा वही आर्थिक मोर्चे पर भारत में चीनी निवेश, जिसकी भारत को जरूरत है, प्रभावित होगा। चीन की सरकार के हवाले से चीनी कम्पनियों को भारत में अपना निवेश घटाने और भारत में बढ़ रही चीन विरोधी भावना से सतर्क रहने की सलाह दी गई है।

स्पष्ट है कि युद्ध (तनाव) दोनों राष्ट्रों के लिए विनाशकारी ही होगा अतः दो उभरती हुई शक्तियों के

परिपेक्ष्य में चीन और भारत को मिलकर सीमा विवादों से बचकर, विवादों पर सीमा साधने की जरूरत है। इस तरह के विवादों का दोनों देशों की उन्नति पर बुरा असर पड़ सकता है, न केवल भारत के पड़ोसी देश भारत-चीन संघर्ष का लाभ उठाएगें बल्कि बड़ी शक्तियों को भी भारत-चीन को आपस में उलझाने का एक मौका मिलेगा। अतः रणनीतिक स्तर पर दोनों राष्ट्रों को आपसी बातचीत के माध्यम से समस्या का समाधान करने और आर्थिक संबंधों को प्रगाढ़ बनाने पर बल देना चाहिए।

यद्यपि चीन अभी तक भारत को एक ऐसे देश के रूप में देखता था जो कोई भी कड़ा कदम उठाने में अक्षम है लेकिन अब चीन धीरे-धीरे भारत की बदलती नीतियों को नोटिस कर रहा है। पिछले कुछ समय में दक्षिण एशिया में जिस तरह के रणनीतिक बदलाव हो रहे है उसमें भारत-चीन संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। हाल ही में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की दो उपलब्धियों ने दुनिया के पैमाने पर उसकी स्थिति को बदल दिया है और चीन जैसी महाशक्ति के नजरिये को भी जैसे कि मिसाइल टेक्नोलॉजी कंट्रोल रिजीम के (एमटीसीआर) 35वें सदस्य के तौर पर भारत की सदस्यता जबकि चीन इसका सदस्य नहीं है एवम भारत-ईरान चाबहार समझौता, चाबहार बंदरगाह ने भारत के मध्यपूर्व, मध्य एशिया और अफगानिस्तान के लिए रास्ते खोल दिये है। भारत की यह उपलब्धि बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि ''पूर्व चाबहार भारत की एक व्यापक योजना है जो उत्तर मध्यपूर्व, मध्य एशिया और ट्रांस काकेशस में भारत की भूगोलीय राजनीति को नया आयाम देगी।[10]

भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की 25 जून 2017 को हुई संयुक्त राज्य अमरीका की यात्रा और 4 जुलाई 2017 को हुई इजराइल की यात्रा एवं उनके साथ प्रगाढ़ होते भारत के संबंध भी कही न कहीं भारत-चीन के बीच बढ़ते तनाव का कारण है। अमरीका जहाँ हर स्तर पर भारत को आगे बढ़कर सहयोग दे रहा है वहीं इजराइल ने भी गर्मजोशी के साथ भारत की दोस्ती का स्वागत किया और भारत के साथ हथियार समझौतों पर हस्ताक्षर किए, इन सारी गतिविधियों ने भी चीन को परेशान कर दिया है।

जहाँ चीन की विश्व रणनीति के उद्देश्य- सुरक्षित संप्रभुता, आंतरिक स्थिरता एवं आर्थिक विकास करना है वही भारत की रणनीति चीन के विस्तारवाद को रोकना एवं आपसी सहयोग और सांस्कृतिक राजनय के माध्यम से विश्व राजनीति को अपनी दिशा में मोड़ने का है। सितंबर 2017 में बीजिंग में हुए ब्रिक्स सम्मेलन में उसे सफलता भी प्राप्त हुई जब चीन ने नर्म रूख अपनाते हुए भारत के साथ अपने संबधो को नवीन दिशा देने की बात कही साथ ही दोनो देशो की सेना ने डोकलाम से पीछे हटने का फैसला किया। उसके अनेक कारण रहे जैसे चीन में चुनाव एवं आंतरिक स्थिरता, दक्षिण चीन सागर में अमेरिका जापान सहित भारत की सक्रियता, आतंकवाद के मुद्दे पर विश्व का भारत के साथ खडा होना एवं भारत के रुप में बडा बाजार खो देना। यह निश्चित रुप से भारत की कूटनीतिक जीत है इस विवाद के सुलझने से क्षेत्रीय सुरक्षा एवं शांति की स्थापना में मदद मिलेगी। यधपि भारत के समक्ष भी चुनौतियां कम नही है चीन के मुकाबले उसकी स्थिति बहुत मजबूत नही है ऐसे में भारत को चीन के साथ सकारात्मक एवं संतुलित संबधो को विकसित करने पर बल देना चाहिए।

राजनीति विज्ञान एवं लोकप्रशासन विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.) 470003

सन्दर्भ -

1. *Shourie]Arun;'Bharat&Cheen Sambandhß]2011]Prabhat Prakashan New Delhi] ISBN978817315729 ¼Please Gige the Page no-½*

2. *K-S-Venkatachalam Þ How to FiÛ India&China Tradeß]August 31]2017] THE DIPLOMATE.*
3. *www.dw.com/hi/अमेरिका और भारत....चीन /a&19313445 june 2016-*
4. *चीन-पाकिस्तान का खतरनाक भाईचारा अनंतकृष्णन, इंडिया टुडे 17 अक्टूबर 2016*
5. *http://khabar-ndtv-com/bharat&cheensambandh july 2017*
6. *चीन-पाकिस्तान का खतरनाक भाईचारा अनंतकृष्णन, इंडिया टुडे 17 अक्टूबर 2016*
7. *http:// indianembassy-org-cn/india&china relation*
8. *what's driving the India&china standoff at Doklam,by Ankit Panda, THE DIPLOMAT,17 August 2017*
9. *All you need to know about doklam and the India&China border standoff 'THE HINDU' july 2017.*
10. *www-zeenews-india-com Chaturvedi, Atul, ß Bharat Cheen Sambandß, September 2017.*

'उस जनपद का कवि हूँ' : कविता के सरोकार

दुर्गेश वाजपेयी

'उस जनपद का कवि हूँ' सन् 1981 में प्रकाशित त्रिलोचन का छठा कविता-संग्रह है; जिसमें उनके 104 सॉनेट संकलित हैं। इनका रचना-काल 1950-54 तक है। सॉनेट का जन्म तेरहवीं शताब्दी में इटली में हुआ, तदनन्तर इसका प्रसार सारे यूरोप एवं विश्व में हुआ। सॉनेट गीतिकाव्य की ही एक विशिष्ट विधा है। गोपाल शरण तिवारी ने 'त्रिलोचनः किंवदन्ती पुरूष' विशेषांक में प्रकाशित अपने लेख में लिखा है- ''सॉनेट में अन्तरतम की उन निगूढ़ वृत्तियों का प्रकाशन होता है जो सामान्यतः काव्य-नाटक के माध्यम से ही अभिव्यक्त हो सकती हैं। अंग्रेजी के क्रान्तिकारी महाकवि वड्सर्वर्थ ने कहा है कि सॉनेट रूपी चाभी से ही शेक्सपियर ने अपने हृदय रूपी ताले को खोला है- 'With this key shakespeare unlocked his heart'. उच्चतम नाट्य प्रतिभा का धनी शेक्सपियर ही अंग्रेजी का सर्वोच्च सॉनेट लेखक भी है। सर्वप्रथम प्रेम ही सॉनेट का एकमात्र विषय रहा परन्तु कालान्तर में हृदय की सभी अनुभूतियाँ सॉनेट के माध्यम से व्यक्त हुईं।''[1]

हिन्दी में सॉनेट का सर्वाधिक सफल प्रयोग त्रिलोचन ने ही किया है। इस संग्रह के सॉनेटों में त्रिलोचन ने अपनी निजी अनुभूतियों का ही प्रकाशन किया है। किन्तु इनकी संवेदना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, जिसमें जीवन के विविध रूप शामिल हैं। स्वभावतः यहाँ भी प्रकृति और प्रेम प्रमुख विषय के रूप में चित्रित हुए हैं। 'उस जनपद का कवि हूँ' की कविताएँ पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक विशेष जनपद से प्रेरणा प्राप्त हैं। अपने जनपद के प्रति कवि त्रिलोचन का लगाव अत्यन्त सहज सघन एवं असामान्य है और सबसे आश्चर्यजनक तो यह है कि वे आधुनिकता के सारे प्रचलित पैमानों को नकारते हुए भी आधुनिक हैं।

इस संग्रह की रचनाओं में त्रिलोचन प्रकृति के महान कवि के रूप में अवतरित हुए हैं। ये रचनाएँ इस अर्थ में आधुनिक हैं कि इनमें प्रकृति अपने ठोस रूप में उपस्थित हुई है, मात्र प्रतीक के रूप में नहीं। अपने अंचल की प्रकृति त्रिलोचन के मन में रची बसी है, तथा अपनी पूर्ण वस्तुमय गरिमा के साथ प्रस्तुत हुई है। प्रकृति की भुवन मोहिनी छवि से उनका इतना सहज एवं आत्मीय सम्बन्ध है कि वे उससे एकाकार हो गये हैं। पंत प्रकृति सुन्दरी के वैभव पर मुग्ध हैं। गोपाल शरण तिवारी अपने लेख में लिखते हैं-***''प्रकृति पंत की प्रेरक एवं मार्गदर्शक भी रही है। उसके साहचर्य में भी उन्हें सर्वाधिक आनन्द की प्राप्ति हुई है, यह सच है परन्तु प्रकृति के प्रति इतना आत्मीय लगाव हिन्दी में निराला को छोड़कर अन्य किसी कवि में दृष्टिगत नहीं होता। खिले हुए पुष्प को देखकर त्रिलोचन का हृदय भी खिल उठता है।''[2]***

त्रिलोचन प्रकृति एवं अन्य विषयों को स्थूल रूप में ही प्रस्तुत करते हैं, वे उसे प्रतीक के रूप में नहीं देखते। त्रिलोचन की कविताओं में किसी भी बाहरी दर्शन का आरोपण नहीं है। पन्त की प्रकृति सौन्दर्यनुभूति

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

पर दर्शन आरोपित है। यह भी सच है कि निराला ने अद्वैतवाद को लिया है तथा वह उनके जीवन और काव्य का अंग बन गया। परन्तु त्रिलोचन की मौलिकता यह है कि भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति के श्रेष्ठतम मूल्यों को आत्मसात् करते हुए भी वे उन्हें अपनी कविता के केन्द्र में नहीं रखते हैं। उनकी रचनाओं की दार्शनिकता उनके अन्दर ही है तथा उनके बिम्बों और प्रतीकों से ही उत्पन्न होती है। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध समालोचक तथा कवि केदारनाथ सिंह ने बहुत ही सटीक कहा है-***''इनके मूल्य कहीं बाहर नहीं, इन्हीं के भीतर हैं। जैसे लोहे की धार लोहे में ही होती है।''***[3]

'उस जनपद का कवि हूँ' की शुरूआत की कुछ कविताएँ आत्मकथात्मक हैं। इनमें भूख और बेरोजगारी की अनुभूतियों की तीव्र अभिव्यक्ति है। वे लिखते हैं-
''भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कल/ जिसको समझे था है तो है यह फौलादी। ठेस लगी मुझे, क्योंकि यह मन था आदी/ नहीं, झेल जाता श्रद्धा की चोट अचंचल/नहीं सँभाल सका अपने को।''[4]

'सरलता का आकाश' शीर्षक लेख में सुप्रसिद्ध लेखक गोविन्द प्रसाद ने त्रिलोचन के विषय में लिखा है- ''त्रिलोचन ने अपने बारे में कम नहीं लिखा है, बहुत लिखा है। और इस अपने बारे में लिखे हुए में गर्वोक्तियाँ भी कम नहीं हैं। लेकिन अहंकार से परे इन गर्वोक्तियों के वस्तुगत आधार को लक्ष्य करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी (गुरूदेव) उनमें, 'दारुण अभाव में रहकर भी अपराजेय बने रहने का भाव' देखते हैं। और प्रो. नामवर सिंह 'निपट निर्वैयक्तिकता में भी गहरी वैयक्तिकता' कहकर अन्य प्रगतिशील कवियों के साथ रखते हुए भी गहरे भेद को पहचानते हैं। इसी संदर्भ में विद्वान आलोचक रामविलास शर्मा ने लिखाः (देर से ही सही!) ***''भूख, उपवास और बेरोजगारी पर जैसी अनुभूति-तीव्रता त्रिलोचन की कविताओं में है वैसी किसी अन्य प्रगतिशील कवि में नहीं। लगभग वैसी ही अनुभूति जैसी तुलसी और निराला की आत्मकथात्मक पंक्तियों में है। ऐसी उक्तियों में ट्रैजिक औदात्य है, नैतिक दृढ़ता से मंडित मानवीय गरिमा है।''***....इन सॉनेटों के वर्ण्य विषय वे स्वयं ही हैं। खुद की खाकाकशी इनमें देखने वाली है।''[5]

''वही त्रिलोचन है, वह-जिस के तन पर गंदे
कपड़े हैं। कपड़े भी कैसे-फटे लटे हैं,
यह भी फैशन है, फैशन से कटे कटे हैं।
कौन कह सकेगा इसका जीवन चंदे पर
अवलंबित है।''[6]

तथा

''.........ओजस्वी वाग्धारा
बहती है, भ्रम-ग्रस्त जनों को पार उतारा
करती है, खर आवर्तो में ले ले कर मथ
देती है मिथ्याभिमान को। यही त्रिलोचन
है, सब में, अलगाया भी, प्रिय है आलोचन।''[7]

आत्मपरक कविताओं की शृंखला में इस संग्रह का पाँचवाँ सॉनेट त्रिलोचन ने अपने पूज्य पिता के बारे में लिखा है जिसमें पिता के व्यक्तित्व, पुरुषार्थ तथा अन्य सद्‌गुणों का उल्लेख किया गया है। त्रिलोचन के अनुसार उनके पिता जी बहुत लम्बे थे, लगभग सात फुट के, इसलिए मनुष्य की ऊँचाई के लिए वे एक चुनौती की तरह थे। पुरुषार्थी इतने थे कि तालाब को पाटकर उन्होंने खेत बनाया था। अपनी शक्ति पर पौशाला चलाते थे। दरिद्रता से अपने आप को उबारा जिसको जैसी जरूरत हुई उसको वैसी सहायता दी। निराशा उन्हें

छू भी नहीं गयी थी। त्रिलोचन कहते हैं कि मैं तुम्हें देवों में गिनूँ या ऋषियों में।

हृष्ट-पुष्ट उन्नत शरीर वह, पितः तुम्हारा,
एक चुनौती था मनुष्य की ऊँचाई के
लिए। जिन्हें आवश्यकता थी उन्हें सहारा देते
तुमको देखा था।

..... पाट ताल को खेत बनाया, मँड़ई से घर किया,
दिया धो कल्मष दरिद्रता का, बस में किया काल को।''[8]

'उस जनपद का कवि हूँ' त्रिलोचन के कविता-संग्रह की प्रतिनिधि कविता है। वे ऐसे जनपद के कवि हैं जो भूख और अभाव से ग्रस्त है। जिसके या तो स्वप्न होते ही नहीं हैं या स्वप्न संघर्षों में ही समाप्त हो जाते हैं। त्रिलोचन उस जनपद के कवि हैं, जहाँ का जन कला के बारे में कुछ नहीं जानता है, वह जन यह नहीं जानता कि कविता भी कुछ दे सकती है। वह अपने से उदासीन रहता है। गाँव की वह जनता जो उन विचारों को ढोती चली जा रही है जो विचार समाप्त हो गये हैं। उसके मनोरथ विफल हो जाते हैं और फिर वह उन पर आँसू बहाता रहता है। रामायण पढ़ कर वह धर्म कमाता है।

''उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला-नहीं जानता
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है....अब समाज में
वे विचार रह गये नहीं है जिन को ढोता
चला जा रहा है वह।''[9]

इस संग्रह में प्रेम की कविताएँ भी हैं। बसंत में त्रिलोचन को भी प्रिय की याद आई है परन्तु कविता में अभिव्यक्ति का उनका अन्दाज बिल्कुल अलग है। वे कहते हैं जिस तरह से चन्द्रमा आकाश में काले बादलों की पाँखों के बीच किसी किनारे खोया-खोया सा रहता है, जो किसी का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित नहीं करता है, कुछ वैसी ही दशा मेरी है।

''घिर आए बादल बसंत में, याद तुम्हारी
आई। आपा भूला। खोज भरी आँखों में
तुम्हें पकड़ना चाहा। थी मन की लाचारी
जाने कब से। क्षीणप्राय काले पाँखों में
चाँद जिस तरह नीले नभ में किसी किनारे
खोया-खोया सा रहता है।''[10]

प्रिय के प्रथम दर्शन से मन में जो आकर्षण पैदा हुआ उससे कवि के जीवन का क्रम अकस्मात् बदल गया। अब तक कवि ने अपने जीवन में जो कुछ पाया था उसका मूल्य खो गया। हृदय सिंधु की गहराई को प्रिय ने थाहा। पता नहीं ऐसा क्या पूर्व सम्बन्ध था कि मन खिंचता ही चला गया। त्रिलोचन लिखते हैं-

''जब से देखा तुम्हें, तुम्ही को पाना चाहा।
जीवन का क्रम अकस्मात् कुछ और हो गया,
अब तक जो कुछ पाया उसका मूल्य खो गया

.... क्रीड़ा करती हो शशिलेखा जैसे;
फूलों पर हँसती हो वहीं जड़ी हो।
चंचल मन हो गया अचंचल पास तुम्हारे,
ज्यों दीपक निष्कंप सहज आरती उतारे।''[11]

त्रिलोचन ने अकेलेपन और उपेक्षा के दंश को भोगा है, लेकिन वे जिस रास्ते पर चल पड़े उस पर चलते ही गये। पीछे मुड़कर वे देखते हैं, रास्ता सूना है, लेकिन उनके जीवन का लक्ष्य है- 'उस सीमा को पा लेना जहाँ असीम मुस्कुराता है। झूठी आशाएँ उन्हें कभी भ्रमित नहीं कर पाईं तथा रास्ते के विघ्न उन्हें कभी झुका नहीं पाए -

''पीछे मुड़ कर देख रहा हूँ, पथ सूना है
जिस पर चलता रहा और चलता जाऊँगा
आगे भी। मुझको उस सीमा को छूना है
जहाँ असीम मुस्कुराता है।''[12]

जीवन के गहरे अनुभव त्रिलोचन की कविता में दिखाई पड़ते हैं। जीवन भावावेशों में नहीं जिया जा सकता है। मन के आवेगों को विचारों की रोशनी में परखना होता है। जीवन बहता हुआ पानी नहीं है जो कभी लौट कर नहीं आता है। जो मन की लहर आए उसी के अनुरूप कार्य कर देना मनुष्य की मर्यादा नहीं है। जीवन में आने वाली बाधाएँ व्यक्तित्व को निखारने का काम करती हैं। जिसमें प्रबल जीवनी शक्ति होती है वह बाधाओं के प्रखर वेग को पार कर जीवन-सिद्धि प्राप्त करता है।,

''गया तुम्हारे द्वार कहा था बार-बार मन
ही मन, हुआ सो हुआ, अब न इधर जाऊँगा
.....सचमुच यह जीवन बहता पानी नहीं-न लौटे
अब लाऊँगा अधिक नियंत्रण।''[13]

प्रिया के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए त्रिलोचन लिखते हैं कि शोभा अब उसके तन में छिपी नहीं रही है, वह प्रगट हो गयी है और इसके लिये वे एक बहुत सटीक शब्द का प्रयोग करते हैं 'संविभक्त वपु'। इस एक शब्द में वह क्षमता है कि इसके प्रयोग के बाद शरीर के कटाव छँटाव को दिखाने के लिये अन्य शब्दों का प्रयोग करने की जरूरत समाप्त हो जाती है। केदारनाथ अग्रवाल इसी प्रकार का स्थूल सौन्दर्य दिखाने में अपनी कविता में अश्लील शब्दों के प्रयोग से परहेज नहीं करते हैं -

''कठोर हैं तुम्हारे कुचों के
मौन मंजीर,
ओ पिकासो की पुत्रियों !
सुडौल हैं तुम्हारे नितम्ब के दोनों कूल।''[14]
तथा
''तुम मुझे कुछ न दो
न अपने उरोजों के उठे हुए कसे आश्वस्त कूल
.... न अपने नितम्बों का चरणों तक बहता हुआ महोल्लास''[15]

जहाँ केदारनाथ अग्रवाल ये सब कुछ लिखते हैं वहीं त्रिलोचन बहुत सावधानी से शब्दों का चयन करते हैं और मर्यादा में रहते हैं -

''अब शोभा उस के तन में छिप नहीं रही है,
संविभक्त वपु नवयौवन से आज अनोखा
लगता है। शंका होती है, सच या धोखा
क्या है। रंग रूप में कमी न कहीं रही है।
किसी एक में नहीं, ज्वार सर्वत्र दिखाई
देता है एक ही।''[16]

निराला ने प्रेयसी का चित्रण किस प्रकार से किया है यह देखिये -

''घेर अंग-अंग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की,
ज्योतिर्मयिलता-सी हुई मैं तत्काल
घेर निज तरु-तन।
खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगंध के,
प्रथम वसन्त में गुच्छ-गुच्छ।''[17]

सौन्दर्य और प्रेम के उपर्युक्त तीन काव्यांशों में त्रिलोचन लगभग निराला के समकक्ष दिखाई देते हैं। उन्होंने सरल भाषा में मर्यादा के साथ सुन्दरी के शरीर में आए यौवन का चित्र प्रस्तुत किया है वहीं केदार को कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है जो न होते तो शायद ज्यादा बात बनती।

जीवन के संघर्षों में उलझकर प्रिया की याद भी भूल जाती है। त्रिलोचन स्वीकारते हैं कि इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई है, पूरे दिन मशीन पर काम करना पड़ता है, लौट- कर थके हुए लेट जाना, कमाई का हिसाब जोड़ना, फिर उठकर रूखी-सूखी रोटी खाना। त्रिलोचन कहते हैं 'आरर डाल' नौकरी है यह, जिसका कुछ भरोसा भी नहीं है कि ये कब छूट जाएगी। यहाँ तो रोज कुँआ खोदकर पानी पीना पड़ता है, फिर कहते हैं कि धीरज धरो मैं आऊँगा अपने घर और जब अपने घर को देखूँगा तब शायद कुछ कर पाऊँगा।

''सचमुच इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ। पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना,
इस उस पर मन दौड़ाना, फिर उठकर रोटी
करना, कभी नमक से, कभी साग से खाना।
आरर डाल नौकरी है।''[18]

जीवन और प्रकृति का अभिन्न सम्बन्ध है। 'दूब' घास की जीवनी शक्ति ने कवि को गहरे तक प्रभावित किया है। त्रिलोचन ने 'दूब' पर कई कविताएँ लिखी हैं। विवेच्य संग्रह में भी 'दूब' पर एक सॉनेट है। जेठ की कठोर धूप में 'दूब' भूरे रंग की जली हुई सी हो जाती है। बाहर से देखने में लगता है कि अब इसका जीवन समाप्त हो गया है, लेकिन भीतर ही उसकी प्राणधारा प्रवहमान रहती है। कवि को लगता है कि गर्मियों में वह वातावरण का दिया हुआ दंड भोग रही है। फिर वर्षा ऋतु आती है, पानी बरसता है, पुरवाई चलती है, और दूब में सौ-सौ अँखुए फूट पड़ते हैं, और वह नयी ही चाल में चल पड़ती है; जीवन एक बार फिर से विजयी हो जाता है -

''दूब गर्मियों में देखा, भूरी भूरी थी,
लगा कि बस दो चार दिनों के लिए और है,''
वर्षा आई। घटा घिरी। पूर्वा लहराई।
कल्प हो गया उसी दूब का और सब झड़ा
पहले का संकोच, नई ही चाल दिखाई
सौ सौ अँखुओं से करने लग गई इशारा''[19]

त्रिलोचन ग्रामीण परिवेश के कवि हैं। खेती और किसानों का जीवन्त चित्रण उन्होंने अपनी कविताओं में किया है। वे कहते हैं कि ''मुझे हरियाली पसन्द है। फूलों का खुलकर खिलना मुझे आह्लादित करता है। लेकिन चाहने भर से ही कोई चीज नहीं मिल जाती है।'' इस धरती को हरा-भरा करने का जो संकल्प लेते हैं, वे आँधी-तूफानों से पीछे नहीं हटते हैं। किसान खेतों में परिश्रम करते हैं, घास-फूस काँटों की निराई करते हैं और मजबूत बाड़ लगाकर खेतों की रखवाली करते हैं, जिस वजह से फसलों की जानवरों से रक्षा होती हैं, वरना पशु फसलें चर जायेंगे और कुछ भी न बचेगा। सचमुच किसान का पूरे समाज पर बड़ा ऋण है, जिसे चुकाया नहीं जाता।

''..........इसके लिए टेक धरता है
जो वह आँधी, झंझा, ओलों से कब भागा,
अपनी बारी में रहता है और निराई
करता है राढ़े, काँटों की।''[20]

दिन-रात ऐसा कठिन परिश्रम करने वाला किसान, जिसकी, मेहनत की बदौलत दुनिया को रोटी मिलती है वह खुद 'रोटी' से महरूम रहता है। केदार नाथ अग्रवाल ने रोटी पर चार पंक्तियों की एक कविता लिखी है, जिसको यहाँ उद्धृत करना उचित समझता हूँ-

''जब रोटी पर संकट आया
तब भूखे ने द्रोह मचाया
राज पलट कर रोटी लाया
रोटी ने इतिहास बनाया।''[21]

समाज की आर्थिक विसंगति की प्रतिक्रिया स्वरूप मार्क्सवाद का जन्म होता है, जिसका मूल स्वर है अन्याय और शोषण का विरोध। शोषितों के प्रति सहानुभूति इसकी विशेषता है।

त्रिलोचन 'बापू' की याद करते हुए कहते हैं कि अगर तुम होते तो कितना अच्छा होता, तुम अजातशत्रु थे, परन्तु तुमसे मेरे मन का मेल न हो पाता। आज के नूतन युग के मनुष्य का नारा है कि 'जो काम करे वह खाए।' दूसरों के श्रम का उपभोग करने वाले जमीदारों और पूँजीपतियों को नये युग के मानव ने ललकार दिया है। आने वाले समय के कवि और लेखक पहले की तरह से चारण नहीं बनेंगे। त्रिलोचन ये कल्पना करते हैं कि आने वाले समय में समाज वर्गहीन होगा, और उस समाज में बापू पूज्य बने रहेंगे।

''बापू, तुम होते तो कितना अच्छा होता
बिना तुम्हारे सूना-सूना सा लगता है
यद्यपि तुमसे मेरे मन का मेल न होता

.... उसका नारा है, काम करे सो खाए,

जग में परजीवी ज़मीदार पूँजीपति सब को ललकारा है।
चरण नहीं बनेंगे आगामी मसिजीवी उच्च वर्ग के।''[22]

त्रिलोचन की कविताओं में भूख और गरीबी की पीड़ा की ईमानदार अभिव्यक्ति हुई है। ईमानदार मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि त्रिलोचन ने स्वयं उस पीड़ा को झेला है। भूख क्या होती है वो जानते हैं। खाए-पिये अघाए वर्ग के मसिजीवी जब भूख या रोटी पर कविता लिखते हैं तो वह दिमागी ऐयाशी से ज्यादा कुछ नहीं होती है, लेकिन त्रिलोचन ने कविता को अपने जीवन में जिया है।

भूखे व्यक्ति के बारे में त्रिलोचन लिखते हैं कि जब कोई भूखा हो तो उसको बड़ी-बड़ी बातें मत समझाओ, उसे खाना खिलाओ, जिससे वह जिन्दा रह सके। जब भूखे का पेट भरा होगा तभी वह कुछ सुन और समझ सकेगा। अगर दीवाल ने नींव छोड़ दी तो वह ध्वस्त हो जायेगी। छोटी-छोटी थून्हियाँ लगाकर उसे सँभाल पाना कठिन है। त्रिलोचन अपनी इस बात को समझाते हुए बड़ा अच्छा उदाहरण देते हैं कि जब दीवाल की काई साफ हो जायेगी तो उस पर बनाया गया चित्र उरेह उठेगा।

''कोई भूखा हो तो उस को ला कर रोटी
दो, मत लंबी चौड़ी बात बनाओ इस की
उस की, सारे जग की। नींव छोड़ कर खिसकी
तो दीवार गिरेगी..............भीतों पर काई
रह न जाय तब चित्र उरेह उठेगा।''[23]

त्रिलोचन ने खेतों का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया है। फूली हुई पीली सरसों के लहराते हुए खेत किसका मन नहीं मोहित कर लेते हैं। पछुआ पवन आ-आ कर सरसों को झुलाती है। तेल की भीनी-भीनी खुशबू नाक में आकर समा जाती है। पास में ही मटर लेटी हुई खिलखिला रही है, उसका फूलों से भरा हुआ आँचल है। यहाँ त्रिलोचन ने प्रकृति का बहुत सुन्दर मानवीकरण किया है।

''गेहूँ जौ के ऊपर सरसों की रंगीनी
छाई है, पछुआ आ आ कर इसे झुलाती
है, तेल से बसी लहरें कुछ भीनी भीनी
नाक में समा जाती हैं, सप्रेम बुलाती
है मानो यह झुक झुक कर। समीप ही लेटी
मटर खिलखिलाती है।''[24]

वसंत का वर्णन करते हुए केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं-

''वसंत आयाः
पलास के बूढ़े वृक्षों ने
टेसू की लाल मौर सिर पर धर ली !
विकराल बनखंडी
लाजवंती दुलहिन बन गयी,
अनंग के
धनु-गुण के भौंरे गुनगुनाने लगे,
आम के अंग

बौरों की सुगंध से महक उठे
मंगल गान के सब गायक पखेरू चहक उठे।''[25]

इस संग्रह में एक सॉनेट ऐसा भी है जिसमें त्रिलोचन ने अपने स्वभाव का परिचय दिया है। वे कहते हैं कि-***''इस ऊबड़ खाबड़ दुनिया से मैं समझौता नहीं कर पाया हूँ। अगर समझौता कर लेता तो शायद कुछ हासिल कर लेता। लेकिन स्वभाव की जो डोरी है उसमें ऐंठन पड़ी हुई है। जान भले चली जाय लेकिन यह ऐंठन नहीं जाने वाली है।''*** कवि को सच्चे, साफ मन के लोग पसंद है। थोथा अहंकार उन्हें फसल के बीच खड़े 'मोथा' की तरह लगता है, जिसे वे उखाड़ फेंकना चाहते हैं। त्रिलोचन सच्चे अर्थो में जनवादी हैं वे कहते हैं कि जब तक समाज की विषमता समाप्त नहीं होगी, तब तक उन्हें संतोष नहीं मिलने वाला है।

''..... अहंकार जो थोथा
है वह मुझको सहन नहीं है, मानव असली
मुझ को प्रिय है,-खड़ा खेत में है जो मोथा
मैं उसको उखाड़ डालूँगा-ज्वर है फ़सली।
विषम समाज व्यवस्था सम जब दिखलाएग
तभी, तभी संतोष इस हृदय में आएगा।''[26]

ऐसे समाज के प्रति आक्रोश होना लाज़िम है जहाँ भूख से लोग मर जाते हैं, और लोग संवेदनहीन बने रहते हैं। 'सुकनी' बुढ़िया पर लिखी गयी कविता इसी तरह की है। ऊसर में उसकी मड़ैया थी। अस्थिशेष उसका शरीर था। उसकी झोपड़ी के आस-पास चरवाहे जानवर चराते थे और उसको चिढ़ाते थे। कोई उसे पेट भरने को रोटी नहीं देता था। 'सुकनी' सीला बीनती थी, घरों में पिसौनी करती थी, तब जाकर कहीं पेट का गड्ढा थोड़ा-थोड़ा भर पाता था। गरीबी में उसने अपने छह बेटों को अपनी आँखों के सामने मरते हुए देखा था। यह कैसा उसके जीवन का लेखा था ! इससे ज्यादा हमारा समाज और क्या संवेदनहीन हो सकता था कि मरने के बाद भी बुढ़िया का ठीक प्रकार से अंतिम संस्कार नहीं किया गया। उसके शव को कुएँ में फेंक दिया गया। उसे टिकटी भी नहीं मिल पायी। जीवन चक्र में पिसती उपेक्षित, एकाकी, अस्थिपंजर मात्र सुकनी बुढ़िया के प्रति कवि की सहानुभूति धर्मधुरन्धरों के प्रति तीव्र व्यंग्य से सम्पृक्त है -

''..... पड़ी थी लाश भी खुल
उसी खाट पर जिस पर दम तोड़ा था। पाए
टिकठी कहाँ भाग था उसका। कब हिली डुली।
निर्विकारता शव की कहीं देख यदि पाते
धर्म धुरंधर तो संतों का संत बनाते।''[27]

समाज की विषमता, ऊँच-नीच, भ्रष्टाचार, तथा बंधनों के प्रति कवि का मन विरोध करता है। त्रिलोचन कहते हैं हाथ पर हाथ रखे रुके मत रहो, आओ विरोध करें और बाधाओं की दीवारों को ध्वस्त कर दें। उद्यम से अपने भाग्य को बदल दें। साहस कर आगे बढ़ो, सारा विश्व स्वागत में खड़ा है।

''दीवारें दीवारें दीवारें दीवार
चारो ओर खड़ी हैं। तुम चुपचाप खड़े हा
हाथ धरे छाती पर मानो वही गड़े हो।
मुक्ति चाहते हो तो आओ धक्के मारे

और ढहा दें।''[28]

त्रिलोचन ने अपने साहित्य में न हारने की, और आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। इस भाव की कविताएँ लगभग इनके सभी संग्रहों में प्राप्त होती हैं।

त्रिलोचन अनुभव और ज्ञान के सागर हैं। उनकी सामान्य ढंग की कविताएँ पढ़ते-पढ़ते वे कब ज्ञान और दर्शन की बात करने लगें, पता ही नहीं चलता। आज के दौर में मनुष्य कबंध की तरह से जी रहा है, जिसका सिर पेट में धँसा हुआ है। सिर में अधिकांश ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं जो देखने, सोचने, सूँघने, स्वाद लेने का कार्य करती हैं।

''यह कबंध युग है-सिर सब का पेट में धँसा
है, बाँहें आहार खोजने को जाती हैं
इधर-उधर, यों जब भी वे जो कुछ पाती है
उसे जकड़ लाती हैं। लीला देख कर हँसा
मैं मन ही मन, कौन नहीं इस जाल में फँसा,
कहाँ मनोवांछित सुख की घड़ियाँ आती हैं।
अनदेखी विपदाएँ नए कहर ढाती हैं-
झँसा गया रामू तो उसने श्याम को झँसा।
महाराज पेट के सभी मानुश चाकर हैं,
दर्शन, ज्ञान, कला, कौशल, विज्ञान उन्हीं की
टहल बजाया करते हैं। सब अपने जी की
अपने तक रखते हैं- सद्गुण के आकर हैं
सेव्य के लिए, आपस में तो मायाकर हैं
स्वल्प, स्वल्पतम संख्या ही पाती है घी की।''[29]

पेट की आपाधापी में बुद्धि, ज्ञान, संवेदना और सद्गुणों की उपेक्षा हो गयी है। सद्गुण तो केवल सेव्य को दिखाने के लिए ही हैं आपस में छल-कपट का ही व्यवहार हो रहा है। लोग एक दूसरे को ठगने में लगे हैं। कवि जीवन-द्रष्टा होता है। त्रिलोचन जीवन-द्रष्टा होकर इन सब जगत-व्यवहारों को देखते हैं, और हँसते हैं। जो लोग केवल अपने पेट के लिए ही सोचते हैं और जीवित रहते हैं, मुक्तिबोध ने उनके लिए 'उदरम्भरि' शब्द का प्रयोग किया है। महाकवि तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में ऐसे लोगों की निन्दा की है जो अपने जीवन का उद्देश्य 'पेट भरना' ही रखते हैं।

''मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं,
उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं।''[30]

कलियुग का वर्णन करते हुए तुलसी लिखते हैं कि माता-पिता बालकों को बुलाकर वही धर्म सिखायेंगे जिससे पेट भरा जा सके। त्रिलोचन ने समय को बहुत सटीक उपमा दी है- कबंध की। कबंध वह राक्षस था जिसका सिर पेट में घुसा हुआ था, या ये कहा जाए कि उसके सिर था ही नहीं। भुजाएँ थी लम्बी-लम्बी जो पकड़ कर आहार लाती थीं। आज के समय में भी आहार जुटाने के लिए, किसी भी प्रकार से धनार्जन करने, वैभव-विलास की सामग्री जुटाने के लिए लोगों के पास लम्बी-लम्बी भुजाएँ हैं। लोग एक दूसरे को छल रहे हैं, और एक अंधी दौड़ में दौड़ते चले जा रहे हैं। इस होड़ में स्वल्पतम संख्या ही उन लोगों की होती है जो पूरी सुख-सुविधाएँ जुटा पाते हैं, शेष लोग तो रीते ही रह जाते हैं।

इस कविता-संग्रह के अंतिम दस सॉनेटों में त्रिलोचन ने समकालीन कवियों एवं समीक्षकों द्वारा उन पर लगाए गये आरोपों पर अपनी काव्यात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की है। इनमें उन्होंने कविता के स्वरूप से सम्बन्धित प्रमुख प्रश्नों को उठाया है। सरस्वती को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं कि-बहुत से कवि 'तटस्थ हो देश काल से मन में धरते ध्यान तुम्हारा; उतारते हैं नित्य आरती' और त्रिलोचन को कवि कहना कविता का अपमान समझते हैं। देशकाल से तटस्थ होकर कोई रचनाकार कविता के माध्यम से सत्य की अनुभूति ही नहीं कर सकता इसीलिए त्रिलोचन मजदूरों किसानों की धूल भरी राहों में घूमते रहे एवं सरस्वती को अपनी यह दम्भोक्ति सुनाते रहे हैं -

''कवि, ऋषि देव आदि पीछे हों मानव पहले,
ऐसे रहो कि धरती बोझ तुम्हारा सह ले।''[31]

दुर्गेश वाजपेयी
200 ख्योरा, नई बस्ती
एन.एस.आई. कल्याणपुर, कानपुर (उ.प्र.) 208017

सन्दर्भ -

1. *गोपाल शरण तिवारी, त्रिलोचनः किंवदन्ती पुरूष, श्री प्रकाशन, दुर्ग, 1998, पृष्ठ 529*
2. *गोपाल शरण तिवारी, किंवदन्ती पुरूष त्रिलोचन, श्री प्रकाशन, दुर्ग, 1998 पृष्ठ 530*
3. *केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन के बारे में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ-122*
4. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-13*
5. *गोविन्द प्रसाद,त्रिलोचन के बारे में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ-17*
6. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-11*
7. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-12*
8. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-15*
9. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-17*
10. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-20*
11. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-20*
12. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-29*
13. *त्रिलोचन, उस जनपद, का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-37*
14. *केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-108*
15. *केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-99*
16. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-38*
17. *निराला, अनामिका, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1986, पृष्ठ-1*
18. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-46*
19. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-51*
20. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-63*
21. *केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-62*
22. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-77*
23. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-87*
24. *त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-62*
25. *केदारनाथ अग्रवाल, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाान, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ-98*

26. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-93
27. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाश नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-96
28. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-97
29. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ-103
30. तुलसीदास, राचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2003, पृष्ठ-922
31. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ -107

महिला सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका के प्रति महिलाओं का दृष्टिकोण

(सागर नगर के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन)

विवेक मेहता

भूमिका

दुर्गा सप्तशती में सर्वभूतों मे व्याप्त शक्ति की आराधना शक्ति, विद्या, लक्ष्मी आदि रूप में करते हुए 'मातृ' रूप में भी की गई है।[1] मातृशक्ति के प्रति ऐसे भाव वाला हमारा जगद्गुरु भारत वर्ष विगत 1000 वर्षों से विभिन्न राजनैतिक, धार्मिक या सामाजिक शासकों की दुर्वृत्ति का परिणाम भोग रहा है। लगभग 600 से 700 वर्षों तक मुगल आक्रांताओं का शासन, लगभग 300 वर्ष अंग्रेजों के दमनकारी शासन में शासकों की मनोवृत्ति का जो प्रभाव महिलाओं पर पड़ा वह सर्वविदित है। किंतु आजद भारत का 70 वर्षों का शासन मातृशक्ति को अबला से सबला बनाने में प्रयत्नशील है यह घनघोर आश्चर्य का एवं चिंतन का विषय है। स्वामी विवेकानंद ने कहा है, ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। येत्रे तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफलाः क्रिया।।'' अर्थात्, सभी जातियां, सभी राष्ट्र स्त्रियों को समाज में सम्मान का दर्जा देकर ही महान बने हैं। जिस देश, जिस जाति में नारियों की पूजा नहीं होती वह जाति कभी बड़ी नहीं बन सकती। जहाँ नारियाँ दुःखी रहती हैं, पीड़ित हैं और प्रताड़ित होती हैं, उपेक्षित होती हैं उस परिवार अथवा उस देश की उन्नति की आशा करना आकाश कुसुम के समान है। इस दार्शनिक दृष्टिकोण के उपरान्त भी भारत उस मुगलकालीन या अंग्रेजियत की मानसिकता से उबर नहीं पा रहा है और जो वास्तव में न केवल कानूनन अपितु प्राकृतिक आधार पर भी जिस अधिकार की अधिष्ठात्री है वह मातृशक्ति स्वयं के सशक्तीकरण से वंचित है। प्रकृति के रहस्यों को समझ पाना आज भी मानव मस्तिष्क से परे है। प्रकृति ने समूचे मनुष्य जीवन को स्त्री तथा पुरुष के रूप में संवारा है। संसार में कुल जनसंख्या का लगभग आधा भाग स्त्रियों का ही है। भारत में नारी क अस्तित्व के संदर्भ में युगों के अंतर से अवधारणाएँ बदलती रही हैं। महिलाओं का सशक्तीकरण एक समाज जनित अवधारणा है जिसमें अनेक समाजशास्त्री, साहित्यकार, शिक्षाशास्त्री, राजनीतिज्ञ एवं समस्त बुद्धिजीवी वर्ग इसे अपने-अपने तरीकों से परिभाषित करते रहते हैं। यह इनकी मानसिक वेदना की परिणति है या पुरुष प्रधानता का सामाजिक स्वभाव, सदैव एक जटिल प्रश्न रहेगा। जो स्वयं शक्ति का पुंज है, जो ज्ञान का अथाह सागर है, जो लक्ष्मी रूपेण है, जो समस्त मनुष्य जाति की जननी है। आज के समय में सशक्तीकरण की अभिलाषा लिये सतत् प्रयत्नशील है। महिलाओं के सशक्तीकरण में महिला पुलिस एक पद सोपान के रूप में अपनी महती भूमिका का निर्वहन कर रही है। निःसंदेह सरकार और समाज महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु विभिन्न क्षेत्रों में यथा महिलाओं के

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 5-23*

33: आरक्षण जिसमें व्यक्तिगत सशक्तीकरण, सामाजिक सशक्तीकरण, शैक्षणिक सशक्तीकरण, आर्थिक सशक्तीकरण, कानूनी सशक्तीकरण, स्वास्थ्य सेवाओं में सशक्तीकरण आदि अनेकानेक दिशा में यथा संभव प्रयास करते दिख रहे है। परंतु महिलाओं की सुरक्षा, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, भ्रूण हत्या, महिलाओं के विरुद्ध अपराध यथा तेजाब फेंकना, बलात्कार, यौन उत्पीड़न, दहेज हत्या, घरेलु हिंसा, अपहरण, फुसला या धमकाकर भगा ले जाना, ससुराल पक्ष द्वारा क्रूरता, सेक्स व्यापार में धकेलना, नाबालिग लड़कियों से दुष्कृत्य, दहेज प्रताड़ना, आदि के रूप में मानसिक तथा शारीरिक उत्पीड़न का शिकार होना आदि अनेकानेक दशाएँ हैं जहाँ महिला को 100: सुरक्षा की आवश्यकता है। महिला अपराध तथा महिलाओं के विरुद्ध अपराध दोनों ही ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ महिला पुलिस उनके मानव अधिकारों की रक्षा करते हुए उन्हें सशक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

साहित्य सर्वेक्षण

महिला पुलिस महिलाओं के सशक्तीकरण में किस तरह महती भूमिका का निर्वहन कर रही है इसके लिये महिला पुलिस के संदर्भ में विविध साहित्य का अवलोकन किया गया है किंतु प्रथमतः महिला सशक्तीकरण के मूल स्वरूप को समझना आवश्यक है तदुपरांत ही महिला पुलिस की महिलाओं के सशक्तीकरण में भूमिका को स्पष्ट किया जा सकता है।

महिला सशक्तीकरण

बोलचाल की भाषा में अपनाये गये किसी शब्द का वही आशय होता है जो शब्द कोष में रहता है। इन्वर्टेड कॉमाज में लिखे हुए शब्द का अर्थ संकुचित होता है। महिला सशक्तीकरण का सीधा अर्थ है, 'महिलाओं में स्वतंत्रता, स्वालंम्बन एवं सम्पन्नता'।[2]

महिला सशक्तीकरण में एक ऐसे समाज, एक राजनैतिक वातावरण का निर्माण होता है, जिसमें महिलाएँ पुरुष-प्रभुत्व वाले समाज से भिन्न दमन, शोषण, आशंका, भेदभाव आदि भावानाओं के भय से मुक्त होकर सांस ले सकती हैं। महिला सशक्तीकरण का अर्थ महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, जाति एवं लिंग आधारित भेदभाव से मुक्ति है जिसका अर्थ महिलाओं को उनके जीवन विकल्प बनाने की स्वतंत्र्ता प्रदान करना है।[3]

महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण संवैधानिक और कानूनी प्रावधान

लैंगिक समानता का सिद्धांत भारतीय संविधान की प्रस्तावना मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्यों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में निहित है। हमारा संविधान न केवल महिलाओं को समानता देता है, बल्कि महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपायों को अपनाने के लिए राज्य को शक्ति भी देता है। भारत ने महिलाओं के समान अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए कई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और मानवाधिकारों के लिए भी अनुमोदन किया है। 1993 में महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेन्शन (CEDAW) का अनुसमर्थन है। भारत में महिला के लिए उपलब्ध अधिकारों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।[4]

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान न केवल महिलाओं को समानता देता है बल्कि राज्यों को सकारात्मक भेदभाव के उपयों को अपनाने की शक्ति भी प्रदान करता है। जिससे वे सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक रूप से सशक्त हो सकें। मौलिक अधिकार, व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता और विधियों के समान संरक्षण को सुनिश्चित करते हैं। किसी भी नागरिक के धर्म, जाति, लिंग या जन्म के आधार पर भेदभाव का प्रतिवेध

और वे रोजगार से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों को अवसर की समानता की गारंटी देता है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15(प), 15(3), 16, 39(घ), 39(क), 42, 46, 47, 51(क-ड़), 243-घ(3), 243-घ(4), 243(4) आदि अनेकानेक प्रावधान है जो महिलाओं को सशक्त करने में सक्षम हैं।[5]

कानूनी प्रावधान

संवैधानिक समानता को बनाए रखने के लिए राज्य ने महिलाओं को समरूप अधिकार सुनिश्चित करने एवं सामाजिक भेदभाव, हिंसा और अत्याचारों के विभिन्न प्रकारों का मुकाबला करने, विशेष रूप से काम कर रही महिलाओं के लिए सहायता सेवाएं प्रदान करने के लिए विभिन्न विधायी प्रावधानों को लागू किया है। महिलाओं के विरुद्ध अपराधों को मा. दं. सं. में बलात्कार - धारा 376, अपहरण या धोखे से ले जाना - धारा 363-373, दहेज, दहेज हत्या या प्रयास - धारा 302, 304 बी, शारीरिक और मानसिक यातना - धारा 498 ए, छेड़छाड़ - धारा 354, यौन उत्पीड़न - धारा 509 आदि महिलाओं को समाज में सशक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।6 इनके अतिरिक्त महिलाओं को उनका अधिकार दिलवाने एवं उनके सशक्तीकरण में कौटुंबिक न्यायालय अधिनियम - 1954, विशेष विवाह अधिनियम -1954, हिन्दू विवाह अधिनियम - 1954, 2005 में संशोधन के साथ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम -1956, अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम - 1956, मातृत्व लाभ अधिनियम - 1961, दहेज निषेध अधिनियम - 1961, गर्भावस्था उन्मूलन अधिनियम - 1971, अनुबंध श्रम अधिनियम - 1976 आदि अनेकानेक प्रावधान समाज में महिला के सशक्तीकरण के आधारभूत माध्यम हैं। महिलाओं के लिये विशेष उपबन्धों में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग 1992, स्थानीय स्वशासन में महिलाओं के लिए आरक्षण (73 वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम - 1992), बालिका शिशु हेतु राष्ट्रीय योजना क्रियान्वयन, महिला सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय मिशन, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओं योजना, राजीव गाँधी स्कीम फॉर इम्पावरमेन्ट ऑफ एडोलसेन्ट गर्ल्स (सबला), स्वाधार योजना, उज्जवला योजना आदि अनेकानेक ऐसे प्रावधान व योजनाएँ हैं जो महिला के सशक्तीकरण के प्रत्यक्ष साधन हैं।

उपरोक्त विभिन्न संवैधानिक, कानूनी प्रावधानों अथवा योजनाओं के लागूकरण उपरान्त भारत में महिलायें निःसंदेह सशक्त हुई हैं परन्तु देश में महिलाओं की सुरक्षा आज भी एक विकराल एवं वीभत्स प्रश्न की भांति एक गम्भीरतम समस्या हमारे समाज के समक्ष खड़ी है। महिलाओं की सुरक्षा के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण दृष्टिकोण जो महिला पुलिस की आवश्यकता और महिलाओं के सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण हैं।

मूल अध्ययन :-

भारत में महिलाओं की सुरक्षा

भारत रीति-रिवाजों परम्पराओं, लोकाचारों, रुढ़ियों, भिन्न-भिन्न संस्कृति का देश है। यहाँ महिलाओं को मातृशक्ति के रूप में विशिष्ट स्थान प्राप्त था। भारतीय मनीषियों ने समाज की संरचना में प्रकार्यात्मक आधार पर पुरुष और स्त्री के कार्यों का विभाजन धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक आवश्यकतानुरूप किया और सनातन परम्परा को अक्क्षुण बनाये रखा। भारत के सांस्कृतिक लक्ष्य 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' या 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में निहित थे उसी के अनुरूप संस्थागत मानदण्ड स्थापित किये गये। लेकिन विदेशी आक्रांताओं के आक्रमणोपरांत भौतिकवादी विचारधारा के साथ उनके सांस्कृतिक लक्ष्यों जिनमें साम्राज्यवाद, पूंजीवाद समाहित था उसका प्रभाव भारत के जनमानस पर भी पड़ा और हमारे संस्थागत मानदण्डों में महिलाओं को पुरुष के अनुरूप कार्यात्मक परिस्थितियों के अनुकूल ढलने पर विवश कर दिया। आज महिला हर क्षेत्र में चाहे वो राजनीति हो या बैंक, विद्यालय, खेल, पुलिस, रक्षा-क्षेत्र, कारोबार, या उड्डयन का क्षेत्र या फिर हरेक वो क्षेत्र जहाँ पुरुष प्रधानता थी महिलाओं की सहभागिता के कारण स्वाभाविक ही महिला अपने घर से बाहर आ गयी।

वर्तमान में महिला अपराध और महिलाओं के विरुद्ध अपराध की दर एवं प्रकृति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। दफ्तरों, घरों, सड़कों आदि पर किये गये महिलाओं के विरुद्ध अपराध, तेजाब फेंकना, बलात्कार, यौन उत्पीड़न, दहेज हत्या, अपहरण, किसी को फुसला या धमका कर भगा ले जाना, ससुराल द्वारा की गई क्रूरता, सेक्स व्यापार में धकेलना जैसी वारदातों में वृद्धि आई है। जो इस दिशा की ओर इंगित करता है कि महिलाओं की सुरक्षा खतरे में है।

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरों के आंकड़ों पर नजर डाले तो महिलाओं के विरुद्ध किये गये अपराधो की संख्या दिल्ली जो हमारी राजधानी है वहाँ वर्ष 2000 में 2125 की तुलना में 2013 में ये आंकड़ा 11449 पर पहुँच गया। जो अप्रत्याशित वृद्धि दर है और महिलाओं की सुरक्षा के प्रति हमारे संकल्प को विचलित करता है। क्योंकि महिलाओं के सशक्तीकरण में महिलाओं की सुरक्षा प्रथमतः समस्या के रूप में हमारे समक्ष खड़ी है। दिल्ली जैसी जगहों पर वर्ष में हरेक तीन में से दो महिलायें यौन उत्पीड़न का शिकार हैं। दिल्ली सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा करवाये गये सर्वेक्षण में औसतन 100 में से 80 महिलायें अपनी सुरक्षा को लेकर चिंतित हैं।[7]

एक गैर सरकारी संस्था द्वारा किये गये सर्वे में इन बढ़ते अपराधों के पीछे मुख्य कारण कामवाली जगहों में आपसी सहयोग की कभी "न के बराबर पुलिस सेवा'', खुलेआम शराब का सेवन, नशे की लत एवं शौचालयों की कमी थी। इस तरफ अब ज्यादा से ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे महिला अपराध के बढ़ते मामलों पर काबू पाया जा सके और महिलायें भी स्वयं को सुरक्षित महसूस करते हुए पुरुषों के साथ मिलकर देश को विकसित एवं समृद्ध बनाने में अपना बहुमूल्य योगदान दे सके।

महिला सुरक्षा से जुड़े कानून

भारत में महिला सुरक्षा से जुड़े कानूनों की सूची बहुत लम्बी है। इसमें चाइल्ड मैरिज एक्ट 1929, स्पेशल मैरिज एक्ट 1994, हिन्दू मैरिज एक्ट 1955, हिंदु विडो रीमैरिज एक्त 1856, इंडियन पीनल कोड 1860, मेटरनिटी बेनिफिट एक्ट 1861, फॉरेन मैरिज एक्ट 1969, इंडियन डाइवोर्स एक्ट 1969, क्रिश्चियन मैरिज एक्ट 1872, मेरिड वीमन प्रॉपर्टी एक्ट 1874, मुस्लिम वुमेन प्रोटेक्शन एक्ट 1986, नेशनल कमीशन फॉर वुमेन एक्ट 1990, सेक्सुअल हर्रास्मेंट ऑफ वुमेन एट बर्किंग प्लेस एक्ट 2013 एवं मुस्लिम महिलाओं का निवर्तमान सरकार का माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा तीन तलाक से मुक्ति का प्रावधान आदि कड़े कानूनों के बावजूद भी महिला अपराध में कमी की अपेक्षा वृद्धि हो रही है और महिलाएँ आज के सभ्य समाज में असुरक्षा की भावना लिए स्वयं के सशक्तीकरण हेतु प्रयत्नशील हैं।

महिला के सशक्तीकरण में महिला पुलिस

महिलाओं के सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका दोहरी है। प्रथमतः महिला, पुलिस में है जो उसके सशक्तीकरण का द्योतक है। दूसरा यह कि महिलाओं के सशक्तीकरण में महिला पुलिस एक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर रही है। अतः महिला पुलिस के संदर्भ में कुछ दृष्टिकोण प्रस्तुत है :-

भारतीय समाज में महिला पुलिस की आवश्यकता

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के उपरान्त स्वतंत्र भारत में पुलिस बल में महिलाओं को समाहित करने की आवश्यकता निम्नांकित कारणों से उत्पन्न हुई।

देश के विभाजन के फलस्वरूप बड़ी संख्या में 'रिफ्यूजीस' पाकिस्तान से भारत आये जो कि मजहबी दंगों से पीड़ित थे। उनमें बहुत बड़ी संख्या दुःख व्याप्त एवं मानसिक स्तर पर प्रताड़ित महिलाएँ थी जो कि प्रतिदिन प्रधानमंत्री से अपनी समस्याएँ लेकर मिलने के लिए आतुर रहती थीं। उस समय सुरक्षा एवं सतर्कता

कारणों से महिला पुलिस की अवधारणा महसूस की गई जो कि तब तक केवल पुरुषों के प्रभुत्व वाली संस्था थी। एक महिला उपनिरीक्षक तथा कुछ महिला आरक्षकों की नियुक्ति उस समय दिल्ली में की गई। इसके साथ ही प्रधानमंत्री को 'इन्द्रसिव' महिलाओं से सुरक्षा प्रदान करने हेतु पुनर्स्थापना तथा सहायता मंत्रालय को भी महिला पुलिस की आवश्यकता पड़ी।[8]

स्वतंत्र भारत में महिलाओं के सशक्तीकरण की महिला पुलिस के रूप मे प्रथम नींव यहाँ डाली गयी।

स्वतंत्रता के पश्चात् एक बड़े पैमाने पर लोगों को काम वं आश्रय की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह प्रतिस्थापन और तीव्र गति से बदलती हुई देश की सामाजिक तथा आर्थिक दशा ने पुलिस को नई दिशाओं की ओर सोचने पर मजबूर कर दिया। देश के कई भागों एवं राज्यों में राजनैतिक विद्रोह, बंद, हड़ताल, भाषायी एवं धार्मिक दंगे रोजमर्रा की बात हो गयी थी। इन सभी आंदोलनों में महिला की भागीदारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी जो कि कानून व्यवस्था बनाये रखने वाली संस्थाओं के लिए प्रतिदिन नई चुनौतियां एवं नये आयाम लेकर खड़ी थी और विशेषतः महिला आंदोलनकारी महिलाओं को विशेष परिस्थितियों में संभालने की आवश्यकता थी।[9]

यहाँ पर मुख्य समस्या यह थी कि स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन में जो महिलाएँ सत्यागृह या अन्य आंदोलनों में भाग लेती थीं, उस समय जब उन्हें पुरुष पुलिस बल द्वारा हाथ लगाये जाने पर राष्ट्रीय नेता घोर आपत्ति करते थे। स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की आंदोलनों में भागीदारी को राजनैतिक पार्टियों ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु दुरुपयोग किया। तब इस बात को तीव्रता से महसूस किया गया कि इस तरह की परिस्थितियों में जबकि पुलिस को महिला आंदोलनकारियों से जूझना पड़ रहा है, महिला पुलिस इन परिस्थितियों में अत्याधिक कारगर साबित हो सकती है।

स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय सरकार ने कुछ सामाजिक कानून बनाये जिसमें समाज के कुछ कमजोर वर्गों की महिलायें एवं बच्चे भी शामिल थे। इस तरह के कदम कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने वाली संस्थाओं के लिये नई चुनौतियां थी। इनकी आपूर्ति के लिये विशेषतः महिलाओं एवं बच्चों के प्रति कार्यवाही करने हेतु पुलिस प्रशासन में महिला पुलिस की आवश्यकता अत्यधिक महसूस की जाने लगी।

आर्थिक परिस्थितियों ने महिलाओं को काम की तलाश में घर की चार दीवारी से बाहर निकलने पर मजबूर कर दिया। बहुत सी बालिकाएँ एवं महिलाएँ बाल उपचार एवं अपराधों में लिप्त होने लगीं। महिलाओं एवं बालिकाओं के बढ़ते हुए विचलित व्यवहारों की संख्या को देखते हुए सरकार एवं पुलिस प्रशासन को महिला पुलिस की अत्याधिक आवश्यकता इन परिस्थितियों से जूझने हेतु महसूस होने लगी।

कुछ ही दशक पहले अपराध क्षेत्र में महिलाओं की संख्या नगण्य सी थी परंतु यह लिंग सुरक्षित होने के कारण तथा इसके प्रति समाज में सहृदयता का भाव होने के कारण जब अपराधों की दुनियाँ में महिलाओं की संख्या बढ़ने लगी जो उन्हें पकड़ने तथा हिरासत में रखने आदि की कार्यवाही करने की जरूरत महसूस की गई। महिला अपराधियों को पुरुष पुलिस द्वारा पकड़ने एवं हिरासत में रखने पर अनेक प्रकार की आपत्तियाँ की जाती रही हैं। इसलिये महिला अपराधियों को महिला पुलिस द्वारा ही कार्यवाही किये जाने का विचार अस्तित्व में आया।[10]

वर्तमान भारत में महिलाएँ पुलिस विभाग में तत्परता से सेवारत हैं। महिला पुलिस सामाजिक आवश्यक्ताओं के अनुरूप प्रेष्ठतम् प्रदर्शन कर रहीं हैं। चूंकि महिला स्वयं पुलिस विभाग का एक आवश्यक अंग बन चुकी है इसलिए न केवल वे महिलाएँ जो पुलिस विभाग में सेवारत हैं अपितु देश की समस्त महिला वर्ग स्वयं को सशक्त महसूस करती हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

महिला सशक्तीकरण के संदर्भ में प्रचुर मात्रा में शोध/साहित्य उपलब्ध है किंतु महिलाओं के सशक्तीकरण में महिला पुलिस की क्या भूमिका है इस दिशा में अधिक प्रयास नहीं किये गये। अतः इस दृष्टिकोण को सम्मुख रख प्रस्तुत शोध में अध्ययन के निम्न लिखित उद्देश्य निरुपित किये गये हैं।

1. महिला सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका को उभारना।
2. महिला सशक्तीकरण में महिला पुलिस के नये आयामों को तलाशना।
3. महिला पुलिस व सामान्य महिला वर्ग में सशक्तीकरण हेतु परस्पर जागृति लाना।

परिकल्पना

1. महिलाओं के सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका महत्वपूर्ण हैं।
2. महिला पुलिस एक महिला के रूप में समाज की समस्त महिलाओं को सशक्त कर उन्हें समाज में ए क उचित स्थान दिला सकती है।
3. महिला का पुलिस में आना महिलाओं के सशक्तीकरण का पर्याय है।

शोध अध्ययन क्षेत्र

सागर नगर के 48 वार्डों को अध्ययन क्षेत्र में समाहित किया गया है। सागर नगर के प्रत्येक वार्ड से पहले वे 5 परिवार जिनमें महिलाएँ परिवार के सदस्य के रूप में शामिल हैं।

निदर्श

सागर नगर के 48 वार्डों में प्रत्येक प्रथम 5 परिवारों में जिनमें महिलाएँ सदस्य के रूप में हैं में से 1 महिला को निदर्श के रूप में लिया गया है। इस तरह 240 परिवारों से 240 महिलाओं को शोध अध्ययन विषय में उद्देश्यात्मक निदर्श के रूप में शामिल किया गया है।

तथ्य संकलन प्रविधि

सागर नगर के 48 वार्डों के 240 महिला सदस्यों से साक्षात्कार, प्रश्नावली एवं अवलोकन के माध्यम से उनके सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका और उपयोगिता के संदर्भ में प्रश्नों के उत्तर के रूप में तथ्यों का एकत्रीकरण किया गया है। जिसमें साक्षात्कार अनुसूची, प्रश्नावली के अतिरिक्त वार्तालाप को भी शामिल किया गया है।

मुख्य अध्ययन विश्लेषण

महिला सशक्तीकरण के संदर्भ में सागर नगर के 48 वार्डों में महिलाओं से साक्षात्कार तथा प्रश्नावली के माध्यम से महिला पुलिस के कारण महिलाओं के सशक्तीकरण एवं महिला पुलिस के संदर्भ में प्रश्न पूंछे गये। प्रतिक्रिया स्वरूप महिलाओं की प्रतिक्रिया, महिला पुलिस का महिलाओं के सशक्तीकरण पर क्या और कैसा प्रभाव हैं? महिलाओं ने, महिला पुलिस के प्रयत्क्ष संबंध और अवलोकन तथा अपने ज्ञान के आधार पर प्रतिक्रिया दी है जिसे हम निम्नवत् सारणी एवं विश्लेषण के द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं-

महिलायें पुलिस में सेवारत् हैं के संदर्भ में सागर नगर की निदर्शित महिलाओं में 100ः महिलाएँ यह जानकारी रखती हैं कि महिलाएँ पुलिस में विभिन्न पदों पर सेवारत् हैं। यह एक शैक्षणिक और विभिन्न सामाजिक दशाओं के संदर्भ में महिलाओं का ज्ञान है जो उनके सशक्तीकरण का द्योतक है।

महिला पुलिस के होने पर महिलाओं का सुरक्षा भाव के संदर्भ में 92.08ः महिलाओं में स्वयं की सुरक्षा के प्रति विश्वास बढ़ा है वहीं 7.91ः ऐसी भी महिलाएँ हैं जिनमें महिला पुलिस होने पर भी स्वयं की सुरक्षा के प्रति भय व्याप्त है। निःसंदेह ऐसी महिलाएँ प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से महिला पुलिस के सम्पर्क में नहीं आयीं। फिर भी 92.08ः महिलाओं का स्वयं की सुरक्षा का भाव एक महिला के सशक्तीकरण में सकारात्मक सोपान है।

महिला के पुलिस के होने पर अन्य महिलाओं के आत्मबल के संदर्भ में 95ः महिलाओं का आत्मबल बढ़ा हुआ है। वे निडर होकर कार्य कर रही हैं। घर एवं घर के बाहर समाज में महिलाएँ बेखौफ अपने कार्यों में संलग्न हैं। जबकि 5ः महिलाएँ ऐसी भी है जिनका आत्मबल अभी भी बहुत कम है। निःसंदेह इन महिलाओं का महिला पुलिस की भूमिका से कोई सरोकार नहीं हैं। अपितु एक बड़ा प्रतिशत महिलाओं का जिनका आत्मबल बहुत ऊँचा है उनके सशक्तीकरण की दिशा में इंगित करता है।

महिलाओं के सशक्तीकरण में महिला पुलिस के प्रति महिलाओं की प्रतिक्रिया

	विभिन्न परिस्थितियों में महिलाओं की महिला पुलिस के संदर्भ में	उत्तरदाता					
		प्रतिक्रिया	आवृत्ति	%	प्रतिक्रिया	आवृत्ति	%
1	महिलाएँ पुलिस में सेवारत्	जानकारी है	240	100	जानकारी नही	00	00
2	महिला पुलिस होने पर सुरक्षा का भाव	सुरक्षित	221	92.08	असुरक्षित	19	7.91
3	महिलाओं के पुलिस में होने पर आपका आत्मबल	ऊँचा	228	95	नीचा	12	5
4	महिलाओं के पुलिस में होने पर परिवार में आपका स्थान	सम्मानजनक	180	75	अपमानजनक	60	25
5	महिलाओं के पुलिस में होने पर समाज मे आपका स्थान	सम्मानजनक	212	88.33	अपमानजनक	28	11.66
6	महिलाओं के पुलिस में होने पर जन सामान्य की आपके प्रति प्रतिक्रिया	अच्छी	223	92.91	खराब	17	7.08
7	मीहिलाओं के पुलिस में होने पर अपराधियों की आपके प्रति प्रतिक्रिया	अच्छी	208	86.66	खराब	32	13.33
8	महिलाओं के पुलिस में होने पर राजनेताओं की आपके प्रति प्रतिक्रिया	अच्छी	223	92.91	खराब	08	7.08
9	महिलाओं के पुलिस में होने पर परिवारजन की आपके प्रति प्रतिक्रिया	अच्छी	192	80	खराब	48	20
10	महिला पुलिस के प्रति आपकी प्रतिक्रिया	अच्छी	240	100	खराब	00	00
11	आपकी नजर में महिला पुलिस की महिलाओं के प्रति प्रतिक्रिया	अच्छी	221	92.08	खराब	19	7.91
12	समाज में महिला पुलिस का होना	आवश्यक है	240	100	अनावश्यक है	00	00
13	महिला पुलिस महिलाओं की	रक्षक है	240	100	भक्षक है	00	00
14	आपकी नजर में महिला पुलिस की उपयोगिता	उपयोगिता है	240	100	उपयोगिता नहीं	00	00
15	महिलाओं के पुलिस में होने पर महिलाओं का सशक्तीकरण हुआ है	हाँ	218	90.83	नहीं	22	9.16
16	महिला पुलिस का महिलाओं के प्रति व्यवहार	अच्छा	240	100	खराब	00	00

17	महिला पुलिस से आपका प्रत्यक्ष संपर्क	हुआ	28	11.66	नहीं हुआ	212	88.33
18	धार्मिक स्थलों, सरकारी संस्थाओं या अन्य जगहों पर महिला पुलिस के होने से आप सुरक्षित हैं	सुरक्षित हैं	240	100	असुरक्षित हैं	00	00
19	समाज में महिला पुलिस का होना आपको स्वतंत्र निर्णय लेने में	सहायक है	231	96.25	सहायक नहीं	09	3.75
20	महिला पुलिस होने पर आप समाज में स्वतंत्र महसूस करती हैं	हाँ	222	92.5	नहीं	18	7.5

महिला सशक्तीकरण में एक महत्वपूर्ण पहलू उसका परिवार में महत्व है। महिला के पुलिस में होने पर अन्य महिलाओं में 75ः महिलाओं ने स्वीकार किया कि उनका उसके परिवार में महत्व तथा मान-सम्मान बढ़ा है। परिवार में पति, सास-ससुर या देवर आदि संबंधी महत्वपूर्ण मामलों में महत्व देते है। वहीं 25ः ऐसी महिलाएँ भी हैं जिनको स्वयं के परिवार में मान-सम्मान नहीं मिलता। अधिकांशतः वे रुढ़िवादी परिवार हैं जहाँ महिलाओं को महत्वपूर्ण मामलों में पृथक रखा जाता है। अपितु 75ः एक बड़ा भाग महिलाओं का अपने जीवन में सम्मानपूर्वक अपने दायित्वों का निर्वहन कर रही हैं यह उनके सशक्तीकरण का ही एक रूप है

पिछली कुछ शताब्दियों में समाज में महिलाओं को उनके अधिकार के अनुरूप सम्मान नहीं था। वर्तमान में उनके सशक्तीकरण के अनेकानेक सोपानों के चलते एक बड़ा परिवर्तन आया है। महिलाओं के पुलिस में होने से समाज की अन्य महिलाओं का समाज में स्थान के संदर्भ में 88.33ः महिलाओं ने स्वीकारा है कि महिला पुलिस होने से समाज में उनका सम्मान बढ़ा है। वहीं 11.66ः महिलाओं ने स्वीकारा कि महिला पुलिस के होने पर समाज में उनके मान-सम्मान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आज भी समाज में कई जगहों पर उन्हें अपमान जनक परिस्थितियों को झेलना पड़ता है। फिर भी 88.33ःमातृशक्ति महिला पुलिस होने पर समाज में सम्मान महसूस करती हैं तो निःसंदेह इनके सशक्किरण की दिशा का द्योतक है।

महिला पुलिस समाज में महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन कर रही हैं। उनके होने पर समाज की अन्य महिलाओं ने जन सामान्य की उनके प्रति प्रतिक्रिया के संदर्भ में 92.91ः महिलाओं ने यह महसूस किया है कि समाज में जन सामान्य उनके प्रति आदर का भाव प्रदर्शित करते हैं अर्थात् अच्छी प्रतिक्रिया देते हैं वहीं 7. 08ः महिलाओं के अनुसार जन सामान्य से उन्हें अच्छी प्रतिक्रिया नहीं मिलती। इसके अनेकानेक कारण हो सकते हैं। यहाँ महिलाओं के सशक्तीकरण में महिला पुलिस का होना एक बहुत बड़ा वर्ग महिलाओं का अर्थात् 92.95ः महिलाएँ यह स्वीकार करती हैं कि महिला पुलिस के होने पर जन सामान्य उन्हें अच्छी प्रतिक्रिया देता है।

समाज में महिलाओं को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। एक गम्भीर समस्या अपराधी के रूप में समाज में विद्यमान है। महिलाओं से महिला पुलिस की उपस्थिति से अपराधियों की उनके प्रति प्रतिक्रिया के संदर्भ में पूंछा गया तो बेहिचक 86.66ः महिलाओं ने महिला पुलिस होने पर अपराधियों को कन्नी काटते देखा हैं। अर्थात् उन्हें अपराधियों से भय मुक्त रहकर अपने कार्य करने का अवसर मिलता है अर्थात् अपराधी भी अच्छी प्रतिक्रिया दे रहे हैं। यहाँ यह महिला सशक्तीकरण में एक महत्वपूर्ण तथ्य समझ आता है कि महिला पुलिस की समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

महिला पुलिस के होने पर समाज की महिलाओं के प्रति राजनेता भी अच्छी प्रतिक्रिया देते हैं। इस संदर्भ में 92.91ः महिलाएँ यह स्वीकारती हैं कि महिला पुलिस उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान कर रही है। परिवार के

अन्य सदस्यों के व्यवहार में महिलाओं के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया का भाव महिला पुलिस की समाज में उपस्थिति के कारण 80ः महिलाएँ स्वीकारती हैं जो कि एक बड़ा भाग है और उनके सशक्तीकरण की दिशा में एक सोपान है किंतु यहाँ 20ः महिलाएँ ऐसी भी है जो इस तथ्य से सहमत नहीं हैं।

आश्चर्यजनक किंतु सत्य तथ्य है कि सागर नगर की महिलाओं की महिला पुलिस के प्रति प्रतिक्रिया बहुत अच्छी है। यहाँ 100ः मातृशक्ति स्वयं के सशक्तीकरण में महिल पुलिस की भूमिका का महत्व समझती हैं। 92.08ः महिलाएँ यह स्वीकारती हैं कि महिला पुलिस समाज में महिलाओं के प्रति सजग हैं उनकी सुरक्षा के प्रति, उनके अधिकारों के प्रति और महिलाओं के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया देती है।

समाज में महिला पुलिस का होना के संदर्भ में 100ः महिलाएँ आवश्यक मानती हैं। इसका सीधा तात्पर्य यह है कि महिलाएँ कहीं न कहीं स्वयं को महिला पुलिस के होने से सुरक्षित महसूस करती हैं जो उनके सशक्तीकरण का द्योतक है।

महिला पुलिस समाज में महिलाओं की रक्षक है इस संदर्भ में 100ः महिलाओं ने अपनी स्वीकारोक्ति प्रस्तुत की है। साथ ही 100ः महिलायें समाज में महिला पुलिस की उपयोगिता पर सकारात्मक भाव रखती हैं। उनके परिवार, परिवार के बाहर, धार्मिक स्थलों पर, बाजारों में, संस्थाओं में लगभग सभी जगहों पर महिला पुलिस की भूमिका का गुणगान महिला वर्ग करता है और उनकी उपस्थिति मात्र से ही स्वयं के सशक्तीकरण की बात स्वीकारती हैं। ऐसा 90.83ः महिलाओं ने स्वीकार किया है जो एक बड़ा प्रतिशत है।

महिला पुलिस समाज में अन्य महिलाओं के प्रति बहुत ही अच्छा व्यवहार करती हैं ऐसा 100ः महिलाओं ने स्वीकार किया है। उनका पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक उत्थान हुआ है। महिला पुलिस होने से अनेक क्षेत्रों में महिलाओं की समस्याओं का समाधान हुआ है जो उनके सशक्तीकरण में बड़ा कदम है।

मात्र 11.66ः ऐसी महिलाएँ हैं जिनका महिला पुलिस से प्रत्यक्ष संपर्क विभिन्न परिस्थितियों में हुआ है। शेष 88.33ः महिलाएँ कभी महिला पुलिस के संपर्क में नहीं आयीं। इस सबके बाबजूद समाज में महिलाओं का पुलिस के प्रति सकारात्मक भाव प्रदर्शित करता है कि महिलाओं को अपने सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण समझ आती है। यह प्रतिक्रिया महिलाओं में अपने ज्ञान के आधार पर दी है।

घर के बाहर सरकारी संस्थान हों या धार्मिक स्थल या फिर अन्य कोई भी स्थल महिला पुलिस के होने पर 100ः महिलाएँ स्वयं को सुरक्षित महसूस करती हैं। बिना खौफ के महिलायें अपने कार्यों का सम्पादन उचित ढ़ंग से कर रही हैं यही भावना उनके सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका बढ़ा देती है।

96.25ः महिलाएँ ऐसी हैं जो महिला पुलिस होने के कारण अपने परिवार तथा परिवार के बाहर स्वतंत्र निर्णय होने पर स्वयं को स्वछंद महसूस करती हैं। यह एक बहुत बड़ा भाग है उन महिलाओं का जो महिला पुलिस की उपस्थिति मात्र से स्वयं को स्वछंद महसूस करती हैं। यह महिला पुलिस के कारण महिलाओं के सशक्तीकरण का द्योतक है।

निष्कर्ष

महिला सशक्तीकरण भारतीय समाज के लिये न केवल वैश्विक प्रतिष्ठा का विषय हैं अपितु एक गम्भीर चुनौती भी है। पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक एवं स्वास्थ्य संबंधी दिशाओं में महिलाओं की दशा विशेषज्ञों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विचलित करती रहती है। संवैधानिक स्तर पर महिलाओं में स्वतंत्रता, स्वावलम्बन एवं सम्पन्नता हेतु राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास जारी हैं जिनके प्रभाव में कुछ स्तर तक महिलाओं में सशक्तीकरण दृष्टिगोचर हो रहा है। इसी श्रेणी में महिला पुलिस महिलाओं के सशक्तीकरण में कुछ हद तक महती भूमिका का निर्वहन कर रही है। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से महिलाओं को

मनोवैज्ञानिक स्तर पर महिला पुलिस की समाज में उपस्थिति का लाभ मिल रहा है। पुरुष पुलिस की तुलना में महिलाएँ महिला पुलिस पर अधिक विश्वास जता रही हैं। अपने व्यक्तिगत अनुभवों या समाचार पत्र-पत्रिकाओं, न्यूज चैनल और संवाद के आधार पर महिलाएँ महिला पुलिस के संदर्भ में विस्तृत जानकारी रखती हैं और स्वयं के लिये गौरवान्वित महसूस करती हैं। सागर नगर में निदर्शित महिलाओं द्वारा अवलोकन एवं साक्षात्कार के माध्यम से एकत्र तथ्य इस दिशा की ओर नये आयाम प्रदर्शित करते हैं कि महिला पुलिस समाज में महिलाओं के सशक्तीकरण में अद्भुत, अविश्वसनीय तथा अकल्पनीय भूमिका का निर्वहन कर सकती है। महिलाओं का एवं महिला पुलिस का परस्पर विश्वास, आदर तथा सकारात्मक भाव महिलाओं के सशक्तीकरण में महत्तवपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

सुझाव

महिलाओं को महिला पुलिस की आवश्यकता, महिला पुलिस उपयोगिता, महिला पुलिस की कार्यशैली, महिला पुलिस की विविधता, महिला पुलिस के अधिकार, महिला पुलिस का अधिकार क्षेत्र, महिला पुलिस के कर्तव्य आदि के संदर्भ में विस्तृत योजना बनाकर अवगत करवाना उनके सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

महिला पुलिस को समाज की महिलाओं की आवश्यकता, उनके प्रति सद्भावना, सहयोग की भावना, समयानुसार महिलाओं से संबंधित सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, शैक्षणिक, आर्थिक, सुरक्षात्मक विकास के महत्व को अवगत करवाना महिलाओं के सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन हो सकता है।

अपराधशास्त्र एवं न्यायिक विज्ञान विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.) 470003

सन्दर्भ -

1. *दुर्गा सप्तशती, पृष्ठ सं. (112-113), श्लोक (19,34,58), गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2054.*
2. *श्रीवास्तव, प्रोफेसर ए.आर.एन., 'महिला सशक्तीकरण : उज्जवल भविष्य, काले धब्बे', राधाकमल मुखर्जी : चिंतन परम्परा, National Refereed Journal of Social Science, जनवरी-जून, 2017, समाज विज्ञान संस्थान, बरेली, (उ.प्र.), पृष्ठ सं. 1-9*
3. *Dewan Beena, Women's Enpowerment and Security Mechanism in 21 Century Present Indian Scenerio, International Journal of Applied Science and Engineering 4(1): June, 2016, p.p. 1-13*
4. *लाहावी, श्वेता, 'भारत में महिला सशक्तीकरण - संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों के विशेष संदर्भ में', राधाकमल मुखर्जी : चिंतन परम्परा, National Pefereed Journal of Social Science, जनवरी-जून, 2017, समाज विज्ञान संस्थान, बरेली, (उ.प्र.), बरेली (उ.प्र.) पृष्ठ सं. 53-57*
5. *The Constituton of India, http: // lowmin.nic.in / olwing / coi – english / coi – 4 march 2016.pdf*
6. *Indian Penel Code 1860, Kanon Prakashan, Jodhpur, 2013, P.P. 162-166*
7. *Crime in India, N.C.R.B., New Delhi, 2013*
8. *भारद्वाज ए., पोलिस माडर्नाईजेशन इन इंडिया : ए स्टडी ऑफ वूमन पुलिस इन इंडिया, दि इंडियन नरल ऑफ सोसल वर्क, वाल्यूम 37, अप्रैल, 1976, पृष्ठ सं. 76*
9. *राव एस. वेनुगोपाल, वूमन पोलिस इन इंडिया, ब्यूरो ऑफ पोलिस रिसर्च एंड डेवलपमेंट, नई दिल्ली, 1975, पृष्ठ सं. 102*
10. *आर्य जगदीश प्रसाद, पुलिस विज्ञान, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्युरो, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ सं. 23*